वर्तमान में उच्च शिक्षा में गुणवत्ता : समस्याएं और संभावनाए

डॉ0 आसिफ कमाल,

एसोसिएट प्रोफेसर
शिक्षक शिक्षा विभाग (बी.एड्.)
शिब्ली नेशनल पी0जी0 कालेज, आजमगढ़

किसी भी प्रणाली की उपयोगिता काफी हद तक उसकी गुणवत्ता पर निर्भर रहती है। उच्च शिक्षा भी एक प्रणाली है। आज भूमंडलीकरण के युग में जब सारे विश्व में गुणवत्ता को बेहतर बनाने की होड़ लगी है, हमारे लिए आवश्यक हो जाता है कि हम अपने देश की शिक्षा व्यवस्था को विश्वस्तरीय बनाने के लिए कदम उठाएँ। आज उपभोक्ता और लाभार्थी दोनों ही उच्च शिक्षा की गुणवत्ता से संतुष्ट नहीं हैं। इसलिए इस प्रणाली में वांछित परिवर्तन लाना आवश्यक है, यानी इनपुट, प्रोसेस, आउटपुट और फीड बैक में बदलाव जरूरी है। उच्च शिक्षा के विभिन्न इनपुट हैं–छात्र, अध्यापक, पाठ्यक्रम, आधारभूत सुविधाएँ आदि। इस शोध–पत्र में उच्च शिक्षा में आयी गुणवत्ता में कमियों पर प्रकाश डालते हुए उसके कारणों की पड़ताल की गयी है और उसे दूर करने के उपाय सुझाए गये हैं।

भारत में उच्च शिक्षा के स्तर के दो छोर दिखाई पड़ते हैं एक तरफ तो आई.आईटीज और आई.आई. एम्स हैं, जहाँ पर शिक्षा की गुणवत्ता विश्वस्तरीय है। अहमदाबाद का आई.आई. एम. दुनिया के कुछ सबसे अच्छे शिक्षण संस्थानों में से एक है, और दूसरी ओर महाविद्यालय और विश्वविद्यालय हैं जहाँ की गुणवत्ता की रेटिंग बहुत नीचे है। अधोसंरचना के नाम पर कुछ भी नहीं हैं, विद्यार्थी मेले की तरह भरे हुए है, लाइब्रेरी ही नहीं है, इन्टरनेट की क्या बात करें ? पढ़ाने वाले नहीं है और हैं तो कम स्तरीय। भारत के अधिकांश शिक्षण संस्थानों में यही स्थिति है। अब सवाल इस बात का है कि आज भूमण्डलीकरण के दौर में ये संस्थान किस प्रकार अपना अस्तित्व बचा कर रख सकेंगे और यहाँ से निकले डिग्री प्राप्त विद्यार्थियों का समाज किस प्रकार उपयोग कर सकेगा। एक तरफ जहाँ देश के प्रतिष्ठित संस्थानों में प्रवेश की संख्या सीमित है और प्रवेश के लिए राष्ट्रीय स्तर पर परीक्षा की जाती है, वहीं पर अधिकांश संस्थान ऐसे हैं जहाँ न तो प्रवेश संख्या निश्चत है और न ही उनके लिए किसी प्रकार का मापदण्ड है। यही हमारी गुणवत्ता के लिए समस्या का कारण बनता है। और यही आज हमारी चिंता का विषय है।

उच्च शिक्षा की गुणवत्ता को बनाए रखने के लिए हमें अधोसंरचना पूर्ण करनी आवश्यक है इसके लिए भवन, फर्नीचर, लाइब्रेरी, प्रयोगशाला, इन्टरनेट आदि को हमें स्तरीय बनाना होगा। अधिकांश महाविद्यालय चाहे वह सरकारी क्षेत्र में हो या निजी क्षेत्र में उनमें यह अधोरचना पूर्ण नहीं है और हमारी गुणवत्ता को निम्न कोटि का बनाती है। अधोरचना के बाद अध्यापक की गुणवत्ता पर सबसे ज्यादा ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है। देखने में आया है कि प्राध्यापकों की नियुक्ति में भाई–भतीजावाद बहुत ज्यादा है। भारत में आमतौर पर नियुक्ति के लिए वे तमाम रास्ते उपलब्ध हैं जिससे कम योग्य व्यक्ति प्राध्यापक बन जाता है। इसके लिए भर्ती आयोग बन जाये जो लोक सेवा आयोग की तर्ज पर निष्पक्ष हो जिससे धूर्तो को प्राध्यापक बनने से रोका जा सके क्योंकि ये यदि एक बार अन्दर आ जाते हैं तो 30–40 वर्षो के लिए अपने विषय में पूरी पीढ़ी को बर्बाद कर देते है। देखने में आया है कि अपने संबंधियों को प्राध्यापक बनाने के चलते देश की प्रायः सभी राज्यों में तदर्थ नियुक्तियों का चयन है। वेतन के समय हम आई.ए.एस. अधिकारियों की बराबरी करते है क्या कोई आई.ए.एस अधिकारी तदर्थ नियुक्त होता है ? आई.ए.एस. की तो छोड़ दीजिए कोई नायब तहसीलदार और सब इंसपेक्टर भी तदर्थ नियुक्ति नहीं होता। इस संबंध में यू.जी.सी. की भूमिका बहुत निदंनीय है। पहले उसने प्राध्यापक बनने के लिए नेट परीक्षा को अनिवार्य बनाया लेकिन इस बात की छूट दे दी कि निर्धारित समय में जो व्यक्ति पी–एच.डी. कर लेगा उसे उस परीक्षा से छूट मिल जायेगी। यह छूट किसी न किसी रूप में अभी तक जारी है। आखिर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के कर्णधारों ने ऐसा क्यों किया ? स्पष्ट है इसमें उनका किसी न किसी प्रकार का स्वार्थ था। इससे तुरन्त पी–एस.डी. शोध प्रबंध लिखे गये और निर्धारित अवधि में जमा कराये गये। सब का छोड़कर लोगों ने डाक्ट्रेट करना शुरू किया और दो तीन महीने में शोध–प्रबन्ध जमा कर दिया। इसे ''सीवियर एक्यूट डॉक्टोरल सिड्रॉम'' कहा गया। एक–एक परीक्षक ने एक साथ दस–दस थीसिस एक ही विश्वविद्यालय की जाँची और मौखिकी परीक्षा ली। प्रश्न यह है कि जो व्यक्ति अपने विषय की समग्र ज्ञान की निर्धारित परीक्षा ही नहीं पास करता हो वह एकाएक पी–एच.डी. करने में कैसे सक्षम हो गया? इन बातों को यू.जी.सी. के मार्गदर्शन में धरा गया जिस पर इस देश की उच्च शिक्षा की गुणवत्ता का दारोमदार है। सवाल इस बात का है कि इस प्रकार की डिग्री का आज के शैक्षणिक वैश्वीकरण के युग में क्या उपयोग है ?

सबसे दिलचस्प बात यह है कि हमारा शिक्षक संघ इसमें कुछ बुरा नहीं मानता और वह यह मानने को तैयार ही नहीं है कि उसके सदस्यों में गुणवत्ता की कोई कमी है ? शिक्षक संघों की भूमिका इस संबंध में बहुत ही निदंनीय है। वह सिर्फ स्वायत्तता और ज्यादा वेतन की बात करता है। स्यावत्तता किसकी और किसके लिए ? विश्वविद्यालय अपनी स्वायत्तता चाहते है, कालेजों की नहीं, कुलपति अपनी चाहते हैं, संकाय अध्यक्ष या विभागाध्यक्ष की नहीं,

विभागाध्यक्ष अपनी स्वायत्तता चाहता है, अध्यापकों नहीं। आखिर कैसे हम उच्च शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त करें जब योग्य प्राध्यापक ही नहीं है।

प्राध्यापकों के साथ–साथ विद्यार्थियों की गुणवत्ता का प्रश्न इस भूमण्डलीकरण के दौर में बहुत महत्वपूर्ण है। यदि प्रवेश के समय अयोग्य विद्यार्थी आ गया हो उससे गुणवत्ता कायम नहीं की जा सकेगी। आज इस पर कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा है। फीस बटोरने के नाम पर सबको घर–घर से बुलाकर प्रवेश दिया जा रहा है जिससे मैनेजमेन्ट का लाभ हो सके। यह न सिर्फ निजी क्षेत्र में बल्कि सरकारी क्षेत्र में भी हो रहा है। विद्यार्थियों की तादात ज्यादा है तब जाहिर है व्याख्यान का असर उन पर नहीं हो सकेगा और यह गुणवत्ता का अतंतः गिरायेगा ही। इसलिए यह आवश्यक है कि उच्च शिक्षा केवल सुपात्रों के लिए ही हो और प्रवेश प्रक्रिया के द्वारा इस पर रोक लगायी जाय। इस प्रकार से तो उच्च शिक्षा हास्यास्पद हो गयी है और यह रस्म अदायगी जैसी ही है। गुणवत्ता बनाने के लिए शैक्षिक वातावरण का निर्माण करना होगा। न सिर्फ छात्रों की उपस्थिति बल्कि अध्यापकों की उपस्थिति सुनिश्चित किये जाने की आवश्यकता है। वर्ष भर के कार्य दिवस जो निश्चित है, उन दिनों में अध्यापन हो, यह सुनिश्चित किया जाय, अगर किस कारण से व्यावधान है तो अतिरिक्त कक्षाएं ली जाये।

उच्च शिक्षा की गुणवत्ता को बनाए रखने के लिए अध्यापक की गुणवत्ता पर सबसे ज्यादा ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है।

भारत में आमतौर पर नियुक्ति के लिए वे तमाम रास्ते उपलब्ध हैं जिससे कम योग्य व्यक्ति प्राध्यापक बन जाता है। इसके लिए भर्ती आयोग बन जाये जो लोक सेवा आयोग की तर्ज पर निष्पक्ष हो जिससे धूर्तो को प्राध्यापक बनने से रोका जा सके क्योंकि ये यदि एक बार अन्दर आ जाते हैं तो 30–40 वर्षो के लिए अपने विषय में पूरी पीढ़ी को बर्बाद कर देते है।

यह एक अत्यन्त विचारणीय प्रश्न है कि उच्च शिक्षा कैसे जीवनोपयोग, जनोपयोगी तथा राष्ट्र के लिए उपयोगी बन सके, तभी राष्ट्र निर्माण के लिए महान लक्ष्य को पूरा कर सकेगी। इसके लिए प्राध्यापको के सतत् प्रशिक्षण की आवश्यकता है। अब कालेज और विश्वविद्यालय स्तर पर अध्यापकों को प्रशिक्षण दिया जाने लगा है। चूँकि सूचना और तकनीक के क्षेत्र में नित्य नई खोजें सामने आ रहीं हैं, इसलिए प्राध्यापकों के ज्ञान की गुणवत्ता को विश्वस्तरीय बनाने के लिए यह आवश्यक है कि एक निश्चित अन्तराल के बाद प्राध्यापक को प्रशिक्षित किया जाय। इससे अपने क्षेत्र में हो रहे विकास के साथ कदम से कदम मिलाकर वह आगे बढ़ सके और पूरी कुशलता के अपना कार्य कर सके।

अध्यापकों के लगातार व्यावसायिक विकास की आवश्यकता है लेकिन इसमें कुछ दिक्कते हैं जैसे–

1. प्रशिक्षण संस्थाओं की संख्या कम है।

2. आधारभूत ढांचे से सम्बन्धित सुविधाएँ सीमित हैं।

3. प्रशिक्षणकर्ताओं की संख्या ज्यादा है।

4. वित्तीय खर्च भी अधिक है।

बहरहाल इसी कम संसाधनों में भी सतत् प्रशिक्षण जारी रखा जाना चाहिए। इस सारी कोशिशों के बाद गुणवत्ता का स्तर वह नहीं है जिसकी अपेक्षा इस सूचना प्रौद्योगिकी के युग में की जाती है। इसका एक बड़ा कारण यह है कि उच्च शिक्षा प्रणाली में मूल्यांकन और निगरानी की कमी है। सूचना टेक्नोलॉजी प्रणाली की समग्र गुणवत्ता बनाये रखने में सहायक सिद्ध हो सकती है। पाठ्यक्रम निर्माण के समय इन्टरनेट के माध्यम से सूचनाओं को अद्यतन बनाया जा सकता है। दुनियाभर के विशेषज्ञों से राय ली जा सकती है। ऑडियो और वीडियो कांफ्रेसिंग सुविधाओं के उपलब्ध हो जाने से अध्यापकों और विद्यार्थियों का चयन बड़ी आसानी से किया जा सकता है।

उच्च शिक्षा की गुणवत्ता को बनाये रखने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने एन.ए.ए.सी. (नैक) का गठन किया है जिसका उद्देश्य गुणवत्ता प्रबंधन है। नेक की समिति विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों में जाकर पड़ताल करती है और ग्रेडिंग करती है, लेकिन ग्रेड देने के बारे में उस पर गंभीर आरोप लगाये गये है। समिति के सदस्यों की भर्ती आदि को लेकर प्रश्न उठाये गये हैं और पक्षपात पूर्ण निर्णय की शिकायतें की गयी है। इसको दूर करने के लिए आवश्यक है कि महाविद्यालय और विश्वविद्यालय अपनी बेबसाइट पर सूचनाएँ अद्यतन करें और नैक टीम अचानक इन सूचनाओं की सत्यता की जाँच करें।

उच्च कोटि का मौलिक अनुसंधान गुणवत्ता की आवश्यक शर्त है। विश्वविद्यालयों महाविद्यालयों में अनुसंधान के लिए बहुत कम सहायता मिल रही है। सूचना टेक्नोलॉजी के माध्यम से अनुसंधान क्षमता बढ़ाना होगा। भारत का कोई शोधकर्ता अन्य देश के किसी शोधकर्ता के साथ अनुसंधान सहयोग कर सकता है। जब कई प्रकार की सूचनाएं एक साथ मिलेंगी तब शोध के निष्कर्षो की विश्वसनीयता बढ़ेगी और उसकी स्वीकार्यता में भी वृद्धि होगी।

जनसंख्या वृद्धि के कारण विश्वविद्यालय या कॉलेज उन सब लोगों को प्रवेश देने में सक्षम नहीं है जिनके पास न्यूनतम योग्यता है। इस समस्या से निपटने के लिए इन्टरनेट पर विश्वविद्यालय स्थापित किया जा सकता है। इसी को बर्चुअल यूनीवर्सिटी भी कहा जाता है। लेकिन इसमें प्रवेश की सबसे बड़ी जरूरत है इंटरनेट सुविधा। इससे भी उच्च शिक्षा के लक्ष्य को पूरा किया जा सकता है। चीन ने इस दिशा में अच्छा काम किया है।

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में अध्यापनकार्य आम तौर पर सूचनाएँ देने तक सीमित रहता है। लेकिन यह उच्च शिक्षा का एक मात्र लक्ष्य नहीं है, सूचनाएँ देने के साथ–साथ उच्च शिक्षा के अन्य लक्ष्य इस प्रकार हैं–

1. तर्क और विचार क्षमता का विकास।
2. परखने और निर्णय करने की क्षमता का विकास।
3. आत्मनिरीक्षण और मूल्य बोध का विकास।
4. अध्ययन की सही आदत का विकास।
5. सहनशीलता, जोखिम उठाने की क्षमता।
6. वैज्ञानिक मनोवृत्ति का विकास।

उच्च शिक्षा के उपलब्ध बुनियादी ढांचे, कक्षा के आकार, अध्यापकों की उपलब्धता उनके प्रशिक्षण की व्यवस्था आदि को देखते हुए उच्च शिक्षा के तमाम लक्ष्यों को प्राप्त करना मुश्किल है। यही नहीं अधिकतर अध्यापक व्याख्यान विधि का उपयोग करते हैं जिसमें ऊपर बताए गये लक्ष्यों में से अधिकतर को पूरा करने की क्षमता नहीं है। ये लक्ष्य बहुआयामी है, इसलिए उन्हें प्राप्त करने के लिए विभिन्न विधियों को समन्वित रूप से इस्तेमाल में लाना जरूरी है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि आज के दौर में भारत की शिक्षा को विश्वस्तरीय बनाने के लिए कुछ ठोस उपायों की आवश्यकता है–

1. समस्त शैक्षिणक संस्थाओं की अधोरचना की जाँच के बगैर उनको मान्यता न दी जाये।
2. उच्च शिक्षा संस्थाओं में जनभागीदारी सुनिश्चित की जाए। इस प्रकार की व्यवस्था हो कि इस समिति में निर्वाचित जन प्रतिनिधियों के साथ–साथ भूतपूर्व विद्यार्थियों, प्राध्यापकों एवं बुद्धिजीवी वर्ग का ज्यादा प्रतिनिधित्व हों।
3. प्राध्यापकों की नियुक्ति निष्पक्ष हो, चयन आयोग निष्पक्ष ढंग से काम करें।
4. योग्यता के प्रश्न पर कोई समझौता न हो। यह व्यवस्था संघ लोक सेवा आयोग के तर्ज पर हो और चयन भी उसी तरीके से किया जाये।
5. छात्रों की प्रवेश संख्या समिति हो, इस कदम के तत्काल उठाये जाने की आवश्यकता है।
6. वर्ष में कार्य दिवस और रोज के तय काम घंटे में अध्यापन सुनिश्चित किया जाय।

हॉलांकि इस दिशा में यू.पी.सी. ने सार्थक कदम उठाये हैं लेकिन प्राध्यापक वर्ग इसके पालन से कतरा रहा है। इसलिए अब इसमें कठोर कदम की आवश्यकता है।

7. कार्य की गुणवत्ता की सतत् निगरानी की जाय। इसके लिए समय देकर नहीं बल्कि अचानक निरीक्षण किये जाने की आवश्यकता है।
8. उच्च शिक्षा संस्थानों को रोजगार मार्गदर्शन केन्द्र के रूप में भी विकसित किया जाये।
9. प्रध्यापकों के सतत् प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाये। इसके लिए अकादमिक स्टाफ कॉलेजों को और साधन सम्पन्न बनाये जाने की जरूरत है।

10. नकल रोकने की समुचित व्यवस्था की जाये। इसमें नकल को संज्ञेय अपराध बनाये जाने की जरूरत है। कल्याण सिंह सरकार ने जब उत्तर प्रदेश में इस तरह की व्यवस्था की थी तब नकल पर पूर्ण प्रतिबंध लगा था।

अगर ये कुछ उपाय कर लिए जाये तब हम उच्च शिक्षा की गुणवत्ता को विश्वस्तरीय बना सकते हैं और इस पर आये हुए खतरे को टाल सकते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची :–

1. गोविल, प्रबोध कुमार, शिक्षा जगत की नई बीमारी, दैनिक भास्कर, जबलपुर।
2. झुनझुनवाला, भरत, उच्च शिक्षा के नाम पर लूट–खसोट, दैनिक जागरण, लखनऊ।
3. झुनझुनवाला, भरत, प्राध्यापको की खोखली मांग, दैनिक जागरण, लखनऊ।
4. शर्मा, डॉ, देवर्षि, उच्च शिक्षा का हास्यापद स्तर, दैनिक जागरण, लखनऊ।
5. शर्मा, डॉ देवर्षि, उच्च शिक्षा, गुणवत्ता का संकट, दैनिक जागरण , लखनऊ।
6. शर्मा, डॉ देवर्षि, उच्च शिक्षा गुणवत्ता का संकट, दैनिक जागरण, लखनऊ।
7. श्रोजगार समाचार, दिल्ली।
8. अय्यर, पल्लवी, एक्सीलेन्स इन एजुकेशन : दि चाइनीज बे, दि हिन्दू, दिल्ली।
9. रोजगार समाचार, दिल्ली।

जगद्गुरुरामानन्दाचार्यस्वामिरामभद्राचार्याणां जीवनसंस्तवः

प्रो० योगेश चन्द्र दुबे

कुलपतिः
जगद्गुरुरामभद्राचार्यदिव्यांगविश्वविद्यालयः
चित्रकूट (उ0प्र0)

समग्रेऽपि विश्वे अदूष्यवैदुष्यवतां प्रतिभावतां परिषदि स्वीयाप्रतिमप्रातिभप्रकर्षेण विद्योतितान्तःकरणाः पदवाक्यप्रमाणपारावारपारीणाः साहित्याकादमी श्रीवाणीसमलकंरणादि विविध राष्ट्रियपुरस्कार पुरस्कृताः भार्गवराघवीय–गीतरामायण–दशावतारचरितादि महाकाव्यानां प्रणेतारः प्रस्थानत्रयीभाष्यकाराः भारतवर्षस्य राष्ट्रपतिना पद्मविभूषणसम्मानेन सम्भानिताः दिव्यांगजनानां सेवामेव भगवतो राघवस्याराधनमिति मत्वा सततमेव तेषां निःशुल्कशिक्षणादिव्यवस्थया सेवातत्पराः जगद्गुरु रामभद्राचार्य दिव्यांग विश्वविद्यालयस्य जीवनपर्यन्तकुलाधिपतयः समग्रभारतीयभाषासु सम्भाषणदक्षाः तत्रापि सुरभारती संस्कृतस्य विशेषेण समुपासकाः जगद्गुरु रामानन्दाचार्यपदेमूर्धाभिषिक्ताः अधिचित्रकूटं सर्वाम्नायश्रीतुलसीपीठाधीश्वराः अहोरात्रं भारतीयसंस्कृतिं समुपासीनाः तस्याश्च प्रचारप्रसारयोः समर्पितजीवनाः अभिवनपाणिनयः पाणिनिकृताष्टाध्याय्याः प्रतिसूत्रं पंचाशत्सहस्रपद्यैः अतिसरलां सहजबोधगम्यां पाणिनेः हार्द प्रकटयन्तीं श्रीरामभद्रीयां वृन्तिं कृत्वा अभिनवपाणिनित्वं चरितार्थयन्तः साक्षात् ज्ञानविज्ञानयशोभक्तिविरागमूर्तयः स्वनामधन्याः परमपूज्याः जगद्गुरुस्वामिराभद्राचार्याः सम्प्रति केन न ज्ञायन्ते। तेषां परिचयः लोकाय पिष्टपेषणं भवितुमर्हतीत्यपि विज्ञाय पाणिनिकृताष्टाध्याय्याः वृन्तित्रयीम् पिपठिषूणां बालानां बोधाय परमावश्यकमितिधियां नातिविस्तरेण प्रस्तौमि।

पाणिनीयाष्टाध्याय्यां वृन्तित्रयीम् कर्तृणां अभिनवपाणिनीनां जगद्गुरुस्वामिरामभद्राचार्याणां जन्म रसाभ्राभ्रनेत्रमिते विक्रमाब्दे माघकृष्णैकादशीतिथौ शनिवासरे तदनुसारं रवीष्टाब्दे 1950 जनवरीमासे चतुर्दश दिनांक रात्रौ 10:34 वादने अनुराधानक्षत्रे. लग्ने समभवत्। आचार्याणां जन्मभूमिः भारतवर्षस्य उत्तरप्रदेशे जौनपुरजनपदे विद्यमानः साड़ीखुर्द(शचीपुरम्) नामा ग्रामो विद्यते। आचार्याणां पूज्य पितामहाः आसन् सरयूपारीणब्राह्मणकुले वसिष्ठगोत्रे मार्जनी मिश्रवंशे गृहीतजन्मानः पण्डितप्रवरः श्रीरामविहारीमिश्राणां द्वितीयात्मजस्य श्रीकृष्णानन्दमिश्रस्य प्रथमात्मजा पण्डितसूर्यवली मिश्र महाभागाः। आचार्याणां पितामहाः विद्वांसः कर्मनिष्ठाः धर्मपरायणाश्च आसन्। आचार्यचरणाः कथयन्ति यत् मम यद्रामेऽनुरागः धर्मपारायणता च तन्मम

पितामहकारणात् वर्तते। तेषां तृतीयपुत्राः स्वनामधन्या पंडितश्रीराजदेवमिश्राः ये साक्षात् भक्तिज्ञानविरागमूर्तयः आसन् ते सन्ति आचार्यचरणानां पितृपादाः। माता वात्सल्यादिविशिष्टगुणैः साक्षात् कौसल्यारूपिणी स्वनामधन्या अखण्डसौभाग्यवती शचीदेवी आसीत्। आचार्याणां जीवने जन्मतः एव नैकाः विलक्षणाः घटनाः सञ्जायन्ते याः मनसि कौतूहलं जनयन्ति। अस्भामिः आचार्याणां मातुः मुखाद् जन्मकालिकी एका घटना श्रुता। ''यदा आचार्याणां जन्म अभवत् तदानी रात्रिकालः आसीत्। सहसैव तस्मिन् कक्षे दिव्यप्रकाशोअभवत्। वयं सर्वेऽपि चकिता अभवाम् । अनेन वयं सूचिताः यत् येन इदानीं जन्म ग्रहीतं तत् कश्चिद् वर्तते महापुरुषः।''

यदा आचार्याणा आयुः मासद्वयस्य आसीत् तदानीं अत्यन्तं दुखप्रदा घटनैका समभवत् । आचार्याणां चक्षुषोः रोहुआनामको रोगोऽभवत्। तस्य निदानाय काचिद् ग्राम्या चिकित्सका समागता। तया क्रियमाणेउपचारक्रमे नेत्रद्वय नष्टं जातम् । एषा घटना यद्यपि अत्यन्तं दुःखदा आसीत किन्तु अस्याः घटनायाः व्याजेन भगवता राघवेण परमा कृपाऽपि कृता। बालके विलक्षणा धारणाशक्ति प्रादुरभूत्। तेन सकृदेव पठितो विषयः कण्ठस्थी भवति स्म।

शिक्षार्जनम्– आचार्यचरणानां प्राथमिकी शिक्षा गृहे एव पितामहाद् श्रीसूर्यबलीमिश्रात् लब्धा। पंचवर्षा अवस्थायामेव आचार्यैः श्रीमद्भगवद्गीता कण्ठस्थीकृता। सप्तवर्षा अवस्थायां च सम्पूर्णमेव क्रमशः पंक्तिसंख्यासहितं श्रीभद्राचरितमानसम् कण्ठस्थीकृतम्। शिक्षार्जनक्रमे वेदवेदांगशास्त्र शिक्षायामधिकारप्राप्तये अष्टमे वर्षे आचार्याणां उपनयनसंस्कारो विक्रमाब्दे 2014 ज्येष्ठ शुक्लैकादश्यां सम्पन्नः। तदानीमेव श्रीराममन्त्रस्य दीक्षां तपोमूर्तयः ईश्वरदासमहाराजाः प्रायच्छन्। आचार्याणां माध्यमिकी शिक्षा उत्तरप्रदेशस्य जौनपुरजनपदान्तवर्तिनि सुजानगंजे आदर्शश्रीगौरीशंकरसंस्कृतमहाविद्यालये सम्पन्ना। तत्र आचार्यैः प्रथमातः उत्तरमध्यमापर्यन्तमध्ययनं कृतम्। आचार्याणां मेधा दिव्या वर्तते। सकृदेव श्रुतो विषयः कण्ठस्थी भवति स्म। कवित्वशक्तिरपि माध्यमिकशिक्षाकाले प्रास्फुरत्। आचार्याणां प्रथमं काव्यपुष्पं तावत् श्री रामचन्द्रचरणारविन्दयोः समर्चनायां समर्पितं जातम्। तत् काव्यपुष्पं इत्थं वर्तते–

महाघोर शोकाग्निना तप्यमानं
पतन्तं निरासारसंसार सिन्धौ।
अनाथं जडं मोहपाशेन बद्धं
प्रभो पाहि मां सेवकक्लेशहर्तः ।।

आचार्याः माध्यमिकशिक्षाक्रमे व्याकरणशास्त्रस्य प्रवेशग्रन्थं वरदराजप्रणीतं लघुसिद्धान्तकौमुदीनामानं मासत्रयस्याल्पावधावेव समधीत्य चमत्कृतिं जनयामासुः। आचार्यैः चर्मचक्षुषोः हानिः अभिशापत्वेन नहि प्रत्युत भगवतः कृपेति मत्वा स्वीकृता। आचार्यैः विकलांगछात्रवृन्तेः. लाभः कदापि न स्वीकृतः। आचार्याणां प्रथमायाः परीक्षा डॉ. सम्पूर्णानन्द संस्कृ

त विश्वविद्यालये अधिवाराणासि मौखिकी जाता। तत्र आचार्यैः 99% अंकैः प्रथमापरीक्षां समुन्तीर्य इतिहासो व्यरचि।

पूर्वमध्यमातः प्रमुखं विषयं नव्यव्याकरणशास्त्रं स्वीकृत्य अध्ययनं प्रारब्धम्। तदानीं आचार्याणां विशिष्टया जिज्ञासया, अकर्त्यतर्केण च आचार्याः प्रसन्नाः भवन्ति स्म। आचार्याणां विलक्षणधारणाशक्तेः एकं रोचकं संस्मरणं विद्यते। यदा आचार्याः पूर्वमध्यमा द्वितीयवर्षस्य मौखिकी परीक्षां दातुं वाराणसीमगच्छन् तदा तत्र परीक्षकाः आसन् श्रीचन्द्रवली द्विवेदिमहाभागाः। षड् होरापर्यन्तं परीक्षाऽभवत्। परीक्षकस्य हठः आसीत् यदा परीक्षार्थी मम प्रश्नानामुत्तराणि दातुमसमर्थो भवति, तदाहं परीक्षा समापये। किन्तु सः कालः परीक्षकेण न प्राप्तः। आचार्याः समेषामेव प्रश्नानामुन्तराणि तत्क्षणमेव प्रददति स्म। परीक्षकाः विस्मयमवाप्य प्रसन्नाः अभवन्। एवं पूर्वमध्यमाद्वितीयवर्षस्य परीक्षायामपि 99% अंकान् समवाप्य आचार्याः उत्तीर्णाः घोषिताः। एवमेव उत्तरमध्यमापरीक्षाऽपि विश्वविद्यालये सर्वाधिकान् अंकान् 99% अर्जयित्वा आचार्यैः समुत्तीर्णा।

तदानीमेव आचार्याः शास्त्रार्थसभाषु नैकवारं स्वीयाप्रतिमशास्त्रज्ञानेन विजयश्रिया सभाजिताः। काश्यां शास्त्रार्थसभायै एकं प्रसिद्धं स्थानं वर्तते नागकूपः। तत्र नागपन्चम्यां शास्त्रार्थस्य विशिष्टं आयोजनं भवति स्म। प्रायशः आचार्याः षड्वारं भागमगृहणन् विजयं च प्राप्तवन्तः।

उच्च शिक्षा– आचार्या उच्चशिक्षा ग्रहीतुं वाराणसीस्थं सम्पूर्णानन्दसंस्कृत विश्वविद्यालयं प्रविष्टाः। आचार्याणां सहयोगाय एतेषामेव अनुजः चन्द्रकान्तमिश्रोऽपि सहैव आगतः । प्रवेशपरीक्षायां सर्वानपि तत्रत्यान् आचार्यान् स्वीयप्रातिभप्रकर्षणप्रसाद्य शास्त्रिप्रथमवर्षे प्रवेशं प्राप्तवन्तः। नव्यव्याकरणशास्त्रस्य विशिष्टमध्ययनं तत्कालिकानाम् अभिनवपाणिनिरितिविरुदविभूषितानां पडितरामप्रसादत्रिपाठिनां सकाशे प्रारब्धवन्तः। आचार्याणां प्रतिभावैलक्षण्यं, अप्रतिमां च धारणा शक्तिं अभिलक्ष्य तत्रत्याः आचार्याः आश्चर्यचकिताः भविन्त स्म। शास्त्रिपरीक्षा सर्वोच्चाकैः समुदतीतरन् आचार्याः तस्माद् विश्वविद्यालयः स्वर्णपदकेन सम्मानमकरोत्। आचार्यपरीक्षायां नव्यव्याकरणमेव गृहीत्वा अध्ययनं प्रारब्धम्। तदानीं केन्द्रीयशिक्षामण्डलेत राष्ट्रियप्रतियोगितानां आयोजनं जातम्। आचार्याः तत्र अन्त्याक्षरीय, सांख्यदर्शनं, नव्यव्याकरणं, समस्यापूर्ति, वादविवाद प्रतियोगितासु भागमगृहणन् । प्रतियोगितायाः आयोजनं शास्त्रिभवने नवदेहल्यां समभवत्। तत्र पंचसु प्रतियोगितासु आचार्यैरेव प्रथमं स्थानं लब्धम्। पुरस्कारप्रदानाय भारतस्य प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरागान्धी आगतवती आसीत्। तया पुरस्कार वितरणक्रमे यदा श्रुतवती यत् एकस्यैव प्रतियोगिनः प्रथम पुरस्काराय बारम्बारं नाम उच्चार्यते तदा तया कथितम् यत् अहमेव बालकस्य समीपं गत्वा पुरस्कारं दद्यामि तस्मै प्रज्ञाचक्षुष्ट्वात् काठिन्यं जायेत् तदा आचार्यैः कथितम् नैव नैव अहं मात्रे कष्टं दातुनोत्सहे अहमेव आगत्य पुरस्कारान् स्वीकरोमि। श्रीमती गान्धी आचार्याणां

प्रतिभां विलोक्य विस्मयमापन्ना। तया कथितं यदि भवान् इच्छति चेत् अहं भवतः नेत्रचिकित्सां अमेरिकायां कारयितुमिच्छामि। तदा आचार्यैः कथितम्–

किं दृष्टव्यं पतितजगति व्याप्तदोषेऽप्यसत्ये
मायाचारावृततनुभृतां पापराजद्विचारे।
दृष्टव्योऽसौ चिकुरनिकुरैः पूर्णवक्त्रारविन्दः
पूर्णानन्दो धृतशिशुतनुः रामचन्द्रो मुकुन्दः।।

आशयोऽयं यद् अहं संसारं द्रष्टुं नोत्सहे, साम्प्रतं अन्तःचक्षुषा पूर्णानन्दं धृतशिशुतनूं प्रभुं रामचन्द्रं सन्ततं पश्यामि। आचार्याः पंचभिः प्रथमपुरस्कारैः चलवैजयन्तीपुरस्कारेण च सम्मानिताः।

तदानीमेव आचार्याः शास्त्रार्थसभाषु नैकवारं स्वीयाप्रतिमशास्त्रज्ञानेन विजयश्रिया सभाजिताः। काश्यां शास्त्रार्थसभायै एकं प्रसिद्धं स्थानं वर्तते नागकूपः। तत्र नागपन्चम्यां शास्त्रार्थस्य विशिष्टं आयोजनं भवति स्म। प्रायशः आचार्याः षड्वारं भागमगृहणन् विजयं च प्राप्तवन्तः। एकदा शक्तेः वाच्यवाचकभावापरपर्यायाः इति पक्षमाश्रित्य शास्त्रार्थआयोजनं सांगवेद संस्कृत महाविद्यालयेन कृतम्। तत्र पराजयभयात् न कोऽपि विपक्षे वक्तुं उपस्थितः अभवत् तदा तदानीं काश्यां अशीतिवर्षीयाः पण्डितप्रकाण्ड श्री राजराजेश्वर शास्त्रिद्रविण महाभागाः विपक्षे शास्त्रार्थाय उपस्थिताः अभवन्। तत्र शास्त्रिवैर्यः प्राचीनमतमाश्रित्य, आचार्यैश्च नव्यमतं स्वीकृत्य शास्त्रार्थः कृतः। शास्त्रार्थोऽयं प्रायशः एकहोरात्मकः आसीत्। शास्त्रार्थमिमं दृष्ट्वा तत्रत्याः पण्डिताः आश्चर्यचकिताः जाताः यत् येषां शास्त्रिवर्याणां वैदुष्यस्य समक्षं कोऽपि पडितः क्षणमात्रमपि शास्त्रार्थेन न तिष्ठति तत्र अयं बालकः होरात्मकं कालं शास्त्रार्थेन यापितवान्। शास्त्रार्थक्रमे एव एकदा कश्चित् पण्डितम्मन्यः शाकद्वीपी ब्राह्मणः शालिग्राममिश्रो नाम आसीत् येन एकवाद आचार्याणां ये पूज्यगुरवः सन्ति पूज्याः श्रीरामप्रसादत्रिपाठिनः तेषां सभायां अपमानं कृतमासीत् तं पण्डितम्मन्यम् आचार्य शास्त्रार्थे पराजित्य गुरोः सम्मानस्यरक्षणं कृतम्। एवम् विलक्षणप्रतिभाधनिभिः आचार्यैः आचार्य परीक्षापि विश्वविद्यालयस्य सर्वेषु विभागेषु अधीयानानां छात्राणां मध्ये सर्वाधिक अंकै उत्तीर्णा। ततस्ते पंचस्वर्णपदकैश्च कुलाधिपति स्वर्णपदकेनापि विभूषिताः।

अन्तरं आचार्यैः विश्वविद्यालयनुदानयोगस्य नेटपरीक्षोन्तीर्य प्रथमा जे,आर.आफ, छात्रवृत्ति अधिगता। आचार्यभूपेन्द्रपति त्रिपाठिनां शोधनिर्देशने 'अध्यात्मरामायणे अपाणिनीय प्रयोगाणां विमर्शः" इति विषयमधिकृत्य विद्यावारिधिरित्युपाधिरधिगतः । एवमेव "पाणिनीयाष्टाध्यायाः प्रतिसूत्र शाब्दबोधसमीक्षा' इति विषयमधिकृत्य "वाचस्पति' रित्युपाधिरधिगतः।

जगद्गुरुरामभद्राचार्यप्रणीतग्रन्थाः
संस्कृतसाहित्यरचनाः

1. संस्कृतमहाकाव्यम् – श्रीभार्गवराघवीयम्।

2 संस्कृतगीतमहाकाव्यम् – गीतरामायणम् (गीतसीताभिरामम्)
3. संस्कृतखण्डकाव्यम् – आजादचन्द्रशेखरचरितम्।
4. संस्कृतपत्रकाव्यम् – कुब्जापत्रम्।
5. वृहत्तम् संस्कृतदूतकाव्यम् – भुंगदूतम्।
6. संस्कृतचित्रकाव्यम् – लघुरघुवरम्।
7. संस्कृतएकांकिनाटकम् – श्रीराघवाभ्युदयम्।
8. संस्कृतगद्यमहाकाव्यम् –दशावतारचरितम् (प्रकाश्यमाना–राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम् नव देहली)

संस्कृतस्तोत्रकाव्यानि

9. श्रीगणेशाष्टकम्
10. श्रीसीतारामसुप्रभातम्
11. श्रीजानकीप्रातःस्मरणम्
12. श्रीराघवप्रातःस्मरणम्
13. श्रीवेदाष्टकम्
14. लघुरघुवरम्
15. श्रीराधवभावदर्शनम्
16. श्रीरामस्तुतिः
17. श्रीमानसमहिमाष्टकम्
18. श्रीकामदाष्टकम्
19. श्रीहनुमत्स्तवः
20. श्रीसंकटमोचनाष्टकम्
21. श्रीरधुनाथशतकम्
22 श्रीरमारमास्तोत्रम्
23. श्रीराघवाष्टपदी
24. श्रीपशुपत्यष्टकम्
25. नमोराघवायाष्टकम्
26. श्रीराघवमाधवाष्टकम्
27. श्रीगोसहस्रनामस्तोत्रम्
28. गीतएकादशस्तवम
29. श्रीसीताजन्माष्टकम्
30. श्रीसीतासुधानिधिः
31.श्रीजानकीकृपाकटाक्षस्तवम्
32. श्रीरामचन्द्राष्टकम्
33. श्रीद्वारकाधीशाष्टकम्
34. श्रीमच्चौरेश्वराष्टकम्
35. श्रीडाकोरेशाष्टकम्
36. श्रीमन्दाकिन्याष्टकम्
37. गीतनवनीतस्तवम्
38. श्रीहनुमच्चत्वारिंशिका
39. सर्वरोगहराष्टकम्
40. कर्णपीडाहराष्टकम्
41. श्रीकालिकादशकम्
42 श्रीगोदावर्यष्टकम्
43. श्रीअपूर्वाष्टकम्
44.श्रीगंगामहिम्नस्तोत्रम्
45 श्रीरामसीतावरराघवस्तोत्रम्
46. प्रपत्यष्टकम्
47. श्रीनर्मदाष्टकम्
48. श्रीचित्रकूटविहार्याष्टकम्
49. श्रीरामबल्लभास्तोत्रम्
50. श्रीराघवषोडशकम्
51. श्रीरामनैवेद्याष्टकम्
52 श्रीचित्रकूटविहारिण्याष्टकम्

53. श्रीरामभद्राष्टकम्
54. स तीर्थराजो जयति प्रयागः
55. मत्पापकूटं द्यतु चित्रकूटः
56. रुच्यष्टकम्
57. श्रीमद्भागवताष्टकम्
58. श्रीरामविजयदशकम्
59. श्रीहनुमत्स्तवनम्
60. श्रीसरयूलहरी
61. श्रीसरस्वतीशतकम्
62 स्वस्तिसप्तकम्
63. श्रीआन्जेयपन्चकम्
64. श्रीराघवविजयाष्टकम्
65 श्रीतुलसीद्वादशी
66. ज. श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्य द्वादशी
67. श्रीमद्गोस्वामितुलसीदासद्वादशी
68. ज. श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्यपादुकाष्टकम्
69 श्रीशिवशतकम्
70. श्रीसीताष्टकम
71. श्रीमाण्डव्याष्टकम्
72. श्रीउर्मिलाष्टकम्
73. श्रीश्रुतिकीर्त्यष्टकम्
74. श्रीरामाष्टकम्
75. श्रीभरताष्टकम्
76. श्रीलक्ष्मणाष्टकम्
77. श्रीशत्रुघ्नाष्टकम्
78. श्रीकौसल्याष्टकम्
79. श्रीदशरथाष्टकम्
80. श्रीमदयोध्याष्टकम्
81. श्रीमिथिलाष्टकम्
82. श्रीचित्रकूटाष्टकम्
83. श्रीवाल्मीक्याष्टकम्
84. श्रीवेदव्यासाष्टकम्
85. श्रीपाणिन्याष्टकम्
86. श्रीगुर्वष्टकम्
87. श्रीसूर्याष्टकम्
88. श्रीशिवाष्टकम्
89. श्रीशक्त्यष्टकम्
90. श्रीविष्णवष्टकम्
91. श्रीधर्माष्टकम्
92. श्रीराधाष्टकम्
93. श्रीकृष्णाष्टकम्
94. पन्चसंस्कारस्तोत्रम्
95 श्रीतिलकस्वरूपस्तवम्
96. श्रीशालग्रामस्तवसप्तविंशिका
97 श्रीशिशुराधवस्तोत्रम्
98 श्रीछात्ररामस्तोत्र
99 श्रीसीतावररामस्तोत्रम्
100 वीरराघवस्तोत्रम्
101 राजाधिराजरामस्तोत्रम्
102 अभिलाषाष्टकम्
103 करुणाष्टकम्
104 स्वस्वरूपचिन्तनम्
105 श्रीशरणागतिशतकम्
106 श्रीमानसकीर्तनमाला
107. श्रीमदान्जनेयशतकम्
108 श्रीनीराजनावलिः

भाष्यग्रन्थाः / दर्शनग्रन्थाः

109 ईशावास्योपनिषद्
110 केनोपनिषद्
111. कठोपनिषद्
112 प्रश्नोपनिषद्

113. मुण्डकोपनिषद्
114. माण्डूक्योपनिषद्
115. तैत्तरीयोपनिषद्
116 ऐतरेयापनिषद्
117. श्वेताश्वतरोपनिषद्
118 वृहदारण्यकोपनिषद्
119 छान्दोग्योपनिषद्
120. श्रीमद्भगवद्गीता (श्रीराघवकृपाभाष्यम्)
121 ब्रह्मसूत्रः (श्रीराघवकृपाभाष्यम्)
122. श्रीरामस्तवराजः (श्रीराघवकृपाभाष्यम्)
123. श्रीनारदभक्तिसूत्रः (श्रीराघवकृपाभाष्यम्)

लघुकाव्यानि

124. मुकुन्दस्मरणम् (प्रथम/द्वितीयभाग.)
125. प्रार्थनाकुसुमान्जलिः
126. गीतकुसुमान्जलिः
127. आर्याशतकम्
128. श्रीसीताशतकम्
129. मन्मथारिशतकम्
130. गीतरामचन्द्रम्
131. श्लोकमौक्तिम्
132. चण्डीशतकम्
133. श्रीचित्रकूटशतकम्
134. श्रीगणपतिशतकम्
135. श्रीरामभक्तिसर्वस्वम्
136. प्रपत्तिशतकम्
137. उपदेशनवनीतम्
138. विशिष्टाद्वैतदर्पणम्
139. श्रीराघवेन्द्रशतकम्

प्रकरणग्रन्थाः

140. स्वरूपविमर्शः
141. सविशेषवादः
142. विवर्तगर्तावर्तः

अष्टाध्यायी

143. अष्टाध्याय्यां–(श्रीरामभद्रीयासंस्कृतगद्यात्मिकावृतिः) (प्रकाश्यमाना– राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम् नव देहली)
144 अष्टाध्याय्या–(श्रीराघवतोषिणीसंस्कृतपद्यात्मिकावृति) (प्रकाश्यमाना–राष्ट्रियसंस्कृत संस्थानम् नव देहली)
145. अष्टाध्यायां (श्रीरामप्रसादिनी (हिन्दीवृत्ति) (प्रकाश्यमाना– राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम् नव देहली)
146. पाणिनीयधातुपाठे (श्रीरामभद्रीयासस्कृतगद्यात्मिकावृति) (प्रकाश्यमाना– राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम् नव देहली)
147. पाणिनीयधातुपाठे (श्रीराघवतोषिणीसंस्कृतपद्यात्मिकावृतिः) (प्रकाश्यमाना– राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम् नव देहली)

148 पाणिनीय धातुपाठे (श्रीरामप्रसादिनीहिन्दीवृतिः) (प्रकाश्यमाना– राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम् नव देहली)
149. उणादिसूत्रेषु (श्रीरामभद्रीयासंस्कृतगद्यात्मिकावृति)
150. उणादिसूत्रेषु (श्रीराघवतोषिणीसंस्कृतपद्यात्मिकावृतिः)
151. उणादिसूत्रेषु (श्रीरामप्रसादिनी हिन्दीहिन्दीवृति)
152 पाणिनीय लिंगानुशासनसूत्रेषु (श्रीरामभद्रीयासस्कृतगद्यात्मिकावृतिः)
153. पाणिनीय लिंगानुशासनसूत्रेषु (श्रीराघवतोषिणीसंस्कृतपद्यात्मिकावृतिः)
154. पाणिनीय लिंगानुशासनसूत्रेषु (श्रीरामप्रसादिनीहिन्दीवृतिः)
155. "अध्यात्मरामायणे अपाणिनीयप्रयोगाणा विमर्शः– (प्रकाश्यमाना– श्रीतुलसीपीठसेवान्यासः चित्रकूटः (म०प्र०)
156. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण विमर्शः (प्रकाश्यमाना–राष्ट्रियसस्कृतसंस्थानम्, नव देहली)

श्रीमद्भागवताश्रितप्रवचनग्रन्थाः

157. रासपन्चाध्यायी विमर्शः
158. वेणुगीतम्
159. श्रीमद्भागवत विमर्शः (प्रकाश्यमाना–राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, नव देहली)
160. गोपीगीतम्
161. युगलगीतम्

हिन्दीसाहित्यरचनाः

162 महाकाव्य– अरुन्धती
163. महाकाव्य– अष्टावक्र
164 खण्डकाव्य– काका विदुर
165. खण्डकाव्य– माँ शबरी
166. खण्डकाव्य– श्रीसीतारामकेलिकौमुदी
167. खण्डकाव्य– अवध की अजोरिया

गीतकाव्यम्

168 भक्तिगीतसुधा
169 राघवगीतगुन्जन
170, राघवप्रेमलता
171. माधवप्रेमलता

एंकाकिनाटकः

172 उत्साह

समीक्षाग्रन्थाः

173. श्रीगीतातात्पर्य
174. श्रीतुलसीसाहित्य में कृष्णकथा
175. सनातनधर्म की विग्रहस्वरुपा– गोमाता
176. श्रीसीतानिर्वासन नहीं
177. मानस में तापस प्रसंग

वैचारिकग्रन्थाः

178. साठ गवेषणात्मक निबन्ध।
179. मेरी स्वर्णयात्रा
180. मेरी षष्टिपूर्ति

प्रवचनग्रन्थाः

181. श्रीभरतमहिमा
182. प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्ही
183 श्री मानस में सुमित्रा
184. सुग्रीव की कुचाली और विभीषण की करतूति
185. परम बड़भागी जटायु
186 सत्यरामप्रेमी श्रीदशरथ
187. श्रीसीताराम विवाहदर्शन
188. अहल्योद्धार
189. तुम पावक महँ करहु निवासा
190. हर ते भे हनुमान
191. श्रीमानस में तीस कथाएँ
192. सब विधि भरत सराहन जोगू
193. सकल अमानुष करम तुम्हारे
194. मानस में युगलगीत
195. श्रीमानस में गुरुमहिमा
196. श्रीमानस में दशावतार

टीकाग्रन्थाः

197 भावार्थबोधिनी (हिन्दी टीका श्रीरामचरितमानस पर)
198. मूलार्थबोधिनी (हिन्दी टीका श्रीभक्तमाल पर)
199. श्रीटीका (श्रीसीतारामकेलिकौमुदी पर)
200, श्रीमहावीरी व्याख्या (श्री हनुमानचालीसा पर)

सम्पादनग्रन्थाः

201. हिन्दू संस्कृति दीपक प्रकाश्यमान, श्रीतुलसीमण्डल (पंजी.) गाजियाबाद (उ0प्र0) ।
202 शुक्ल यजुर्वेदीय 'संध्या" हिन्दी अनुवाद सहित (पाँचवां संस्करण) ।
203. श्रीराघवसेवा
204. श्रीरामचरितमानस मूलगुटका (27 पुरानी प्रतियों के आधार पर सम्पादित)।

अतिरिक्तग्रन्थाः

205. श्रीमानस सुषमा
206. श्रीगोपी गीत
207 श्री युगल गीत
208 श्री जानकीजीवन शतकम्
209. सीतानिर्वासन और शम्बूकबध नहीं
210. भगवान श्रीकृष्ण की राष्ट्रलीला
211. श्रीमानस में धर्मरथ
212 मानस में दशावतार
213 शिशुराघवशतक
214, वरनवु राम विवाह समाजू
215 मानस में पुष्प वाटिका

सम्मानपुरस्कारादयः–

1998 ई0 **धर्मचक्रवर्ती** विश्वधर्मसंसद् शिकागो (अमेरिका)
2001 ई० **महामहोपाध्यायः** श्रीलालबहादुरशास्त्रीकेन्द्रीयसंस्कृतविद्यापीठम् (मानित विश्वविद्यालय) नव देहली

2002 ई० **कविकुलरत्नम्**	सम्पूर्णानन्दसस्कृतविश्वविद्यालय वाराणसी (उ0प्र0)
2003 ई0 **राजशेखरसम्मानम्**	मध्यप्रदेशसंस्कृताकादमी भोपालम् (म0प्र0)
2003 ई० **अतिविशिष्टपुरस्कारः**	उत्तरप्रदेशसंस्कृतसंस्थानम् लखनऊ (उ0प्र0)
2004 ई० **राष्ट्रपतिपुरस्कारः**	भारतसरकार नव देहली
2005 ई0 **साहित्य अकादमी पुरस्कारः**	केन्द्रीय साहित्यअकादमी, नव देहली
2006 ई0 बाणभट्टपुरस्कारः	मध्यप्रदेशसंस्कृतबोर्ड, भोपालम् (म०प्र०)
2006 ई० श्रीवाणी–अलंकरणम्	रामकृष्णजयदयालडालमियासेवान्यासः नव देहली
2008 ई0 वाचस्पति–पुरस्कारः	के0के0 बिडला फाउण्डेशन, नव देहली
2013 ई० भाउरावदेवरसदृपुरस्कारः	भाऊरावदेवरसन्यासः, लखनऊ (उ0प्र0)
2013 ई0 पूर्वांचलरत्न– पुरस्कारः	अखिलभारतीयपत्रकारसमितिः वाराणसी
2013 ई० लोकमत– सम्मानम्	लोकमतदैनिक लखनऊ, (उ0प्र0)
2015 ई0 यश भारती–पुरस्कारः	उत्तरप्रदेश सरकारः लखनऊ, (उ0प्र0)
2015 ई० विश्वभारती–पुरस्कारः	उत्तरप्रदेश सरकारः लखनऊ, (उ0प्र0)
2019 ई0 साहित्यभूषण–पुरस्कारः	उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थानम् लखनऊ, (उ0प्र0)
2015 ई0 पद्मविभूषण–अलंकरणः	भारतसरकारः नव देहली

अध्ययनं प्रपूर्य गृहीतविरक्तदीक्षैः आचार्यैः दिव्यांगजनानां समुन्नतये अनेके धार्मिक–सामाजिक–शैक्षिक प्रकल्पाः प्रारब्धाः, तेषु सन्ति प्रमुखाः–

श्रीतुलसीपीठस्थ स्थापना– आचार्यः जगत्कल्याणकाम्यया श्रीतुलसीपीठस्थ स्थापना श्रीचित्रकूटधामनि मन्दाकिन्याः पश्चिमेतटे आमोदवने 1987 रिव्रष्टाब्दे गोस्वामितुलसीदासजयन्त्या श्रावणशुक्लसप्तम्यां तिथौ कृता। अखाड़ापरिषदा आचार्याः सर्वाम्नाय श्रीतुलसीपीठाधीश्वरा इति समुद्घोषिताः ।

जगद्गुरुपदे मूर्धाभिषेकः – आचार्याणाम् अप्रतिमा वैदुषीं, आध्यात्मिक तेजश्च सममिलक्ष्य 24–6–1988 दिवसांके रामानन्दसम्प्रदाये जगद्गुरु रामानन्दाचार्यपदे मूर्धाभिषेकं काशीविद्वत्परिषद् अकरोत्। अनन्तरं 3–2–1989 दिवसांके तिस्त्रिभिः अनी–अखाड़ापरिषद्भिः समर्थनं कृतम। आचार्यैः प्रस्थानत्रय्यां राघवकृपाभाष्यं कृत्वा जगद्गुरुत्वमपि सभाजितं प्रमाणितं च।

विद्यालयस्य स्थापना–आचार्यचरणैः समाजे दिव्यांगजनानां दयनीयां स्थितिं दृष्टवा तेषां समुन्नतये च संकल्पः कृतः। "जिन्हहिं परमप्रिय खिन्न" इति गोस्वामि तुलसीदासैः रामचरितमानसे प्रोक्तं वचनमभिलक्ष्य खिन्नजनानां सेवैव श्रीराघवसेवा, इति मत्वा दिव्यांगजनानां कृते प्राथमिककक्षातः पी–एच.डी. पर्यन्तम्, निःशुल्कशिक्षायाः शुभारम्भः कृतः। तत्र श्रीकामद्गिरिपरिसरे

श्रीतुलसीप्रज्ञाचक्षुमूकबधिर–उच्चतरमाध्यमिकविद्यालस्य स्थापनां विधाय निःशुल्कावासभोजनशिक्षादेः व्यवस्थाकृता। तत्र प्रायशः शतत्रयं (300) छात्राः अध्ययनं कुर्वन्तः सन्ति।

विश्वविद्यालयस्य स्थापना– आचार्यैः दिव्यांगजनानां निःस्वार्थभावनया सेवायाः क्रमे तेषां शिक्षणव्यवस्थां कृत्वा राष्ट्रीयविकासस्य मुख्यधारायां समुपस्थापयितुं जगद्गुरु रामभद्राचार्यदिव्यांगविश्वविद्यालयस्य स्थापनां श्रीचित्रकूटधाम्नि उत्तरप्रदेशे कृता। उत्तरप्रदेशस्य सर्वकारेण आचार्या जीवनपर्यन्तकुलाधिपतयः नियुक्ताः। विश्वविद्यालये छात्रेभ्यः निःशुल्केन भोजनावासशिक्षणानि तथा च अन्यापि अपेक्षिताः सहायता प्रदीयन्ते। तत्र साम्प्रतं मानविकी–सामाजिक विज्ञान–संगीत–शिक्षा–सूचनाप्रौद्योगिकी कलादय संकायाः गतिशीलाः राजन्ते।

एवम् भारतवर्षस्य गौरवभूताः पद्मविभूषणेन सम्मानिताः अस्माकम् आचार्यचरणाः दिवानिशं संस्कृतस्य, भारतीयसस्कृतेः, सनातनधर्मस्य, मानवतायाश्च संरक्षणाय, संवर्धनाय लोकव्यापिकरणाय च सततं प्रयतमानाः क्रियाशीलाश्च राजन्ते। आचार्याणां सदृशाः स्वयम् आचार्याः एव विभान्ति। आचार्याणां शास्त्रेषु अव्याहतां गतिं, अदूष्यं वैदुष्यम् अप्रतिमां च प्रतिभां दर्शं दर्शं समग्र एव लोक चकितः सन् आचार्यान् निर्निमेष दृशा पश्यति, स्तौति प्रार्थयते च इष्टदेवतां भवन्तु शतायुषः आचार्याः इति कामयमानः। अहमपि अत्र आचार्याणां दिव्यं भव्यं च व्यक्तित्वं कर्तृत्वं च विलोक्य एतदेव कथयन् विरमामि–

रामभद्रो हि जानाति, रामभद्रसरस्वतीम्।
रामभद्रो हि जानाति, रामभद्रसरस्वतीम् ।।

वेदान्तसूत्र के अधुनातन भाष्य–ब्रह्मसूत्र श्रीराघवकृपाभाष्य में ब्रह्मस्वरूप निरूपण

प्रो० रामसेवक दुबे,

आचार्य, संस्कृत–विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
Email: dr.rsdubeyau@gmail.com

रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि।
इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते।। (श्रीरामपूर्वतापिन्युपनिषद्)

नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावपरमानन्दस्वरूप जिस सच्चिदानन्द परब्रह्म में योगियों का चित्त रमता है, वह परमब्रह्म ही श्रीराम पद द्वारा कहा गया जाता है।

वेदान्त वाङ्मय को वेदों का शिर माना जाता है। परमात्मा के श्वास प्रश्वासभूत अशेष वैदिक वाङ्मय में जिस परम तत्त्व को अज, ईश, देव, परमपिता, परमेश्वर, परावर, भगवान्, सर्वशक्तिमान्, अक्षर, अक्षय, अक्षरब्रह्म, परब्रह्म, अन्तर्यामी, अच्युत, जगन्नाथ, जगन्नियन्ता, महाप्रभु, सच्चिदानन्द, अखिलेश, ईश्वर, ब्रह्म, आत्मा, शिव आदि शब्दों के द्वारा विभूषित किया गया है। उस परम तत्त्व का गहन चिन्तन ही वेदान्तों की तत्त्व–मीमांसा है। नित्यशुद्धबुद्धमुक्तसत्यस्वभाव परमात्मा के इसी स्वरूप को प्रस्थानत्रयी का मुख्य प्रतिपाद्य कहा गया है। श्रीमद्भगवद्गीता में इसी परमतत्त्व को कहा गया है 'वेदैरशेषैरहमेव वेद्यः' इस महावाक्य का उद्घोष करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण इसी परमतत्त्व को अहम् शब्द के द्वारा वेदवेद्य आत्मा के रूप में उपदिष्ट किया है। यही कूटस्थ नित्य अक्षर ब्रह्म है। (श्रीमद्भगवद्गीता **15/15**)। श्रुतियों में अधोलिखित महावाक्यों के द्वारा ब्रह्म सम्बन्धी उल्लेख प्राप्त होता है–

- **अक्षरं ब्रह्म परमम्।**
- **कूटस्थोऽक्षर उच्यते।**
- **नित्यं विभुं सर्वगतम् सुसूक्ष्मम्।**
- **सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।**
- **आनन्दं ब्रह्मेति व्यजानात्।**
- **ईशावास्यमिदं सर्वम्।**
- **यद् ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।**

- **यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते।**
- **तद् ब्रह्म।**
- **तद्विजिज्ञासस्व।**
- **अयमात्मा ब्रह्म।**
- **तत्त्वमसि, यद् पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे।**
- **अहं ब्रह्मास्मि आदि।**

अनेक वेदान्त वाक्यों के द्वारा जिस परमसत्ता का विचार वैदिक वाङ्मय में किया गया है, वेदान्त की प्रस्थानत्रयी में अनेक मतवादी आचार्यों के द्वारा विविध सिद्धान्तों के रूप में उसे ही निरूपित किया गया है। उपनिषद् वाङ्मय में सुचिन्तित इसी तत्त्व को भगवान् बादरायण ने ब्रह्मसूत्र के अन्तर्गत 555 सूत्रों में सूत्रित किया है। वेदान्तसूत्र, शारीरकसूत्र, भिक्षुसूत्र आदि संज्ञाओं से विभूषित इसी ब्रह्मसूत्र को न्यायप्रस्थान के नाम से भी अभिहित किया गया है। वेदों और उपनिषदों में वर्णित इसी सुविचारित तत्त्वमीमांसा का 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' सूत्र के द्वारा आरम्भ करते हुए 'अनावृत्तिः शब्दात् अनावृत्तिः शब्दात्' सूत्र पर्यन्त विचार किया गया है। चार अध्यायों, सोलह पादों,एक सौ इक्यानवे अधिकरणों और 555 सूत्रों में निबद्ध इसी ग्रन्थ को उत्तरमीमांसा भी कहते हैं। इस ग्रन्थ के विश्वतोमुख सूत्रों पर आठवीं शताब्दी से लेकर 21वीं शताब्दी के आरम्भ तक भगवान् श्रीमदादिजगद्गुरुशंकराचार्य से आरम्भ करके जगद्गुरुरामभद्राचार्य पर्यन्त एकादश महनीय भाष्यों और अनेकानेक विद्वत्तापूर्ण–टीकाओं के द्वारा इस ब्रह्मसूत्र के निहितार्थ को उपबृंहित किया गया है–

- **भगवान् शंकराचार्य कृत शारीरक भाष्य में केवलाद्वैत।**
- **भास्कर कृत भाष्करभाष्य में भेदाभेद।**
- **श्रीरामानुज कृत श्रीभाष्य में विशिष्टाद्वैत।**
- **श्रीमध्वाचार्य कृत पूर्णप्रज्ञभाष्य में द्वैत।**
- **निम्बार्क कृत वेदान्तपरिजात में द्वैताद्वैत।**
- **श्री कण्ठ कृत शैवभाष्य में शैवविशिष्टाद्वैत।**
- **श्रीपति विरचित श्रीकरभाष्य में वीरशैवविशिष्टाद्वैत।**
- **वल्लभाचार्य कृत अणुभाष्य में शुद्धाद्वैत।**
- **आचार्यविज्ञानभिक्षु कृत विज्ञानामृतभाष्य में अविभागाद्वैत।**

- **आचार्य बलदेव कृत गोविन्दभाष्य में अचिन्त्यभेदाभेद, आदि** सिद्धान्तों का प्रतिष्ठापन किया गया है।

सतत परिवर्तनशील इस संसार में परिवर्तनशील आध्यात्मिक, शास्त्रीय, व्यावहारिक, सांस्कृतिक और मानवीय मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में शास्त्रों की व्याख्या और उसकी स्वीकार्यता प्रस्तुत करना जहाँ मनीषियों और महामेधावी चिन्तकों का परम कर्त्तव्य है, वहीं उन–उन सिद्धान्तों के अनुसार शास्त्रीय मीमांसा और समसामयिक समाज में उसकी उपयोगिता सिद्ध करने की दिशा में मार्गदर्शन करना नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभासम्पन्न वर्तमान आचार्यों का भी परम धर्म है। समाज के बुद्धजीवियों को प्राचीन से लेकर अधुनातन सिद्धान्तों का ज्ञान होता है, ज्ञान की इस परम्परा के द्वारा विद्वत् एवं सामान्य जगत् में अध्ययन, बोध और आचरण सम्पन्न हो सकता है।

वेदान्तसूत्र के इन 10 प्रमुख भाष्यों के अनुक्रम में अधुनातन भाष्य श्री जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामी रामभद्राचार्य के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। लगभग 20 वर्ष पूर्व लिखे गए इस महनीय भाष्य को भाष्यकार ने श्रीराघवकृपाभाष्य के नाम से विभूषित किया है। विशिष्टाद्वैत के ही इस मतवाद के अनुसार रामब्रह्मवाद की प्रतिष्ठा की गयी है।

प्रस्थानत्रयी भाष्यकारों में भगवान् शंकराचार्य से आरम्भ करके श्रीरामभद्राचार्यपर्यन्त किये गये इन एकादश भाष्यों के द्वारा वेदान्त की तत्त्वमीमांसा का व्यापक स्वरूप अध्येताओं, दर्शनानुरागियों, विद्वानों, ज्ञानियों और गवेषकों तथा जिज्ञासुओं को प्राप्त होता है। वेदान्त तत्त्वमीमांसा के अन्तर्गत जीव, जगत्, ईश्वर, माया, अज्ञान, जन्म, मृत्यु, पुनर्जन्म, कर्म, कर्मफल, स्वर्ग, मोक्ष आदि तत्त्वों पर मनीषियों के द्वारा कृत चिन्तन प्राप्त होता है। भगवान् बादरायण के द्वारा उपनिषदों का मन्थन करने के उपरान्त इन ब्रह्मसूत्रों तथा सभी भाष्यकारों के द्वारा मानवमात्र को परमकल्याण प्राप्त करने के लिए ही इन सूत्रों पर भाष्यों को रचा गया है। एक से बढ़कर एक अद्भुत ज्ञानसम्पन्न, तर्कप्रवण और महामेधावी आचार्यों ने अपने–अपने सिद्धान्तों को वेद का परम प्रतिपाद्य बताया है। इन आचार्यों के द्वारा सम्पूर्ण वेदान्त वाङ्मय के अनुशीलनोपरान्त अधिगत और उपदिष्ट परमसत्ता विषयक चिन्तन और मोक्ष की प्राप्ति ही प्रस्थानत्रयी का निश्चितार्थ है। इन भाष्यकारों ने अपने–अपने सिद्धान्त के प्रतिपादन, प्रचार और प्रसार पर ही विशेष बल प्रदान किया है। अधुनातन श्रीराघवकृपाभाष्य के अन्तर्गत सभी भक्तों को वेदान्त का अधिकार प्रदान किया गया है। दर्शनानुरागियों, वेदान्तजिज्ञासुओं, वेदान्त के शिक्षकों के द्वारा ब्रह्मसूत्र के अधुनातन इस श्रीराघवकृपाभाष्य की विशेषताओं और तद्गत तत्त्वमीमांसा विषयक सिद्धान्तों से विद्वदज्जगत् को परिचय कराने के लिए सम्प्रति श्रीराघवकृपाभाष्य की तत्त्वविषयक मीमांसा पर प्रयत्न किया जाना परमावश्यक है।

प्रस्तुत शोधपत्र के अन्तर्गत श्रीराघवकृपाभाष्य में भाष्यकार को अभीष्ट और वेदान्त–वाङ्मय में वर्णित ब्रह्मविषयक स्वरूप का निरूपण प्रस्तुत किया जा रहा है–ब्रह्मविषयक इस स्वरूप निरूपण में प्रमाण के रूप में भाष्यकार श्री रामभद्राचार्य के द्वारा पूर्वभाष्यकारों की मान्यताओं का अतिक्रमण करते हुए राघवकृपाभाष्य के अन्तर्गत उन–उन प्रमाणों के साथ श्रीवाल्मीकीय रामायण, महाभारत, भागवतादि पुराणों, पाणिनीय–अष्टाध्यायी और श्रीरामचरितमानस आदि को भी स्वीकार किया गया है। नाना पुराण निगमागम को प्रमाण के रूप में स्वीकार करने वाले श्रीरामचरितमानस आदि को भी आचार्य ने अपने भाष्य का सुदृढ़ प्रमाणभूत आधार स्वीकार किया है। अतः वैदिक वाङ्मय से आरम्भ करके अद्यतन वैदिक मान्यताओं को सम्मिलित करते हुए श्रीराघवकृपा भाष्यकार ने जिन सिद्धान्तों का उपदेश किया है समसामयिक विद्वत् जगत् में उसकी स्वीकार्यता और महत्ता का भी विशेष स्थान एवं महत्त्व है।

सतत परिवर्तनशील इस संसार में परिवर्तनशील आध्यात्मिक, शास्त्रीय, व्यावहारिक, सांस्कृतिक और मानवीय मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में शास्त्रों की व्याख्या और उसकी स्वीकार्यता प्रस्तुत करना जहाँ मनीषियों और महामेधावी चिन्तकों का परम कर्त्तव्य है, वहीं उन–उन सिद्धान्तों के अनुसार शास्त्रीय मीमांसा और समसामयिक समाज में उसकी उपयोगिता सिद्ध करने की दिशा में मार्गदर्शन करना नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभासम्पन्न वर्तमान आचार्यों का भी परम धर्म है। समाज के बुद्धजीवियों को प्राचीन से लेकर अधुनातन सिद्धान्तों का ज्ञान होता है, ज्ञान की इस परम्परा के द्वारा विद्वत् एवं सामान्य जगत् में अध्ययन, बोध और आचरण सम्पन्न हो सकता है। समाज में किसी भी प्रकार की शास्त्रीय एवं सांस्कृतिक भ्रान्ति न होने देने के लिए निरन्तर उपदेश देना और उठने वाली शंकाओं का निराकण करना विद्वानों का परम कर्त्तव्य है। (श्रीमद्भगवद्गीता–3/26)

श्रीराघवकृपाभाष्य में ब्रह्मस्वरूप निरूपण का जो सिद्धान्त प्राप्त होता है, वह प्रस्थानत्रयी पर किये गये अन्य सभी भाष्यों से विलक्षण है। प्रपत्ति मार्ग से प्राप्त करने योग्य जगत् के जन्म–स्थिति और विलय जिस परम कारण से श्रुति, स्मृति, इतिहास एवं पुराणों आदि में वर्णित है, श्रीराघवकृपाभाष्य के अनुसार वह वेदान्तवेद्य ब्रह्म भगवान श्रीराम हैं। ब्रह्मसूत्र श्रीराघवकृपा भाष्य के आरम्भ में मंगलाचरण के अन्तर्गत षोडश श्लोकों के अन्तर्गत वेदान्तवेद्य सगुणावतार कौशल्यनन्दवर्धन, दशरथनन्दन, रघुकुलतिलक श्रीरामचन्द्र की ब्रह्म के रूप की वन्दना की गयी है। भगवान् बादरायणकृत ब्रह्मसूत्रों के भाष्य का आरम्भ करते हुए जिज्ञासाधिकरण में ब्रह्म के स्वरूप में श्रीराम का उल्लेख किया गया है। ब्रह्मसूत्र श्रीराघवकृपा भाष्य में उन्ही श्रीराम को ब्रह्मके रूप में कहा गया है जो अनन्तानन्त नित्यानन्द चिदात्मा है। ब्रह्मपदवाच्य हैं और जिसमें योगी समाधिस्थ होते हैं–

रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि।
इति रामपदेनाऽसौ परमब्रह्म विधीयते।।

(श्रीरामपूर्वतापन्योपनिषद्, 1/6, पृष्ठ सं0–49)

ब्रह्मजिज्ञासाधिकरण में श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण से ब्रह्म के स्वरूप को उद्धृत करते हुए भाष्यकार ने समस्त लोकों के आदि–मध्य और अन्त में रघुकुलनन्दन भगवान् श्रीराम को ही स्वीकार किया है–

अक्षरं ब्रह्मसत्यं च मध्ये चान्ते च राघव।
लोकानां त्वं परोधर्मो विष्वक्सेन चतुर्भुजः।। (वाल्मीकि रामायण 6/117/15)

भाष्यकार का कथन है–अस्माकं तु सीताराम विशिष्टाद्वैतवादे निर्विवादे विगलितसकलश्रुतिविसादे जीवस्य ब्रह्मणः पृथक सत्ता। सा च नित्या भगवदधीना च–नित्यो नित्यानाम् इतिश्रुतेः।

मानस का उल्लेख करते हुए श्रीराघवकृपाभाष्यकार ने प्रमाण भी प्रस्तुत किया है–

राम ब्रह्म परमारथरूपा।
अविगत अकथ अनादि अनूपा।। (श्रीरामचरितमानस–2/93/7)

मानस की इस पंक्ति का रूपान्तरण करते हुए भाष्यकार कहते हैं–

परमार्थस्वरूपो हि रामो ब्रह्म सनातनः।
अविगतो ह्यकथ्यश्च च अनाद्यनुपमतथास्य।। (ब्र0 सू0 रा0 भा0 पृष्ठ सं0–49)

भाष्यकार के अनुसार श्रुतियों में वर्णित परमब्रह्म का स्वरूप सर्वथा घटित होता है।

एष आत्मापहतपापात्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पो यथा ह्येवेह प्रजा अन्वाविशन्ति यथानुशासनं यं यमन्तमभिकामा भवन्ति यं जनपदं यं क्षेत्रभागं तं तमेवोपजीवन्ति। (छा0उ0रा0भा0–8/1/5, पृष्ठ–280)

इत्येवं श्रुतिनिगदितगुणाः सर्वेऽपि सीताभिरामे श्रीरामे संघटन्ते अस्मात् राम एवं परमब्रह्म रामादन्यन्न विद्यते ।

भाष्यकार के द्वारा अपने भाष्य में निर्गुण एवं सगुण शब्द का अभिनव निर्वचन करते हुए कहा गया है–

तच्च रामाख्यां ब्रह्म निर्गुणं सगुणं चेत्युभयम्। निरस्ताः हेयगुणाः येन
तन्निर्गुणं वात्सल्यादिभिः गुणैः सह वर्तमानं सगुणम्।
यद्वा निराकृताः सत्वरजस्तमोगुणाः येन तन्निर्गुणम्।
यद्वा गुणो बन्धनं रज्वात्मकम् निराकृतः गुणः येन तन्निर्गुणम्।
यद्वा निरुपमा अव्यभिचारिणः वात्सल्यादयोऽनन्यसाधारणाः गुणाः यस्य तन्निर्गुणम्।
यद्वा निश्शेषा गुणाः सारल्यादयो यस्मिन् तन्निर्गुणम्।

यद्वा निरुपद्रवाः निरतिशयाः निरुपाधिकाः गुणा यस्य तन्निर्गुणम्। निःश्रेयष्कराः गुणाः यस्य तन्निर्गुणम्। वस्तुतस्त्वेककालावच्छेदेनैकाधिकरणतावच्छेदेनैकसंसर्गावच्छेदेन सकल विद्धधर्माश्रयतावच्छेदकतावत्त्वमिति दृष्ट्या यौगपद्येनैककाल एव निर्गुणत्वं सगुणत्वंचेति मिथोविरुद्धधर्मद्धेयत्वं भगवति श्रीरामे संघटते। (ब्र0 सू0 रा0 भा0 पृ0–51)

श्रुतियों पर उपलब्ध श्रीराघवकृपा भाष्य की लोकोत्तर विशेषता देखने को प्राप्त होती है। महाकवि, महावैयाकरण और महादार्शनिक श्रीराघवकृपाभाष्यकार ने सगुण तथा निर्गुण शब्द का अद्भुत निर्वचन करते हुए श्रुति वर्णित उन समस्त ब्रह्म विषयकस्वरूपों का परमब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीराम के साथ संगत मानते हुए प्रस्तुत किया है।

छान्दोग्य उपनिषद् श्रुति राघवकृपाभाष्य में भी निर्गुण पद का निर्वचन करते हुए भाष्यकार ने विविध प्रकार से उन सभी तात्पर्यों की संगति भगवान् श्रीराम की ब्रह्मरूपता के साथ ही अन्वित किया है–

अ. निरस्ताः हेयगुणाः येन तन्निर्गुणम् अर्थात् भगवान् श्रीराम के द्वारा भक्तों के लिए प्रतिकूल गुण छोड दिये जाते है उन्ही गुणों को स्वीकार किए जाते है जिनसे भक्तों को आनन्द की प्राप्ति होती है।

ब. निराकृताः निरस्ताः अन्ताः सत्त्वरजस्तमोगुणाः यस्मात् तन्निर्गुणम् अर्थात् निरस्त कर दिया गया है गुणों का अन्त ही जिसके द्वारा वही निर्गुण है।

स. निरुपद्रवा गुणाः तन्निर्गुणम् अथवा भगवान् के गुणों में किसी प्रकार का उपद्रव नहीं होता इसलिए परमहंस परिव्राजकाचार्य उनके गुणों का चिन्तन करते हुए परमानन्द की प्राप्ति कर जाते हैं।

द. निःशेषगुणाः गुणाः यस्मिन् तन्निर्गुणम् अर्थात् सभी गुण जिसमें होते हैं वह निर्गुण होता है।

य. निरन्तराः गुणाः यस्य तन्निर्गुणम् अर्थात् समस्त गुण अभिन्न हो करके व्यवधान के विना जिस परमात्मा में रहते हैं वही निर्गुण है, एक पल के लिए भी गुण भगवान् को नहीं छोड़ते हैं।

र. निःसामान्याः निःसाधारणा गुणाः यस्मिन् तन्निर्गुणम् अर्थात् सामान्य प्राणियों में रहने वाले साधारण गुणों को छोड़कर केवल लोकोत्तर गुण जिसमें होते हैं वह निर्गुण है।

ल. निरतिशयाः निरुपाधिकाः गुणाः यस्य अथवा निःश्रेयस्करायाः गुणाः यस्य तन्निर्गुणम्, अर्थात् निरतिशय और निःश्रेयस्करादि गुणों के कारण निर्गुण दोनों स्वरूपों में श्रुतियों ने भगवान् श्रीराम को ब्रह्म स्वीकार किया है।

उपनिषदों का मन्तव्य है कि दशरथ पुत्र रघुकुलतिलक चिन्मयस्वरूप श्रीराम ही ब्रह्मस्वरूप कहे गये हैं–

चिन्मयेऽस्मिन् महाविष्णौ जाते दशरथे हरौ।
रघो कुलेऽखिलं राति राजते यो महीस्थितः।।

नैयायिकों के अनुसार यदि यह प्रश्न किया जाय कि गुण–गुणी का समवाय सम्बन्ध होता है और उत्पन्न द्रव्य प्रथम क्षण में निर्गुण और निष्क्रिय रहता है, भाष्यकार के मतानुसार चूँकि परमात्मा कभी उत्पन्न नहीं होता है अतः उसमें गुणों का सम्बन्ध नहीं हो सकता है। नैयायिकों को अभीष्ट इन मन्तव्यों को इसलिए स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि प्रत्येक गुण भगवद्स्वरूप होता है अतः गुण स्वरूप सम्बन्ध से ही भगवान् में रहते हैं। प्रमाणस्वरूप श्रीमद्भागवत का श्लोक उद्धृत किया गया हैं–

एते चान्ये च भगवन्नित्या यत्र महागुणाः।
प्रार्थ्या महत्त्वमिच्छद्भिर्न वियन्ति स्म कर्हिचित्।।

(श्रीमद्भागवत–1/16/29, छा0उ0 रा0भा0, पृ0–275)

अतः ब्रह्मसूत्र में जिज्ञासाधिकरण के अन्तर्गत जिस ब्रह्म का उल्लेख किया गया है वह वेदवेद्य ब्रह्म श्रीराम ही हैं। यह राघवकृपाभाष्यकार श्रीरामभद्राचार्य का प्रबल मत है।

इतिहास और पुराणों के द्वारा वेदों का उपबृंहण किया गया है–इतिहासपुराणेभ्यो वेदार्थं उपबृंहयेत–इस महनीय उक्ति के अनुसार रामायण और महाभारत इतिहास ग्रन्थ होने के कारण वेदों का ही उपबृंहण कर रहे हैं। रामायण की उक्ति है कि–

इदं पवित्रं पापघ्नं पुण्यै वेदैश्च सम्मितम्।
यः पठेद्रामचरितं सर्वपापैः प्रमुच्यते।। (वाल्मीकि रामायण)

अतः जिज्ञासाधिकरण का जिज्ञास्य ब्रह्म रामायण वर्णित श्रीराम ही है। भाष्यकार की उक्ति उद्धृत करना यहाँ समीचीन होगा–

अं श्रीरामचन्द्रं तनोति विस्तारयति इति रामायणम्। अतस्तस्माद्रामायणात् ब्रह्मजिज्ञासा कर्त्तव्या। तस्य वेदसम्मितत्वात्।

जिज्ञासाधिकरण के जिज्ञास्य ब्रह्म का वर्णन करते हुए भाष्यकार श्रीरामभद्राचार्य जी का कथन है–

सैष दाशरथिः रामः सैष रामो धनुर्धरः। सैष सीतापतिरामः सैष ब्रह्ममयो हरिः।।

अतः श्रुतियों, स्मृतियों, पुराणों, रामायण, महाभारत में वर्णित राम ही वेदान्त सूत्र का जिज्ञास्य ब्रह्म है। तद्विजिज्ञासस्व। तदेव ब्रह्म। (तैत्ति० 2/3) तज्जलानिति। (छान्दोग्य 3/14/3), आदि श्रुतियों के द्वारा जिस जिज्ञास्य ब्रह्म का उल्लेख किया गया है वह जिज्ञास्य ब्रह्म श्रीरामभद्राचार्य की दृष्टि में भगवान श्रीराम ही हैं।

भाष्यकार का कथन है–आसक्तिः परमा भक्तिः सा च सीतापतौ मतौ। श्रीरामभद्राचार्यस्य शास्त्रसिद्धान्तनिश्चयः।। अर्थात् समस्त शास्त्रों का यही निश्चय है कि भगवान् श्रीराम में ही परमाभक्ति करनी चाहिए।

मानस की यह उक्ति भी इसी प्रसंग को दृढ करती है–

कामिह नारि प्रियारि जिमि, लोभी प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरन्तर, प्रिय लागहु मोहि राम।।

(श्रीरामचरितमानस–7/130)

इस प्रकार ब्रह्मसूत्र श्रीराघवकृपाभाष्यकार जिज्ञासाधिकरण के निश्चितार्थ जिज्ञास्य ब्रह्म के रूप में श्रीराम को ही स्वीकार करते हैं। जन्माद्यधिकरण के अन्तर्गत जिज्ञास्य ब्रह्म के स्वरूप का संकेत करते हुए श्रीराघवकृपाभाष्य द्रष्टव्य है–

जन्मस्थितिलयाश्चैव यतोऽस्य जगतो मताः।
उपादाननिमित्तात्मा स रामो जयति प्रभुः।। (ब्र0सू0रा0भा0 पृ0–53)

उपर्युक्त के अनुसार इस जगत् की उत्पत्ति स्थिति और लय के परम कारण और जगत् के उपादान और निमित्त कारण के रूप में भाष्यकार के द्वारा भगवान श्रीराम को स्वीकार किया गया है।

उपनिषदों का अनुशीलन करते हुए जिज्ञासु को अनेक बार ब्रह्म शब्द का श्रवण होने और ब्रह्मकी विशेषताओं के विषय में अवगति होने के उपरान्त यह सहज ही विचार उठता है कि यह ब्रह्म क्या है? ब्रह्म विषयक इस जिज्ञासा का विवेचन भगवान् बादरायण ने ब्रह्मसूत्र के जिज्ञासा अधिकरण में किया है । तत्पश्चात् ब्रह्म के लक्षण , ब्रह्म का स्वरूप आदि विषयों का निरूपण जन्माद्यधिकरण के अन्तर्गत भाष्यकारों के द्वारा किया गया है। जिस ब्रह्म शब्द की अनेकधा श्रुतियों में चर्चा हुई है। यथा–

सत्यं ज्ञानमनन्तम् ब्रह्म। त्रिविधं ब्रह्मएतत् ब्रह्म। प्रकृति ब्रह्म। ममयोनिर्निहितम् ब्रह्म। अन्नं ब्रह्म। हिरण्यगर्भो ब्रह्म। यस्य ब्रह्मच क्षत्रियं च। वाग्रूप ब्रह्म। कं ब्रह्म। खं ब्रह्म।यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते तद् ब्रह्म। तद्विजिज्ञासस्व। आदि श्रुति और स्मृति वाक्यों में ब्रह्मशब्द दृष्टव्य है।

जन्माद्यधिकरण के अन्तर्गत उक्त सभी पदों पर भाष्यकारों ने विचार किया है। श्रीमदाद्यजगद्गुरुशंकराचार्य से आरम्भ करके श्रीरामभद्राचार्य पर्यन्त सभी भाष्यकारों ने ब्रह्म पद का अर्थ, लक्षण, स्वरूप, तात्पर्य, साधना और प्राप्ति तथा उसके फलों पर व्यापक विचार किया हैं। श्रीराघवकृपाभाष्य के अनुसार धर्मजिासा के पश्चात् कर्मों की अनित्यता के कारण वेदान्त सम्मत ब्रह्म की जिज्ञासा करनी चाहिए और वह वेदान्त सम्मत ब्रह्म श्रीराम के नाम से उपदिष्ट किया गया है–

धर्मजिज्ञासितादूर्ध्वमनित्यत्वाच्च कर्मणाम्।
रामाख्यब्रह्मजिज्ञासा कार्या वेदान्तसम्मता।।
जिज्ञासायाञ्चाधिकरणं ब्रह्मसूत्रे यथामति
श्रीरामभद्राचार्येण व्याख्यातं राघवाप्तये ।।

(श्री ब्र0सू0रा0भा0 पृष्ठ सं0–53)

मुमुक्ष जीव के द्वारा सगुण साकार ब्रह्म श्रीराम की शरण में जाना चाहिए इस विधि वाक्यानुसार आर्ष वाङ्मय के द्वारा निर्णीत सगुण साकार श्रीराम की जिज्ञासा ही वेदान्तानुसार भगवान् बादरायण को अभीष्ट है। जिज्ञासाधिकरण के अन्तर्गत श्रीरामभद्राचार्य ने अपने इसी मन्तव्य को दृढ़तापूर्वक स्थापित किया है–वेदान्त के अधिकारी के रूप में सभी मतवादों के उपदेष्टा आचार्यों ने ब्रह्म विचार करने की पूर्व योग्यता का निर्धारण किया है जैसे अद्वैतवेदान्त में साधन चतुष्टय सम्पन्न प्रमाता को अधिकारी कहा गया है। वेदान्त अधिकार निरूपण के इस प्रसंग में वर्णव्यवस्था की प्रधानता भी स्वीकार की गयी है। श्रीराघवकृपाभाष्य के अनुसार इस वेदान्ताधिकार को स्वीकृत नही किया गया है। श्रीराघवकृपाभाष्य में ब्रह्मजिज्ञासा का अधिकार सभी प्राणियों को प्रदान किया गया है–यद्वा ब्रह्मजिज्ञासा नाम परमेश्वरप्रपत्तिप्रारम्भिकावस्था, तस्यां सर्वेषामधिकारः। यथा प्राहुः पुण्यसदनशर्मपुण्यपुंजभूता अस्मत्सम्प्रदायाचार्यचरणाः जगद्गुरुः श्रीमदाद्यरामानन्दाचार्याः ।

सर्वे प्रपत्तेरधिकरिणो मताः शक्ता अशक्ता पदयोर्जगत्पतेः।
अपेक्षते तत्र कुलं बलं च नो न च चापिकालो न विशुद्धतापि वा।।

(ब्र0सू0रा0भा0पृ0–18)

इस प्रकार से प्रपत्ति मार्ग प्रत्येक जीव को ब्रह्म विचार और ब्रह्म प्राप्ति का अधिकार प्रदान करता है। ब्रह्मविचार के लिये वर्णव्यवस्था आदि सभी प्रतिषेधों को निरस्त करते हुए प्रपत्ति मार्ग से सगुण और निर्गुण उभयरूप ब्रह्म भगवान् श्रीराम की शरण में जाना चाहिए । छान्दोग्योपनिषद् राघवकृपा भाष्य में इसी सिद्धान्त का भाष्यकार ने सुस्पष्ट निरूपण किया है–

प्रभुरपहतपात्मा विज्वरो यो विमृत्युर्नृपतिरथविशोको योऽजिघित्सोऽपिपासः।
गुणनिधिरभिरामः सत्यकामः स रामो जयति जगदधीशः सत्यसंकल्प एषः।।
समस्तकल्याणगुणाभिरामः संसारपाथोधिविपद्विरामः।
लोकाभिरामोऽवतु पूर्णकामः सीताभिरामः सगुणः स रामः।।
निर्गुणं सगुणं ब्रह्म यं सदा श्रुतयो जगुः।
तमष्टमेष्टसंयुक्तं मुक्तानां शरणं श्रये ।।

(छा0 उ0 रा0 भा0 पृ0–270)

वेदान्तवेद्य ब्रह्माधिकार के सम्बन्ध में राघवकृपा भाष्य की अधोलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य है–

प्रमेयः श्रीरामः सगुणमगुणं ब्रह्म विमलम्।
प्रमातारो जीवा भजनरसिका मैथिलिपतौ।।
प्रमाणं प्रत्यक्षं श्रुतिवचनमेवानुमितिकम्।
गुरुरामानन्दः प्रणिगदति वेदान्तनिगमे।।

(श्रीरामानन्दसिद्धान्तचन्द्रिका मं०–9 छा0उ0 रा0भा0, पृ0–9)

ब्रह्मसूत्र श्रीराघवकृपाभाष्य के मतानुसार मोक्ष प्राप्त करने और मानव कल्याण के लिए भगवान् बादरायण ने ब्रह्ममीमांसा की रचना की है। अतः राघवकृपा भाष्य के अनुसार निर्गुण और सगुण स्वरूप सम्पन्न श्रीराम ब्रह्म की शरण ही सभी प्राणियों के लिए कल्याणकारी है। भाष्यानुसार वेदान्तवेद्य ब्रह्म श्रीराम ही हैं, इस सिद्धान्त का प्रमाण अनेक स्थलों पर उल्लिखित है। श्रीरामानन्द सम्प्रदाय की यह ब्रह्मविषयक मान्यता भविष्योत्तर पुराण और वाल्मीकीय रामायण में बहुधा द्रष्टव्य है। गोस्वामी तुलसीदास को उद्धृत करते हुए भाष्यकार ने श्रीराम को ही वेदान्तवेद्य ब्रह्म और जगत् का जन्मादि कारण सिद्ध किया है। गोस्वामी तुलसीदास की एतत् सम्बन्धी सन्धारणा का उल्लेखनीय है–

शान्तं शाश्वतमप्रमेयमनघं निर्वाणशान्तिप्रदम्,
ब्रह्माशम्भुफणीन्द्रसेव्यमनिशं वेदान्तवेद्यं विभुम्।
रामाख्यं जगदीश्वरं सुरुगुरुं मायामनुष्यं हरिम्,
वन्देऽहं करुणाकरं रघुवरं भूपालचूडामणिम्।।

(श्रीरामचरिमानस 5–मं० 1)

ब्रह्मसूत्र श्रीराघवकृपाभाष्य के तृतीयाधिकरण में शास्त्रयोनित्वात् सूत्र के अन्तर्गत स्वतःप्रमाणभूत वैदिक वाङ्मय, व्यासप्रणीत अष्टादशपुराण, आदिकविकृत रामायण और लक्षश्लोकी व्यासरचना महाभारत और छान्दोग्य–माण्डूक्य–मुण्डक आदि के द्वारा भाष्यकार श्रीरामभद्राचार्य ने भगवान् श्रीराम को ब्रह्मस्वरूप उपदिष्ट किया है। ऋग्वेद की ऋचा को उद्धृत करते हुए श्रुतियों में भी राम की ब्रह्मरूपता को रेखांकित किया है–

भद्रो भद्रया सचमान आगात् स्वसारो जारो अभ्येति पश्चात्।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन् उशद्भिर्वर्णैरेभि राममस्थात्।। (ऋक् सं० 10.3.3)

अर्थात् श्रीराम की ब्रह्मरूपता का उल्लेख करते हुए उनसे ही समस्त ऋग्वेदादि शास्त्रों की उत्पत्ति कही गयी है। जिस प्रकार जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश का कारण श्रुतियों में ब्रह्म को कहा गया है उसी प्रकार ऋग्वेदादि शास्त्रों को भी ब्रह्म के श्वास–प्रश्वास के रूप में

श्रुतियों में कहा गया है। श्रीरामचरितमानस की पंक्ति को उद्धृत करते हुए भाष्यकार ने ब्रह्मस्वरूप श्रीराम को सभी श्रुतियों का कारण उपदिष्ट किया है–**जाकी सहज स्वास श्रुति चारी। सो हरि पढ़ै यह कौतुक भारी।।**

मानस की ये पंक्तियाँ श्रुतियों का रूपान्तरण ही हैं–**अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतत् ऋग्वेदः यजुर्वेदः सामवेदो आथर्वणः**। (बृ.उ. 2/4/1001)

वेदों में श्रीराम की ब्रह्मरूपता का उल्लेख करते हुए भाष्यकार ने अधोलिखित ऋचा का उल्लेख किया है–

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽनाय।।

श्रुतिः ससमारम्भं प्राह–यदहम् आदित्यवर्णम् आदित्यात् जातः क्षत्रियवर्णो यस्य तथाभूतम्– यद्वा आदित्यवत् प्रकाश्यमानो वर्णो यस्य, यद्वा आदित्यवर्णं बालसूर्यसमानं पीताम्बरं यस्य तादृशम्। तमसः परस्तात् अन्धकारात् परीभूतम्, यद्वा तमसः नद्याः परस्तात् परस्मिन् तटे एतमरण्ययातम् वनवासाय कृतनिश्चयं तं महान्तं पुरुषं परब्रह्म श्रीरामम् अहं वेद जानामि। तं परमात्मानं श्रीराममेव यः श्रुतिः रामादन्यस्योपासनं व्यवच्छिनत्ति। एवमनन्यनिष्ठः सन् राममात्रं विदित्वा उपास्य अतिमृत्युं मृत्युमतिक्रान्तं श्रीसाकेतलोकम् एति प्राप्नोति। अयनाय रामस्य अयनाय अन्यः पन्था न विद्यते। ब्र.सू. रा.भा. पृ.सं.–71

भाष्यकार ने उक्त का विवेचन करते हुए अपने कथन को पुष्ट करने के लिए वाल्मीकीय रामायण का प्रमाण भी प्रस्तुत किया है–

कथमिन्दीवरश्यामं दीर्घबाहुं महाबलम्।
अभिराममहं रामं स्थापयिष्यामि दण्डकान्।। (वा. रा. 2.13.10)

वाल्मीकीय रामायण के उक्त श्लोक पर भाष्यकार की पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं। ब्रह्मसूत्र के समन्वयाधिकरण में भाष्यकार श्रीरामभद्राचार्य ने वेदान्त की समस्त श्रुतियों का समन्वय भगवान् श्रीराम की ब्रह्मरूपता में स्वीकार किया है–

ईशावास्यमिदं सर्वम्।
अनेजदेकं मनसो जवीयो।
नैनद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्षत्।
तद्धावतो मातरिश्वा दधाति।
आदि श्रुतियों का समन्वय अपने श्रीराघवकृपाभाष्य में समन्वित किया है।
(दृष्टव्य–रा0 1/1/4, ब्र0सू0 रा0भा0, पृ0–75)

प्रमाणस्वरूप भाष्यकार ने उक्त श्रुतियों का वह रूपान्तर प्रस्तुत किया है जो भगवान् श्रीराम की ब्रह्मरूपता का वर्णन करते हुए गोस्वामी तुलसीदास द्वारा श्रीरामचरितमानस में अनेक प्रसंगों पर निरूपित किया गया है। यथा,

निगम नेति जेहि अन्त न पावा। ताहि घरे जननी हठि धावा।।
निगम नेति सुर ध्यान न पावा। माया मृग पाछे सो धावा।।
निगम नेति जेहि वेद निरूपा। आदि।

निष्कर्षतः ब्रह्मसूत्र श्रीराघवकृपाभाष्य के रचनाकार श्रीरामभद्राचार्य जी की प्रबल धारणा है कि भगवान् श्रीराम साक्षात् परब्रह्म हैं। निर्गुण और सगुण स्वरूप में भगवान् श्रीराम ही इस चराचर जगत् के कर्ता, धर्ता और संहर्ता हैं। अखिल वेदान्त वाङ्मय के द्वारा विविध शब्दान्तर संज्ञाओं के रूप में श्रीरामभद्राचार्य भगवान् श्रीराम को ही ब्रह्म स्वीकार करते हैं। श्रीराघवकृ पाभाष्य की अग्रलिखित पंक्तियाँ इसी विषय का सारांशतः निरूपण करती हैं–

न संहिता सा न हि यत्र रामः
न सोऽस्ति वेदो न हि यत्र रामः।।
स नेतिहासो न हि यत्र रामः
न तत्पुराणं न हि यत्र रामः।।
वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा।
आदौ मध्ये तथैवान्ते रामः सर्वत्र गीयते।।

इति।।

प्राचीन भारत में शैक्षणिक धारणाओं एवं संस्थाओं की वर्तमान में प्रासंगिता

डॉ0 ज़्याऊल हसन खाँ,

एसोसिएट प्रोफेसर
शिक्षक शिक्षा विभाग (बी.एड्.)
शिब्ली नेशनल पी0जी0 कालेज, आजमगढ़

भारत में शिक्षा पद्धति का इतिहास वैदिक युग से वर्तमान युग तक अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित होता रहा है। यद्यपि प्राचीन युग की शिक्षा पद्धति एवं वर्तमान युग की शिक्षा पद्धति में अनेकशः मूलभूत अन्तर उत्पन्न हो चुका है। किन्तु प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति आज भी प्रासंगिक है। उल्लेखनीय है कि वैदिक काल में श्रुति–परम्परा से वैदिक संहिताओं को हजारों वर्षों तक कण्ठस्थ रखा गया था। उन्हें लिपिबद्ध बहुत बाद में किया गया। यहाँ प्रश्न उठता है कि कौन सी शिक्षण–पद्धति थी, जिससे आचार्य एवं उनके शिष्य सम्पूर्ण संहिताओं को कण्ठस्थ कर लेते थे ? आज हम 21वीं सदी में हैं, चारों तरफ से वैज्ञानिक अविष्कारों से धिरे हैं, जो हमारे भौतिक प्रगति को प्रतिबिम्बत करता है। शिक्षण के क्षेत्र में कम्प्यूटर, टेप रिकार्ड, प्राजेक्टर के साथ–साथ मोबाईल का प्रयोग गोपनीय रूप से नकल करने के लिए भी कर लेते हैं, फिर भी प्राचीन भारतीय छात्रों की भाँति हमारी स्मरण शक्ति नहीं है। हम जितने ही भौतिक संसाधनों से सम्पन्न, नवीन वैज्ञानिक अविष्कारों से सुसज्जित होते जा रहे हैं हमारी स्मरण शक्ति उतना ही कमजोर होती जा रही है। अब कोई याद करना नहीं चाहता। सब कुछ कम्प्यूटर के भरोसे छोड़ते जा रहे हैं, जो अत्यन्त ही घातक है। ऐसे में हमारे छात्रों की प्राचीन भारतीयों के समान स्मरण शक्ति हो इसके लिये प्राचीन शिक्षा पद्धति का अनुशीलन आवश्यक है, जिसमें से अधिकांश प्रासंगिक है तो कुछ समय के साथ–साथ आप्रासंगिक भी हो चुके हैं।

प्राचीन भारतीय परम्परा में शिक्षा का संस्थागत और धारणागत स्वरूप बहुत कुछ वैसा ही नहीं था, जैसा कि आज प्रचलित है। प्राचीन भारतीय परम्परा में शिक्षा का आधार मनोयोग था, आमतौर पर इसे अध्यात्मिक रूप में चिन्हित किया जाता है। व्यक्तिक अंतर्मन को विकसित करना और सँवारना इसका मुख्य उद्देश्य था। संस्कार भी एक ऐसी ही संस्था है। इस संस्था का मूल उद्देश्य था, मनुष्य जीवन को निष्कलुष बनाते हुए आगे

बढ़े और वह मोक्ष प्राप्त कर सके। मोक्ष अध्यात्मिक नहीं था, बल्कि मनुष्य के सम्यक कर्मों के कुल जोड़ के रूप में चिन्हित किया गया है। पुरूषार्थ की अवधारणा इससे संबद्ध है– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष– कुल जोड़ पुरूषार्थ। व्यक्ति का परिशोधन इस माध्यम से होता था।

संस्कार को परिभाषित करते हुए डॉ. राजबलि पाण्डेय ने कहा है कि इसका अभिप्राय शुद्ध धार्मिक क्रियाओं तथा व्यक्ति की दैहिक, मानसिक और बौद्धिक परिष्कार के लिए किए जाने वाले अनुष्ठानों से है, जिससे वह समाज का पूर्ण व्यवस्थित सदस्य हो सके। मूलतः यह संस्कृत शब्द है, जिसका अर्थ परिशोधन या शुद्ध करना (सम+आकार) होता है। संस्कार का महत्त्व वैदिक काल से ही है। ऋग्वेद में विवाह, गर्भाधान, अंत्येष्टि आदि का उल्लेख है। यजुर्वेद में मुंडन संस्कार की चर्चा है, जबकि अथर्ववेद में मुंडन, उपनयन, गोदान आदि का उल्लेख है। उन चर्चाओं से स्पष्ट होता है कि वैदिक काल के अंतिम चरण में संस्कारों की सामाजिक मान्यता स्वीकृत हो चुकी थी। इसका क्रमिक विकास, धर्मशास्त्रों, महाकाव्य, पुराणों आदि में देखने को मिलता है। गृह्य सूत्र के समय तक ये पूर्णरूपेण व्यवस्थित हो चुके थे और इसकी व्यापक जानकारी वहाँ मिलती है। धर्म के प्रति निष्ठा जागृत करना भी संस्कार का एक उद्देश्य था। यह मूलतः समाजीकरण की एक प्रक्रिया है।

गौतम के अनुसार संस्कारों का उद्देश्य है मनुष्य को अपने जीवन में आठ आत्मगुणों का अनुष्ठान करना। वशिष्ठ के इसके आगे यह भी कहा है कि संस्कारों से सुसंस्कृत एवं आठ आत्मगुणों से युक्त व्यक्ति ब्रहह्मलोक को प्राप्त कर लेता है जहाँ से वह फिर कभी मृत्युलोक में च्यूत नहीं होता (डॉ. राजबलि पाण्डेय, पृ. 17)। प्रमुख संस्कारों की गिनती अलग–अलग विद्वानों ने अलग–अलग की है, कोई बारह, कोई सोलह, कोई अठारह और कोई चौसठ तक स्वीकार करता है। आमतौर पर सोलह संस्कार स्वीकार किए जाते हैं– गर्भाधान, पुसवन, सीमंतोनयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चुड़ाकर्म, कर्णवध, विद्यारंध, उपनयन, वेदारम्भ, केशांत, समावर्त्तन, विवाह और अंत्येष्टि।

प्राचीन भारत में शिक्षा की गरिमा का व्यापक बोध प्रतीत होता है। रत्न सदोह में ज्ञान को मनुष्य का तीसरा नेत्र बताया गया है। महाभारत में विद्या का स्थान किसी भी चीज से बहुत ऊँचा बताया गया है। विद्या की तुलना प्राचीन भारतीय साहित्य में माता, पिता और स्त्री से की गई है। इन्हीं के समान यह कल्याणकारिणी है। यही नही, इसकी

महत्ता यहाँ तक बताई गई है कि इसी के द्वारा मनुष्य में मानवता का जागरण होता है। विद्या की महत्ता बताते हुए यहाँ तक कहा गया है कि इसी से इहलोक और परलोक दोनों ही सुधरता है। विद्या को मनुष्य में बल का स्रोत माना गया है।

डॉ. अनंत सदाशिव अल्टेकर ने शिक्षा का प्राचीन काल में दो व्यापक एवं संकुचित अर्थ स्वीकार किया है। व्यापक अर्थ से तात्पर्य है शिक्षा से आत्म–शोधन एवं आत्मविश्वास में वृद्धि संभव है तथा संकुचित अर्थ से अभिप्राय है शिक्षण अवधि में विद्यार्थी के प्रशिक्षण एवं निर्देश से है। दोनों मिलाकर ही व्यक्ति का सम्यक विकास संभव है। डॉ. अल्टेकर ने इस प्रवृत्ति की तुलना लॉक के विचार से की है, जो इस मत का पोषक है कि केवल बौद्धिक विकास इतने महत्त्व का नहीं है जितना चारित्रिक विकास। महाभारत में कहा गया है कि वही शिक्षित है जो धार्मिक है।

वैदिक और उत्तर वैदिक काल में विषयों की संख्या बड़ी ही कम थी। वैदिक काल में प्रमुख रूप से वेद का अध्ययन होता था। परन्तु इसके साथ ही व्याकरण, ज्योतिष, खगोल आदि की भी शिक्षा दी जाती थी। वैदिक ऋचाओं को कंठस्थ कराया जाता था, उसकी व्याख्या बतायी जाती थी तथा उनके गुणों का विश्लेषण किया जाता था। उत्तर वैदिक काल में चारों वेद, ज्यामिति, ज्योतिष व्याकरण, शब्दशास्त्र आदि की शिक्षा दी जाती थी। उपनिषद काल में वेद, वेदांतों का स्वरूप पूर्ण विकसित हो चुका था। ज्योतिष व्याकरण, छंद आदि का प्रणयन भी शास्त्र के समान ही प्रचलित था। इसके अतिरिक्त दर्शन, चिकित्सा, व्याकरण, ज्योतिष, धर्मशास्त्र, शब्दशास्त्र, महाकाव्य कला आदि की भी शिक्षा दी जाती थी।

स्मृति, निबंध और पुराणों के काल में शिक्षा का आयाम और व्यापक हुआ। ऋचाओं के साथ उनकी व्याख्या पर जोर दिया गया। दर्शन की प्रगति इस समय विशेष रूप से हुई। व्याकरण के अध्ययन पर बल दिया जाने लगा। व्याकरण जानने वालों को श्रद्धा से देखा जाने लगा। भविष्यवाणी में भी लोगों को विश्वास बढ़ने लगा। साथ–ही–साथ खगोल, ज्योतिष आदि का भी अध्ययन आरंभ हुआ। गुप्तकाल में संस्कृत का प्रसार अधिक हुआ और कह सकते हैं कि संस्कृत को राजकीय संरक्षण प्राप्त हुआ। विभिन्न विधा यथा तर्क, दर्शन, काव्य, ज्योतिष एवं गणित के लिए भी संस्कृत का ही माध्यम बनाया गया। पुराणों का संकलन इसी समय हुआ।

प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति का गुरूकुल एक महत्वपूर्ण अंग था। उपनयन के बाद ब्रह्मचारी गुरू के आश्रम में जाकर रहता था। इसके लिए अन्तर्वासिन शब्द का

उल्लेख किया गया है। उल्लेख किया गया है। आत्मसंयम का पाठ विद्यार्थियों को पढ़या जाता था। गुरूकुल के बारे में सामान्य धारणा यह है कि ये जंगलों में स्थित होते थे।

वाल्मीकि, विश्वामित्र, संदीपन आदि ऋषि सामान्यतया बस्ती से बहुत दूर अपना आश्रम बनाकर ज्ञान की साधना करते थे। शायद इसी से इस धारणा को बल मिला कि गुरूकुल जंगलों में होते थे। यद्यपि गुरूकुल में गुरू का परिवार भी रहता था। गुरूकुल में रहने वाले शिष्य आरंभ से ही स्वावलंबी बनने को प्रेरित होते थे। गुरूकुल शिक्षा की यह सबसे बड़ी विशेषता थी कि शिष्य को स्वावलंबी बनने की प्रेरणा दी जाती थी और उस प्रेरणा के अनुरूम ही उन्हें अपना कर्म करना पड़ता था।

प्राचीन भारत में शिक्षा की गरिमा का व्यापक बोध प्रतीत होता है। रत्न सदोह में ज्ञान को मनुष्य का तीसरा नेत्र बताया गया है। महाभारत में विद्या का स्थान किसी भी चीज से बहुत ऊँचा बताया गया है। विद्या की तुलना प्राचीन भारतीय साहित्य में माता, पिता और स्त्री से की गई है। इन्हीं के समान यह कल्याणकारिणी है। यही नही, इसकी महत्ता यहाँ तक बताई गई है कि इसी के द्वारा मनुष्य में मानवता का जागरण होता है। विद्या की महत्ता बताते हुए यहाँ तक कहा गया है कि इसी से इहलोक और परलोक दोनों ही सुधरता है। विद्या को मनुष्य में बल का स्रोत माना गया है।

तक्षशिक्षा महत्वपूर्ण विद्या केन्द्र के रूप में वर्णित है। रामायण के अनुसार भरत ने इसकी स्थापना की तथा अपने पुत्र तक्ष के नाम पर इसका नामकरण तक्षशिक्षा कर दिया। राजनीतिक दृष्टि से इस स्थान का अत्यधिक महत्त्व था। भारत की पश्चिमी सीमा पर स्थित रावलपिंडी से 20 मील की दूरी पर बसा हुआ यह स्थान कुषाण राजा कनिष्क का शासन केन्द्र था तथा सदैव विदेशियों से आक्रांत होता रहता था, परंतु इसका महत्त्व राजनीतिक दृष्टि से ज्यादा शैक्षणिक कारणों से था और इसकी हर चर्चा शैक्षणिक गतिविधियों को ही इंगित करता है। ब्राह्मी लिपि के अलावा यहाँ खरोष्ठी लिपि का भी प्रचलन हुआ। इसके अतिरिक्त यूनानी, इरानी आदि भाषाएँ, वहाँ की कला और वहाँ की विभिन्न साहित्यिक प्रवृत्तियों का अध्ययन यहाँ के विद्वानों ने किया। इससे यह पश्चिम भारत में ही नहीं पूरे भारत में एक ख्याति प्राप्त शिक्षा केन्द्र के रूप में चर्चित हुआ। इस शिक्षा केन्द्र की ख्याति इतनी थी कि बहुत दूर–दूर से लोग यहाँ शिक्षा प्राप्त करने के लिए आते थे। कौटिल्य, प्रसेनजित, जीवक आदि यहीं के विद्यार्थी थे। मगध, कोसल और काशी जैसे दूरस्थ प्रदेशों से यहाँ पढ़ने के लिए शिष्य आते थे।

नालंदा, दूसरा महत्वपूर्ण केन्द्र था, जो सत्ता के साथ–साथ शिक्षा के लिए भी समान रूप से महत्त्वपूर्ण था। भगवान बुद्ध के जीवन से संबंधित यह स्थान अतिशीघ्र एक ख्याति प्राप्त बहुमुखी शिक्षा केन्द्र के रूप में विकसित हो गया। कुमारगुप्त प्रथम ने इसको सँवारने और विकसित करने का कार्य किया। पालकाल तक इसकी चहुँओर ख्याति फैलती रही, लेकिन आक्रांताओं की नजर इस पर पड़ी और इसका अवसान हो गया। बख्तियार खिलजी ने इसकी गरिमा को मिट्टी में मिला दिया। उत्खनन से यह तथ्य प्रकाश में आया है कि नालंदा विश्वविद्यालय का क्षेत्रफल एक मील लम्बा और आधा मील चौड़ा था।

प्राचीनकाल में शिक्षा का केन्द्र–बिन्दु व्यक्तिगत अध्यापक या आचार्य हुआ करते थे, जो अभिभावकों से प्राप्त दक्षिणा से संतोष करते थे। पुरोहिती से भी यदा–कदा उन्हें कुछ आमदनी हो जाती थी। राजा और सामंतों से यदा–कदा कुछ अनुदान भी प्राप्त हो जाता था। प्रायः राजधानियाँ या तीर्थ केन्द्र शिक्षा के केन्द्र थे। पाटलिपुत्र वल्लभी, उज्जैयिनी, पद्मावती, कौशाम्बी, अछिच्छत्र, वैशाली, वाराणसी, अयोध्या, मथुरा, नासिक एवं कांची विद्या के प्रमुख केन्द्र थे। कांची अपनी पट्टीकाओं के लिए विख्यात था। राजाओं से अग्रहार के रूप में प्राप्त ग्रामों की पाठशालाएँ होती थी, जिनका संचालन दानग्राही विद्वान ब्राह्मण करते थे। कुछ मंदिरों के साथ भी पाठशालाएँ संबद्ध होती थी। गुप्तकाल में बौद्ध विहार भी शिक्षा का केन्द्र बनने लगे थे।

प्राचीन भारतीय परम्परा में शिक्षा का वेदों से जो चलन आरंभ हुआ, वह गुप्तकाल तक आते–आते एक निश्चत आकार लेने लगा था। उस काल तक अनेक शैक्षणिक धारणाएँ एवं संस्थाएँ अस्तित्व में आई और शिक्षा को सोद्देश्य प्रगति पथ पर बढ़ते हुए पाते हैं। विद्या की अनेक शाखाओं का विकास देखने को मिलता है। शिक्षा को राजकीय संरक्षण और संस्था के रूप में परिणत होने की परिघटना महत्वपूर्ण तथ्य है, जिसको रेखांकित किया जाता है।

अतः उपर्युक्त आधारों का विश्लेषण किया जाये तो भारत में शिक्षा पद्धति का इतिहास प्राचीन से वर्तमान तक के सफर में काफी महत्वपूर्ण स्थान रखता है। आज भी प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति की उतनी ही प्रासंगिता है, जितनी प्राचीन समय में विद्यमान थी।

सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची :–

1. अल्टेकर, डॉ. अनंत सदाशिव, एडूकेशन इन एंशियेंट इंडिया, पृ. 3.

2. पाण्डेय, डॉ. राजबलि, हिन्दू संस्कार, पृ. 17.
3. ऋग्वेद– सरस्वती सूक्त– 10.3.4
4. ज्ञानं तश्तीयं मनुजस्य नेत्र समस्ततत्वार्थविलोकदक्षम्
तेजोऽनपेक्षं विगतान्तरायं प्रवशत्तिमत्सर्वजगत्त्रयेऽपि। – सुभाषितरत्नभाण्डागार,
5. अनकेसंशयच्छेद परीक्षार्थयस्य दर्शनम्।
सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्य नास्त्यन्ध एव सः। – सुभाषितरत्नभाण्डागार,
6. बुद्विर्यस्य बलं तस्य। पंचतन्त्र – मित्रभेद–297
7. नास्ति विद्यासमं चक्षुः नस्ति सत्यसमं तपः। महाभारत 12.319.6
8. सा विद्या या विमुक्तये
9. हर्षचरित, हिन्दी अनुवाद, बासुदेव शरण अग्रवाल, पृ0 71–72
10. तदैव – पृ0 4
11. कादम्बरी, हिन्दी अनुवाद, रमाशंकर त्रिपाठी, पृ0 4
12. हर्षचरित (अनुवाद) पृ0 72
13. तदैव, पृ0 72
14. तदैव, पृ0 33
15. तदैव पृ0 34

भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति का समाजशास्त्रीय अध्ययन : एक मूल्यांकन

सुषमा भारती

शोध–छात्रा
समाज शास्त्र विभाग
राजा राम मोहन गर्ल्स पी0जी0 कालेज, आयोध्या
सम्बद्ध–डॉ राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या

प्राचीन काल से हमारे भारतीय समाज में महिलाओं के साथ विभिन्न प्रकार की समस्याएँ विद्यमान रही है। महिलाएँ प्रत्येक परिवार, गाँव तथा देश की अभिन्न तथा मजबूत स्तम्भ रही हैं। प्रत्येक समाज में इनका महत्वपूर्ण आधार रहा है। महिलाओं की अनुपस्थिति में 'मानव जाति' की कल्पना करना असम्भव है। महिलाएँ 'सृष्टि निर्माता हैं। महिलाएँ बच्चों को जन्म देने, पालन–पोषण करने, किसी भी शिशु को एक सभ्य–सुसंस्कृत प्राणी बनाने में, परिवार का उचित संचालन करने में सबसे योग्य प्राणी मानी जाती है। महिलाओं को 'गृहलक्ष्मी', 'कुल लक्ष्मी' की संज्ञा भी दी जाती है।

ऐसा माना जाता है कि जिस परिवार की स्त्रियाँ कुचरित्र वाली होती हैं उस परिवार का विनाश भी यथाशीघ्र होने लगता है। महिलाओं को हमारे देश में लक्ष्मी, दुर्गा, काली आदि नामों से सम्बोधित किया जाता रहा है, इन्हें 'जगत जननी' की भी उपाधि से विभूषित किया गया है।

सर्व विदित है कि महिलाओं के बिना जगत निर्माण की कल्पना भी नहीं किया जा सकता है क्योंकि ईश्वर ने प्रजनन और गर्भधारण करने की क्षमता केवल स्त्रियों को ही दिया है। महिलाएँ सदैव एक पुत्री, माँ, पत्नी और विभिन्न रिश्तों के रूप में अपनी भूमिका का सफलतापूर्वक संचालन करती रही हैं।

महिलाओं में अक्षय क्षमता होने के बावजूद हमारे भारतीय समाज में विभिन्न समस्याओं से जूझना पड़ता है। वर्तमान समय में महिलाओं को दहेज हत्या, एसिड अटैक, अपहरण, बलात्कार, घरेलू हिंसा, ऑनर किलिंग, विधवा स्त्रियों के विरूद्ध हिंसा, महिला निरक्षरता, कन्या भ्रूण हत्या, पुत्र पैदा करने के लिए दबाव तथा यातना आदि विकट समस्याओं सं लड़ना पड़ता है। समय परिवर्तित होने के साथ– साथ स्त्रियों की समस्याओं में भी परिवर्तन होता गया। वर्तमान समय में जो समस्याएँ महिलाओं के लिए विद्यमान है, वो प्राचीन काल में नही थी, प्राचीन समय में समस्याओं का रूप अलग था परन्तु हम कह सकते हैं कि कोई भी काल, समय, स्थिति और परिस्थिति महिलाओं के लिए बहुत अच्छा सिद्ध नहीं होता है। क्योंकि

भारतीय इतिहास का अध्ययन करने पर यही ज्ञात होता है कि सभी कालों में स्त्रियाँ विभिन्न समस्याओं से ग्रसित थीं।

सबसे पहले हम 'हड़प्पा सभ्यता' की बात करें तो यह सभ्यता 2500 ई0पू0 से 1750 ई0पू0 तक माना जाता है। पुरातात्विक स्रोतों से ज्ञात होता है कि सैन्धव वासी मातृ देवी की पूजा करते थे और सैन्धव समाज मातृसत्तात्मक था, फिर भी सैन्धव सभ्यता में 'पर्दा प्रथा और वेश्यावृत्ति' प्रचलित थी। लोथल में महिला–पुरूष को एक साथ दफनाया गया है इसका अभिप्राय है कि पुरूष की मृत्यु के पश्चात् स्त्री का सती हो जाना।

1500 ई0पू0 से 1000 ई0पू0 ऋग्वेद काल में महिलाओं की स्थिति विभिन्न वेदों, उपनिषदों, स्मृतियों, पुराणों के अध्ययन के आधार पर स्पष्ट होता है कि 'वैदिक युग' महिलाओंके लिए ''स्वर्ण युग'' था। इस युग में समाज तथा परिवार में महिलाओं को आदर की दृष्टि से देखा जाता था। शिक्षा के विषय में पुत्रियों को भी पुत्रों के समतुल्य सुविधा तथा अवसर उपलब्ध था। माता–पिता अपनी पुत्रियों का ''उपनयन संस्कार'' सम्पन्न करवाने के पश्चात् 'वेद अध्ययन' की आज्ञा देते थे। विदुषी स्त्रियाँ 'सभा एवं समिति' में भाग लेती थीं। 'उप्पला, घोषा, विश्ववरा, गार्गी, मैत्रेयी आदि उस समय की विदुषी स्त्रियाँ थीं। धार्मिक कार्यों में महिलाएँ सहभागी होती थीं। कोई भी धार्मिक विधि–विधान तथा यज्ञ महिलाओं की अनुपस्थिति में सम्पन्न नहीं किया जाता था। कन्याओं को स्वयं वर चुनने की स्वतंत्रता थी। विधवा महिलाओं का पुनर्विवाह होता था और धर्मपत्नी को भी सम्पत्ति में पूरा अधिकार दिया जाता था। 'शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थ' में पत्नी को पति की 'अर्धांगिनी' भी कहा गया है।

अतः इससे स्पष्ट होता है कि वैदिक युग महिलाओं के लिए स्वतंत्रता, समानता तथा पवित्रता का युग था।

उत्तर वैदिक काल 1000 ई0पू0 से 600 ई0पू0 तक माना जाता है। यह युग स्त्रियों के पतन का युग कहा गया है। क्योंकि स्त्रियों के सभी मौलिक अधिकारों का हनन इसी युग से प्रारम्भ होता है। सर्वप्रथम तो स्त्रियों का 'उपनयन संस्कार' समाप्त कर दिया गया था। सभा तथा समिति में महिलाएँ हिस्सा नहीं ले सकती थीं। पति की सम्पत्ति में भी स्त्रियों का अधिकार समाप्त हो गया था। 'अथर्ववेद' में कन्या के जन्म की निन्दा की गई है। 'ऐतरेय ब्राह्मण' में कन्या को चिन्ता का कारण बताया गया है। उत्तर वैदिक काल में स्त्रियों के सम्मान में गिरावट आने लगी थी। परिवार में पितृसत्तात्मक व्यवस्था स्थापित हो चुकी थी। पुरूष ही परिवार का मुखिया था और सम्पूर्ण परिवार का संचालन मुखिया के अनुसार होता था। विधवा स्त्रियों का पुनर्विवाह समाप्त कर दिया गया और स्त्रियों को श्वेत वस्त्र धारण करने, अपने सिर के बालों को मुंडवा कर रखने की आज्ञा दी जाती थी। इस काल में धार्मिक कर्मकाण्ड तथा अन्धविश्वास समाज में व्याप्त हो चुका था। स्त्रियों से सम्बन्धित अन्धविश्वास दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा

था। स्त्रियाँ चाहे वह किसी भी धर्म, जाति, वर्ग, समुदाय से हों वो पुरूषों के अधीन हो चुकी थीं। 'मनुस्मृति युग' में स्त्रियों को शिक्षा का अधिकार नहीं था। मनुस्मृति में स्त्रियों के लिए बहुत ही कठोर नियम बनाए गये थे। इस काल में बाल–विवाह का प्रचलन होने लगा था। बहु विवाह भी प्रचलित हो चुका था। मनुस्मृति में लिखा है कि–

''बाल्ये पितृर्वशे त्रिष्ठेत्यापि गृहस्थ यौवने, पुत्राणां भर्तरि प्रेते न भजेत्स्त्री स्वतन्त्रताम''

अर्थात् स्त्री को जन्म से लेकर मृत्यु तक उम्र के हर पड़ाव पर किसी पुरूष के संरक्षण में ही अपना जीवन व्यतीत करना चाहिए। अतः स्पष्ट होता है कि उत्तर वैदिक युग महिलाओं के अधिकरों को छिन्न–भिन्न करने वाला समय था और इसका प्रभाव हम आज भी अपने समाज में कहीं न कहीं अनुभव कर सकते हैं। भारतीय इतिहास के विवरणों में हर्षवर्धन के उपरान्त के कालखण्ड, 7 वीं से 12 शताब्दी के दौर को 'राजपूत युग' कहा जाता है। राजपूत काल में जब भारत में मुसलमानों का आक्रमण प्रारम्भ हुआ तो आक्रमणकारी शासक भारतीय कन्याओं सं जबरन विवाह करते थे। और अपने हरम में दासी बना कर रखते थे। अत्याचारी आक्रमणकारियों से कन्याओं को बचाने के लिए कन्याओं का विवाह कम उम्र में ही कर दिया जाने लगा इसके फलस्वरूप भारत में बाल–विवाह का प्रचलन प्रारम्भ हो गया। मुस्लिम आक्रन्ताओं से बचने के लिए राजपूत घराने की स्त्रियाँ 'जौहर प्रथा' का भयानक मार्ग चुनती थीं और राजपूत स्त्रियाँ अपने मान–सम्मान के लिए आग में कूद कर अपने प्राणों की आहूति दे देती थीं। इस समय उच्च वर्ग के लोगों में 'सतीप्रथा' पूरी तरह से विकसित हो चुकी थी।

मध्य युगीन भारत और मुगल साम्राज्य (ए0डी0 1526–1707), किसी भी देश की सभ्यता, विकास तथा संस्कृति का मूल्यांकन हम उस देश की स्त्रियों की स्थिति से कर सकते हैं। यदि देश में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और शैक्षिक क्षेत्र में स्त्रियों का स्थान देखें तो आज भी हमें स्त्रियों की संख्या पुरूषों की अपेक्षा कम ही देखने को मिलता है। इतिहास के अतीत में झाँकने पर स्पष्ट होता है कि भारतीय समाज में स्त्रियों को सदैव दोयम दर्जे का ही स्थान प्रदान किया गया है। हमारी स्त्रियों के प्रति मानसिक सोच यही दर्शाता है कि स्त्रियाँ पुरूषों की बराबरी नहीं कर सकती है। सामाजिक पृष्ठभूमि भी उनके लिए वैसी ही तैयार की जाती है। समाज में लड़कियों की अपेक्षा लड़कों को अधिक महत्व दिया जाता है। लड़की के जन्म पर उतनी खुशी और हर्षोल्लास नहीं मनाया जाता जितनी कि लड़के के जन्म के समय मनाया जाता है। प्रारम्भ से ही लड़कियों के लिए गृहकार्य अनिवार्य कर दिया जाता है। लड़कियों के लिए विद्यालयीय स्तर पर भी बहुत सोचा विचारा जाता है। यहाँ तक कि लड़कियाँ अपनी स्वेच्छानुसार किसी व्यावसायिक विषय का चुनाव नहीं कर सकती हैं क्योंकि व्यावसायिक विषय उनके लिए उपयुक्त नहीं समझा जाता है इसके फलस्वरूप लड़कियाँ शिक्षित होते हुए भी आत्मनिर्भर नहीं बन पाती और कहीं न कहीं उनका जीवन आर्थिक रूप से पूरूषों पर निर्भर

रहता है। मध्य युगीन समाज में हिन्दू स्त्रियों का जीवन बहुत ही संघर्षपूर्ण था। प्रारम्भ से ही बाल–विवाह, अनमेल विवाह, दहेज हत्या, विधवा विवाह निषेध, जौहर प्रथा, जो बालिका वध, देवदासी प्रथा, वेश्यावृत्ति, कन्या विक्रय, भ्रूण हत्या आदि कुरीतियाँ स्त्रियों के जीवन को नरकतुल्य बनाने के लिए पर्याप्त थे। अतएव मुस्लिम आक्रमणकारियों का भारत में प्रवेश करने के कारण स्त्रियों का जीवन दुःखमय हो चुका था। 'डॉ0 आशीर्वाद लाल श्रीवास्तव' का कहना है कि 'सल्तनत काल में (1206–1526) में स्त्रियों की दशा बहुत खराब थी'। 'इब्नबतूता' ने लिखा है कि तुर्क स्त्रियों को हिन्दू स्त्रियों की अपेक्षा अधिक मात्रा में स्वतन्त्रता प्राप्त थी। राजस्थान की स्त्रियों के विषय में 'टॉड' ने लिखा है कि ''दूसरे देशों की स्त्रियों को राजस्थानी स्त्रियों का भाग्य भयभीत कर देने वाली कठिनाइयों से भरा दिखाई पड़ेगा। जीवन के प्रत्येक चरण में मृत्यु उसे अंगीकार करने के लिए खड़ी है। जन्म के समय विष, युद्ध होने पर अग्नि की लपटें उसका सुरक्षित जीवन युद्ध की अनिश्चितता पर आधारित है, जो कभी भी बारह माह से अधिक नहीं है।''

महिलाएँ प्रत्येक परिवार, गाँव तथा देश की अभिन्न तथा मजबूत स्तम्भ रही हैं। प्रत्येक समाज में इनका महत्वपूर्ण आधार रहा है। महिलाओं की अनुपस्थिति में 'मानव जाति' की कल्पना करना असम्भव है। महिलाएँ 'सृष्टि निर्माता हैं। महिलाएँ बच्चों को जन्म देने, पालन–पोषण करने, किसी भी शिशु को एक सभ्य–सुसंस्कृत प्राणी बनाने में, परिवार का उचित संचालन करने में सबसे योग्य प्राणी मानी जाती है। महिलाओं को 'गृहलक्ष्मी', 'कुल लक्ष्मी' की संज्ञा भी दी जाती है।

'शम्श सिराज अफीफ' ने 'फिरदौसी' द्वारा वर्णित ईरानी परम्परा का उल्लेख करते हुए लिखा है कि ''स्त्री और सर्प भयानक जीव हैं इन्हें मार डालना चाहिए''। 'अमीर खुसरो' ने स्त्रियों को कामलिप्सा का साधन कहा है। विभिन्न विद्वानों के कथनों से स्पष्ट है कि पुरूष की दृष्टि में स्त्रियों का स्थान निम्न था। दुनिया के सभी समाजों में परिवर्तन होता आया है, परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है और इसी परिवर्तन के फलस्वरूप मनुष्यों की जीवन शैली, विचार, सभ्यता, संस्कृति, परम्परा तथा प्रथाओं में भी अन्तर आने लगा। बाहरी संस्कृतियों के आगमन के फलस्वरूप भारत में विभिन्न संस्कृतियों में समन्वय होना प्रारम्भ हुआ और भारतीय तथा वाह्य संस्कृति का मिला जुला रूप प्रत्येक स्थान पर फैलने लगा और धीरे–धीरे संस्कृति प्रसार होने लगा।

मुगल काल में ही भारत में अंग्रेजों का आगमन प्रारम्भ हो गया था और भारत में पश्चिमी सभ्यता तथा संस्कृति ने अपनी जड़ें जमानी शुरू कर दी थी। मुगल दरबार में जाने वाला प्रथम अंग्रेज 'कैप्टन हॉकिन्स' था जो 'जेम्स प्रथम' के राजदूत के रूप में अप्रैल, 1609 ई0 में जहाँगीर के दरबार में गया था। इसके अतिरिक्त 'टामस रो' 'विलियम फिंच' एवं 'एडवर्ड टैरी' जैसे यूरोपीय यात्री भारत में आये। इन्होंने भारत में प्रवेश करके धीरे–धीरे कोठी (फैक्ट्री)

स्थापित करना प्रारम्भ किये। 1498 में ही पुर्तगाली ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना कर दी गई थी और भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करने के लिए अंग्रेजों ने भारतीय शासकों से प्रमुख युद्ध भी किये। इसमें कर्नाटक का प्रथम युद्ध, कर्नाटक का द्वितीय युद्ध तथा कर्नाटक का तृतीय युद्ध प्रमुख है और प्लासी, बेदारा, वांडीवॉश, बक्सर का युद्ध आधुनिक भारत के महत्वपूर्ण युद्ध सिद्ध हुए। इसके फलस्वरूप भारत में सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा राजनैतिक परिवर्तन प्रारम्भ हुए। अंग्रेजों ने अपनी राजनैतिक सत्ता मजबूत करने के लिए देशी रियासतों का अधिग्रहण करना प्रारम्भ किया और भारतीय राजाओं को पेंशन तथा संधि के आधार पर अपना शासन चलाने की आज्ञा दी। अंग्रेजों ने बहुतायत संख्या में कच्ची वस्तुओं का व्यापार किया और बहुत सारा धन एकत्रित करके अपने देश ले गए। भारत वर्ष को गुलामी से आजादी दिलाने के लिए पूरा देश जनआन्दोलित होने लगा। इसके फलस्वरूप विभिन्न महापुरूषों द्वारा अंग्रेजों का बलपूर्वक विरोध किया जाने लगा। उस समय केवल पुरूषों के द्वारा ही आन्दोलन नहीं किया गया, बल्कि बहुल संख्या में भारतीय महिलाओं ने भी हिस्सा लिया। उस समय महिलाओं की स्थिति को लेकर चिन्तनशील पुरूषों के हृदय में पीड़ा जागृत हो चुकी थी और महिलाओं के जीवन को सुरक्षित तथा सुदृढ़ बनाने के लिए उनके ऊपर लादी गई निर्योग्यताओं को दूर करना आवश्यक हो गया था।

'राजाराम मोहन राय' ने 'लार्ड विलियम बैंटिक' के सहयोग से 'सती प्रथा' का अन्त किया और इस प्रथा के विरोध में 'बैंटिक' ने 1829 में कानून बना कर 'धारा–17' के द्वारा विधवाओं के सती होने को अवैध घोषित किया। सिखों के तीसरे गुरू 'अमरदास' ने भी 'सती प्रथा एवं पर्दा प्रथा' का विरोध किया। 'अकबर एवं मराठा पेशवाओं' ने भी 'सती प्रथा' पर रोक लगाया। 'लार्ड विलियम बैंटिक' ने 'शिशु बालिका हत्या' पर भी प्रतिबन्ध लगाया। 'लार्ड कैनिंग और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर' के प्रयत्नों से 1856 ई0 में 'विधवा पुनर्विवाह' अधिनियम् पारित हुआ। 'माण्टेग्यू चेम्स फोर्ड' सुधार द्वारा भारत में पहली बार 1919 में महिलाओं को 'वोट' देने का अधिकार मिला। 'स्वामी दयानन्द सरस्वती' ने स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहित किया। 'महर्षि कार्वे' ने विधवा पुनर्विवाह एवं स्त्री शिक्षा के लिए प्रयास किया। 'केशवनन्द सेन' के प्रयासों से 1872 में 'विशेष विवाह' अधिनियम बनाया गया।

इस शताब्दी में कई महिलाओं एवं स्त्री संगठनों ने स्त्रियों को अधिकार दिलाने एवं उनमें जागृति लाने हेतु प्रयत्न किए, इनमें प्रमुख महिलाएँ हैः– मैडम कामा, तोर दत्त, मारग्रेट नोबल, ऐनी बेसेन्ट इत्यादि। अंग्रेजों की 200 वर्ष गुलामी के पश्चात् भारत 15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्र हुआ और इसके पश्चात् भारतीय संविधान बनाने की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। भारतीय संविधान के प्रारूप दाता'' डॉ0 भीमराव अम्बेडकर'' ने महिलाओं से सम्बन्धित विशेष कानून का निर्माण किया जो निम्न प्रकार से हैंः–

1. हिन्दू विवाह अधिनियम् 1955 में स्त्री–पूरूषों को विवाह के सम्बन्ध में समान अधिकार दिये गये, बाल–विवाह समाप्त किया गया और स्त्रियों को विवाह–विच्छेद एवं विधवाओं को पुनर्विवाह की स्वीकृति दी गयी।
2. हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम् 1956 में स्त्रियों और कन्याओं का अनैतिक व्यापार को रोकना।
3. 1958 से जरूरतमन्द एवं अनाथ महिलाओं को कार्य दिलाने में मदद करने का कार्य 'समाज कल्याण बोर्ड' द्वारा किया जा रहा है।
4. वेश्यावृत्ति और अनैतिक व्यवहार को रोकने के लिए वर्ष 1956 में 'स्त्रियों व कन्याओं का अनैतिक व्यापार निरोधक अधिनियम्' पारित किया गया। यह अधिनियम् 1 मई, 1958 से सम्पूर्ण भारत में लागू है।
5. दहेज निरोधक अधिनियम् 1961 के अनुसार दहेज लेने या देने में सहयोग करने पर 5 वर्ष की सजा और 15000 रूपया जुर्माने का प्रावधान किया गया। इस अधिनियम् को 1986 में संशोधन करके अधिक कठोर बना दिया गया।
6. 1961 एवं 1976 में मातृत्व हित लाभ अधिनियम् बनाया गया।
7. 15 से 45 वर्ष की आयु समूह की महिलाओं के लिए 1975–76 से ही प्रकार्यात्मक साक्षरता का कार्यक्रम चल रहा है। इसके अन्तर्गत महिलाओं को स्वच्छता एवं स्वास्थ्य, भोजन तथा पोषक तत्वों, गृह प्रबन्ध तथा शिशु देखरेख, शिक्षा तथा व्यवसाय के सन्दर्भ में अनौपचारिक शिक्षा प्रदान की जाती है।
8. समान वेतन अधिकार अधिनियम् 1979, इसके द्वारा पुरूषों और महिलाओं के लिए समान वेतन की व्यवस्था की गई है।
9. वर्ष 1975 से सम्पूर्ण विश्व में 'अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष मनाया गया, वर्तमान समय में प्रत्येक वर्ष '8 मार्च को अन्तर्रष्ट्रीय महिला दिवस' मनाया जाता है।
10. महिलाओं का अश्लील चित्रण (निवारण) अधिनियम 1986, विज्ञापनों में महिलाओं के भद्दे और नग्न प्रदर्शनों को रोकने के लिए यह अधिनियम् बनाया गया। इसके अन्तर्गत दोषी व्यक्तियों को 2000 रूपया एवं दो वर्ष का कारावास का प्रावधान है।
11. जनवरी 1992 में 'राष्ट्रीय महिला आयोग' का गठन किया गया ताकि महिलाओं पर हो रहे हिंसक अत्याचारों से लड़ा जा सके और महिलाओं को प्रताड़ित होने से बचाया जा सके।
12. स्त्री शक्ति पुरस्कार योजना वर्ष 1999, ये पुरस्कार (तीन लाख रूपया तथा प्रशस्ति पत्र) प्रति वर्ष 8 मार्च को अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस पर दिये जाते हैं। महिला सशक्तिकरण में योगदान के लिए 104 साल की धाविका 'मान कौर' को नारी (स्त्री)

शक्ति पुरस्कार 2019 से सम्मानित किया गया। इसे महिलाओं के लिए देश का सर्वोच्च नागरिक सम्मान माना जाता है। इसके अतिरिक्त 'भावना कांत', 'मोहना जितरवाल', 'अवनी चतुर्वेदी', 'आरफा जान', 'अंशु जैमसैम्पा' भी पुरस्कार पाने वालों में सम्मिलित है।

13. वन्देमातरम् योजना, 9 फरवरी, 2004 से शुरू किया गया। इसका उद्देश्य गर्भवती महिलाओं को निजी चिकित्सकों की सहायता से निःशुल्क उपचार किया जाये।
14. घरेलू हिंसा महिला संरक्षण अधिनिम् 2005, यह अधिनिम् 26 अक्टूबर, 2006 से लागू हुआ है। इससे महिलाओं को घरेलू हिंसा से बचाया जा सकता है।
15. यूनिसेफ से सहयोग–महिला एवं बाल विकास मंत्रालय तथा यूनिसेफ के मध्य 3 जून, 2008 को नई दिल्ली में 2008–2012 की अवधि के लिए एक नया समझौता 'कण्ट्री प्रोग्राम एक्शन प्लान (CPAP), हुआ। इसका उद्देश्य शिशु एवं मातृ मृत्यु दर में कमी लाना है तथा कुपोषण का मुकाबला करना, कन्या शिशु को प्रोत्साहन देना, बाल हिंसा रोकना, उचित शिक्षा उपलब्ध कराना, स्वच्छ पेयजल तथा पर्यावरण उपलब्ध कराना तथा (HIV) की समस्या दूर करना।

भारतीय इतिहास प्रत्यक्षदर्शी है कि हमारे समाज में जितना प्रतिबन्ध तथा सामाजिक कुप्रथाएँ महिलाओं के लिए सैद्धान्तिक तथा व्यवहारिक रूप से लागू किया गया वैसा व्यवहार कभी किसी पुरूष पर लागू नहीं किया। यही कारण है कि इसका दंश आज भी महिलाएँ भोग रही हैं। अतः इसी के फलस्वरूप महिलाओं के लिए अधिक से अधिक अधिनियम् बनाए गये ताकि उनकी सुरक्षा हो सके, परन्तु क्या आज आधुनिक भारतीय समाज में भी महिलाएँ अत्याचार और हिंसा से स्वतंत्र हो पाई हैं ? कठोर से कठोर कानून बनाए जाने के बाद भी महिलाएँ सम्पूर्ण रूप से सुरक्षित नहीं हैं।

2011 की जनगणना के अनुसार भारत की सम्पूर्ण जनसंख्या 121.05 करोड़ है जिसमें से 58.74 करोड़ महिलाएँ हैं, जो कि देश की कुल आबादी का 48.5 प्रतिशत है। भारत में समाज के इतने बड़े भाग की उपेक्षा करके भारत प्रगति नहीं कर सकता है। वर्तमान समय में 21 वीं सदी चल रही है फिर भी महिलाएँ पूरी तरह स्वतंत्र, सुरक्षित और आत्मनिर्भर नहीं हैं। ग्रामीण समुदाय में अशिक्षित महिलाओं की स्थिति अधिक दयनीय दिखाई पड़ती है। वर्तमान समय में भी इन्हें गम्भीर समस्याओं का सामना प्रत्यक्ष रूप से करना पड़ता है।

एन.सी.आर. (NCR) द्वारा जारी आंकड़ों के आधार पर एक गैर सरकारी संगठन (NGO) द्वारा किये गये अध्ययन के आधार पर 1998 से 2011 के बीच 13 वर्षों में महिलाओं के प्रति अपराध में 74 प्रतिशत वृद्धि दर्ज की गई है। अपराध के कुछ प्रमुख आंकड़े सारणीवद्ध हैः–

तालिकाः–

क्रम संख्या	अपराध के मामले	आंकड़ा प्रतिशत में
1	घरेलू हिंसा	140 **प्रतिशत**
2	अपरहण	117 **प्रतिशत**
3	बलात्कार	60 **प्रतिशत**
4	छेड़छाड़	40 **प्रतिशत**
5	पति और ससुराल वालों द्वारा क्रूर हिंसा	30 **प्रतिशत लगभग**

भारतीय दण्ड संहिता (इंडियन पैनल कोड) (IPC) के तहत यह जानकारी प्राप्त होती है कि भारत में प्रत्येक 20 मिनट में एक बलात्कार, प्रत्येक 25 मिनट में छेड़छाड़ और प्रत्येक 40 मिनट में अपहरण एवं प्रत्येक 4 घण्टे में दहेज हत्या होती है। यद्यपि बलात्कार की घटनाएँ पहले पश्चिमी देशों में अधिक होती थी, परन्तु हाल के कुछ वर्षों में भारत में बलात्कार की भयंकर घटनाएँ सामने आयी है। दिल्ली का निर्भया काण्ड आत्मा को भी भयभीत कर देने वाला था। अब भारत को दुनिया की 'बलात्कार की राजधानी' के रूप में जाना जाता है। दिल्ली में सबसे ज्यादा बलात्कार के मामले सामने आये हैं। भारतीय शहरों में प्रत्येक 4 बलात्कार में से एक दिल्ली में भी घटित होता है।

National Crime Record Bureau (NCRB) की 2012 की भारत में अपराध पर रिपोर्ट के अनुसार बलात्कार भारत में तेजी से बढ़ता हुआ संगीन अपराध है वर्ष 1971 से 2012 के बीच इसमें 902 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। ये घटनाएँ 2011 में 24206 से 2012 में बढ़कर 24930 हो गई अर्थात् तीन प्रतिशत की वृद्धि हुई। NCRB द्वारा जारी आंकड़ों के अनुसार देश में 6 वर्षों में नाबालिगों के साथ बलात्कार की घटनाएँ बढ़ गई हैं। 2007 में इस तरह के 5045 मामले दर्ज किए गये थे, जबकि 2012 में यह आंकड़ा 8541 तक पहुँच गया। केवल गरीब लड़कियाँ ही बलात्कार की शिकार नहीं होती है, अपितु मध्यम और उच्च घराने की महिलाएँ भी इस अभिशाप से नहीं बच सकी हैं। यहाँ तक की दफ्तर में कार्य करने वाली, दिहाड़ी मजदूरी करने वाली, गूंगी, बहरी, पागल, अंधी, भिखारिनों के साथ भी पुरूष अपनी हैवानियत का रूप दिखाते हैं। सबसे अधिक वे महिलाएँ शोषण का शिकार होती हैं जो प्रमुख रूप से अपने परिवार का भरण–पोषण करने वाली होती हैं वे महिलाएँ आर्थिक समस्याओं के कारण मौन रूप से यौन शोषण को सहन करती हैं।

अपहरण और भगा ले जाने के NCRB 2012 द्वारा जारी आंकड़े बताते हैं, कि सभी अपहरणों में 82.20 प्रतिशत महिलाएँ ही प्रमुख रूप से लक्षित थीं। इनमें से 70.90 प्रतिशत विवाह और अवैध सम्बन्ध के लिए होते हैं और जिनका अवैध संभोग के लिए अपहरण कर लिया गया इनमें 78.87 प्रतिशत 15 से 30 वर्ष आयु वर्ग में आती हैं और 83.99 प्रतिशत

महिलाएँ जिनका विवाह हेतु अपहरण कर लिया गया, वे भी इसी आयु वर्ग की हैं। अपहरण के मामले वेश्यावृत्ति, फिरौती, बदला लेना, भीख मँगवाना आदि के लिए भी सामने आये हैं।

हमारे समाज में दहेज से सम्बन्धित घटनाएँ प्रत्येक दिन होती रहती है। यद्यपि दहेज निषेध कानून, 1961 ने दहेज प्रथा पर रोक लगा दी है, परन्तु व्यवहारिक रूप से दहेज प्रथा आज भी प्रचलित है और दहेज के लिए लड़कियों को जला कर मार देना, जहर पिला देना, शारीरिक और मानसिक रूप से प्रताड़ित करना, चारित्रिक आरोप लगा कर वधु को छोड़ देना आदि। यह सब हमारे समाज में आसानी से देखा जा सकता है।

भारत सरकार की मई 2000 में दी गई रिपोर्ट के अनुसार वर्तमान समय में हर 90 मिनट में एक दहेज से सम्बन्धित हत्या होती है। अधिकांश हत्याएँ पति और परिवार के सदस्यों की मिलीभगत से होती है। एक स्त्री का विवाह के बाद ससुराल में सबसे अधिक अपने पति पर विश्वास होता है, परन्तु यदि उसका पति ही उसे बेरहमी से पीटने लगे तो उस स्त्री की विश्वास छिन्न–भिन्न हो जाता है। हिंसा के कई रूप हो सकते हैं जैसे– चाँटे मारना, लात मारना, हड्डी तोड़ देना, बाल पकड़ कर घसीटना आदि। पत्नी को पीटने के पीछे महत्वपूर्ण कारण होते हैं जैसे– यौन सम्बन्धी असमायोजन, भावात्मक लगाव की कमी, पति का अहम तथा हीन भावना से ग्रसित होना, अत्यधिक शराब का सेवन, पति का पराई स्त्री से सम्बन्ध और पत्नी का अशिक्षित होना, पत्नी का पति के ऊपर निर्भर होना आदि। परिवार में पति द्वारा पत्नी को पीटना आम बात समझा जाता है, परन्तु इससे एक स्त्री का सम्पूर्ण व्यक्तित्व नष्ट होने का भय बना रहता है, अधिकांश स्त्रियाँ तो इसे अपना भाग्य मान लेती हैं। हमारे समाज में स्त्रियों के साथ क्रूरता की सीमा पार कर दी गई है। पुरूषों द्वारा महिलाओं के साथ अमानवीय कृत्य 'एसिड हमले' के रूप में देखा जा सकता है। एसिड हमलों का मूल कारण क्रोध और घृणा है। एसिड अटैक का सबसे गहरा प्रभाव स्त्री की शारीरिक विकृति का होना है। इसके फलस्वरूप पीड़िता को शारीरिक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है और बहुत लम्बी अवधि तक शल्य चिकित्सा व उपचार की आवश्यकता पड़ती है। एसिड अटैक में बचे लोगों को ठीक होने पर भी मानसिक परेशानी का सामना भी करना पड़ता है। उन्हें चिंता, उदासी, पीड़ा, आत्म सम्मान में कमी, भविष्य की चिन्ता, जीवन में तनाव, सामाजिक उपेक्षा, विवाह में अवरोध आर्थिक पेरशानी उत्पन्न होना आदि समस्यसाएँ प्रकट होती है। इसी तरह से 8 जुलाई, 2013 को दिल्ली की रहने वाली एसिड हमले की शिकार नाबालिग लड़की 'लक्ष्मी' की घटना बहुत चर्चित हुआ था।

हमारे समाज में अपराधों की कमी नहीं है और इसी प्रकार की एक सामाजिक बुराई है 'ऑनर किलिंग' 'अब्दुल्लाह पेनियनकारा' की राय में (सिविल सर्विस इंडिया, ई–पत्रिका, अगस्त, 2013), ऑनर किलिंग को मौत की तरह परिभाषित किया गया है, जो माता–पिता की इच्छाओं के विरूद्ध विवाह करने पर विवाह से पहले और विवाहेत्तर अवैध सम्बन्ध होने पर, एक ही गोत्र

के भीतर या जाति के बाहर विवाह करने पर व्यक्ति को सामाजिक समूह या परिवार द्वारा निर्मम हत्या कर दी जाती है। ऐसी हत्याएँ उन क्षेत्रों में अधिक होती है जहाँ 'खाप पंचायत' सक्रिय है।

स्पष्ट है कि सबसे पहले लोगों की मानसिकता बदलने की आवश्यकता है क्योंकि व्यक्ति की रूढ़िवादी सोच और पीढ़ी दर पीढ़ी बनाई गई। दकियानूसी परम्पराएँ इस प्रकार का कृत्य करने पर विवश करती है। प्राचीन समय से लेकर आधुनिक समय तक महिलाएँ हिंसा की शिकार हुई हैं, यह विचारणीय तथ्य बनता है कि क्या सदैव महिलाएँ शोषण पूर्ण जीवन व्यतीत करेंगी ? यदि हमारा समाज महिलाओं के प्रति अपना दृष्टिकोंण परिवर्तित करे तो महिलाओं का जीवन सुरक्षित और सुखमाय होगा। महिलाएँ मानसिक तथा शारीरिक रूप से स्वयं को सुरक्षित समझेंगी। परिवार तथा समाज में इन्हें आदर, सम्मान, बराबरी और सुरक्षा देने की नितान्त आवश्यकत है क्योंकि केवल पुरूष वर्ग ही समाज को विकसित नहीं करता है बल्कि स्त्रियाँ भी पूरा योगदान देतीं हैं। एक महिला ही घर में माँ, पत्नी, पुत्री के रूप में अपना कर्त्तव्य पूर्ण करती हैं।

अतः महिलाओं के प्रति ठोस कानून बना कर लागू करना आवश्यक है और सबसे अधिक पुरूष की पुरूषवादी सोच बदलने की आवश्यकता है तभी हमारे समाज में महिलाओं के प्रति अपराध समाप्त हो पायेंगे।

सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची :–

1. सिंह वी0एन0, सिंह जनमेजय, 'नारीवाद' रावत पब्लिकेशन।
2. प्रो0 गुप्ता एम0एल0, शर्मा डॉ0 डी0डी0, 'भारतीय सामाजिक समस्याएँ, साहित्य भवन पब्लिकेशनः आगरा, पूर्वतः संशोधित एवं अद्यतन संस्करण, 2009.
3. आहूजा राम, 'भारतीय सामाजिक व्यवस्था' रावत पब्लिकेशन, पुनः प्रकाशित, 2013.
4. आहूजा राम, 'सामाजिक समस्याएँ' तृतीय संस्करण, रावत पब्लिकेशन।
5. गुप्ता प्रो0 एम0एल0, शर्मा डॉ डी0डी0, 'भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशनः आगरा।
6. श्रीवास्तव डॉ ए0आर0एन0, 'सामाजिक परिवर्तन' नवीन संस्करण, 2014 शेखर प्रकाशन इलाहाबाद।
7. सिंह सुनील कुमार, Lucent's सामान्य ज्ञान NCERT पाठ्यक्रम पर आधारित।
8. किरण सामान्य ज्ञान NCERT के नवीनतम पैटर्न पर आधारित Kiran Institute of career Excellence (KICX)] Delhi.
9. गुप्ता प्रो0 एम0एल0 एवं शर्मा डॉ0 डी0डी0, 'समाजशास्त्र साहित्य भवनः आगरा, पूर्णतः संशोधित एवं परिवर्तित संस्करण, 2015,
10. वशिष्ठ प्रो0 सरिता, 'महिला सशक्तिकरण' कल्पना प्रकाशन दिल्ली–110033.
11. शुक्ला डॉ0 मंजु, 'महिला साक्षरता एवं सशक्तिकरण' भारत प्रकाशन, लखनऊ।
12. श्रीवास्तव सुधा रानी, श्रीवास्तव आशा, 'महिला शोषण और मानवाधिकार' प्रथम संस्करण 2004, अर्जुन पब्लिकेशन हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली।

भारत के सन्दर्भ में उत्तर प्रदेश में स्त्री शिक्षा की स्थिति का अध्ययन

डॉ0 अर्चना श्रीवास्तवा

असिस्टेन्ट प्रोफेसर
शिक्षा शास्त्र विभाग,
टी0डी0पी0जी0 कॉलेज, जौनपुर
Email. – *archanasrivastava2742@gmail.com*

सारांश :–

प्रस्तुत शोध–पत्र में स्वतन्त्रता के बाद भारत के सन्दर्भ में उत्तर प्रदेश में स्त्री शिक्षा की स्थिति का अध्ययन किया गया है। यह अध्ययन स्वतन्त्रता के बाद उत्तर प्रदेश में पाँच दशकों (1951–2001) में स्त्री शिक्षा के विकास के अध्ययन तक सीमित है। प्रत्येक प्रगतिशील राष्ट्र अपने सर्वांगीण विकास के लिए शिक्षा को महत्वपूर्ण साधन के रूप में स्वीकार करता है। भारत ने नारी के उत्थान और विकास के लिए शिक्षा की पूर्व निश्चित प्रतिज्ञा और भारत को जनतान्त्रिक एवं समानतावादी समाज बनाने के उद्देश्य को स्वीकार किया है। स्वतन्त्रता के बाद भारत में नारी एवं नारी शिक्षा के उत्थान के लिए विभिन्न प्रकार के आयोगों और समितियों का गठन किया गया तथा योजनाएँ बनायी गयी विभिन्न प्रयासों के परिणामस्वरूप स्त्री शिक्षा की स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। भारत के सन्दर्भ में जब हम उत्तर प्रदेश में स्त्री शिक्षा की स्थिति पर दृष्टि डालते हैं तो पता चलता है कि स्वतन्त्रता के बाद उत्तर प्रदेश में स्त्री शिक्षा का विकास तीव्र गति से हुआ। सन् 1951 में स्त्री साक्षरता दर 4.07 प्रतिशत थी जो सन् 2001 तक उत्तरोत्तर वृद्धि कर 42.98 प्रतिशत पहुँच गयी। लेकिन उत्तर प्रदेश में स्त्री शिक्षा की स्थिति सन्तोषजनक नही है; स्त्रियों की स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन के बावजूद भी आज उत्तर प्रदेश की लगभग आधी महिलाओं की जनसंख्या अशिक्षा के अन्धकार में डूबी हुयी है। स्त्री शिक्षा के विकास हेतु किये गये विभिन्न सार्थक प्रयासों के बाद भी स्त्री शिक्षा आज भी उत्तर प्रदेश में बहुत पिछड़ी अवस्था में है जिसका मुख्य कारण है स्त्री शिक्षा के मार्ग में आने वाली समस्यायें। वर्तमान समय में आवश्यकता इस बात की है कि स्त्री शिक्षा के मार्ग में आने वाली समस्याओं को दृढ़ संकल्प के साथ दूर किया जाय तथा इस क्षेत्र में किये जाने वाले प्रयासों को व्यावहारिक रूप प्रदान किया जाय। यदि उत्तर प्रदेश में स्त्री शिक्षा का वांछित विकास करना है तो सभी को सरकार, जनता, सभी संस्थाओं एवं स्वंय महिलाओं को एक साथ मिलकर कार्य करना होगा और अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह पूर्णनिष्ठा एवं उत्साह के साथ करना होगा।

प्रस्तावना :–

प्रत्येक प्रगतिशील राष्ट्र अपने सर्वांगीण विकास के लिए विशिष्ट नियमों तथा नीतियों का अनुसरण करता है। राष्ट्र निर्माण में शिक्षा एक शानदार भूमिका अदा करेगी, ऐसा भारतीयों का संकल्पबोध है। वातावरण में सन्तुलन बनाये रखने के लिए शिक्षा एक कुंजी है और एक

जनतान्त्रिक और शान्त समाज के निर्माण में सहायक होती है जहाँ स्त्री और पुरूष समान भूमिका अदा करते हैं।

भारत ने नारी के उत्थान और विकास के लिए शिक्षा की पूर्व निश्चित प्रतिज्ञा और भारत को जनतान्त्रिक समाज एवं समानतावादी समाज बनाने के उद्देश्य को स्वीकार किया है। स्वतन्त्रता के पश्चात् राधाकृष्णन आयोग ने नारी शिक्षा, महिला के महत्व और आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए कहा कि बिना शिक्षित महिला के कोई व्यक्ति शिक्षित नही हो सकता, यदि सामान्य शिक्षा को स्त्री–पुरूष तक सीमित करना है तो यह अवसर महिलाओं को मिलना चाहिए। भारत के समाज सुधारकों के द्वारा 19वीं शताब्दी से नारी के उत्थान के लिए आवाज उठायी गयी।

स्वतन्त्रता के बाद शिक्षा की समानता को अनिवार्य घोषित करने में और उसे व्यावहारिक रूप देने में काफी अन्तर था। पुरूषों की शिक्षा, रोजगार से जुड़ी हुयी थी जबकि लड़कियों की शिक्षा का ऐसा कोई उद्देश्य नहीं था। प्रथम पंचवर्षीय योजना में नारी के उत्थान और विकास पर बल दिया गया। सन् 1970 ई0 में यह महसूस किया गया कि नारी शिक्षा सिर्फ उनके परिवार तक ही सीमित नही होना चाहिए बल्कि उनकी भूमिका समाज के सभी क्षेत्र में महत्वपूर्ण है। नारी की स्थिति पर गठित समिति की रिपोर्ट ने महिलाओं की कार्य में सहभागिता की कमी एवं एक घटता हुआ लैंगिक अनुपात और नयी तकनीकी में महिलाओं का विस्थापन, अस्वस्थता और निम्न शैक्षिक स्तर को प्रकाशित किया। छठीं पंचवर्षीय योजना में पहली बार 'नारी और विकास' नामक एक अलग शीर्षक को प्रकाशित किया गया तथा नारी शिक्षा की व्यवस्था पर विशेष ध्यान दिया गया। 1986 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति को आयोजित किया गया जिसमें स्त्री शिक्षा को विशेष महत्व दिया गया। स्वतन्त्रता के पश्चात् नारी एवं नारी शिक्षा के उत्थान के लिए विभिन्न प्रकार के आयोगों, समितियों का गठन किया गया तथा योजनाएँ बनायी गयी। स्वतन्त्र भारत में स्त्री शिक्षा की स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। विभिन्न सार्थक प्रयासों के परिणामस्वरूप स्त्री शिक्षा में तेजी से वृद्धि हुई।

किसी भी देश की साक्षरता उसके सामाजिक एवं आर्थिक विकास का एक सूचक है। यह विकासात्मक तकनीकी के प्रसार के ऊपर प्रत्यक्ष प्रभाव डालती है। यदि हम भारतवर्ष के सन्दर्भ में उत्तर प्रदेश की स्त्री शिक्षा का विकास देखें तो पता चलता है कि अन्य प्रदेशों की अपेक्षा उत्तर प्रदेश में स्त्री शिक्षा का स्तर बहुत निम्न है। सन् 2001 की जनगणना रिपोर्ट से यह पता चलता है कि उत्तर प्रदेश की कुल साक्षरता दर 57.36 प्रतिशत थी, पुरूषों की साक्षरता दर 70.23 प्रतिशत एवं महिलाओं की साक्षरता दर 42.98 प्रतिशत थी। उत्तर प्रदेश की कुल साक्षरता दर राष्ट्रीय साक्षरता दर 65.38 प्रतिशत से कम है और महिला साक्षरता दर भी राष्ट्रीय महिला साक्षरता दर 54.16 प्रतिशत से बहुत कम है जो निराशाजनक है।

उत्तर प्रदेश में स्त्री शिक्षा की स्थिति :–

उत्तर प्रदेश एक ऐसा राज्य है जो जनसंख्या की दृष्टि से भारत का सबसे बड़ा राज्य है। सन् 2001 की जनगणना के अनुसार उत्तर प्रदेश की आबादी 16,60,52,859 थी। उत्तर प्रदेश में उत्तरांचल के अलग होने के बाद 70 जिले तथा 17 मण्डल थे। यदि लिंगीय अनुपात को देखें तो जहाँ प्रति हजार पुरूषों पर स्त्रियों की संख्या सन् 1991 में 876 थी वहीं 2001 में

898 हो गयी थी। सन् 2001 की जनगणना के अनुसार उत्तर प्रदेश की कुल साक्षरता दर 57. 36 प्रतिशत थी, पुरूषों की साक्षरता दर 70.23 प्रतिशत एवं महिला साक्षरता दर 42.98 थी। इस जनगणना रिपोर्ट से यह पता चलता है कि भारत के कुल प्रान्तों में सबसे अधिक साक्षरता दर केरल (90.92 प्रतिशत) की थी और सबसे कम बिहार (47.53 प्रतिशत) बिहार की थी। भारत के सन्दर्भ में जब हम उत्तर प्रदेश में साक्षरता दर देखते हैं तो पता चलता है कि उत्तर प्रदेश 31वें स्थान पर था तथा अन्य प्रान्तों से बहुत पीछे है। अरूणाचल प्रदेश (54.74 प्रतिशत), जम्मू कश्मीर (54.46 प्रतिशत), झारखण्ड (54.13 प्रतिशत) और बिहार (47.53 प्रतिशत) को छोड़कर अन्य सभी प्रदेशों से उत्तर प्रदेश की शिक्षा का स्तर निम्न है।

प्रत्येक प्रगतिशील राष्ट्र अपने सर्वांगीण विकास के लिए शिक्षा को महत्वपूर्ण साधन के रूप में स्वीकार करता है। भारत ने नारी के उत्थान और विकास के लिए शिक्षा की पूर्व निश्चित प्रतिज्ञा और भारत को जनतान्त्रिक एवं समानतावादी समाज बनाने के उद्देश्य को स्वीकार किया है।

स्वतन्त्रता के पश्चात् राधाकृष्णन आयोग ने नारी शिक्षा, महिला के महत्व और आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए कहा कि बिना शिक्षित महिला के कोई व्यक्ति शिक्षित नही हो सकता, यदि सामान्य शिक्षा को स्त्री–पुरूष तक सीमित करना है तो यह अवसर महिलाओं को मिलना चाहिए।

उत्तर प्रदेश में सन् 2001 की जनगणना रिपोर्ट के अनुसार स्त्रियों की साक्षरता दर 42.98 प्रतिशत थी जो सबसे उच्चतम महिला साक्षरता दर 87.86 प्रतिशत जो कि केरल की है से 44.88 प्रतिशत कम है। भारत में सबसे कम महिला साक्षरता दर 33.57 प्रतिशत बिहार की है जो उत्तर प्रदेश की महिला साक्षरता दर से सिर्फ 09.41 प्रतिशत कम है। अतः भारत के तीन राज्यों (जम्मू कश्मीर, झारखण्ड, बिहार) को छोड़कर उत्तर प्रदेश स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में भी साक्षरता सीढ़ी पर बहुत नीचे है। भारत में उत्तर प्रदेश महिला साक्षरता दर के अनुसार 32वें स्थान पर थी।

यद्यपि उत्तर प्रदेश में स्त्री शिक्षा की स्थिति अन्य प्रदेशो की अपेक्षा दयनीय है फिर भी स्वतन्त्रता के पश्चात् उत्तर प्रदेश में स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में तेजी से वृद्धि हुयी है। सन् 1991–2001 के दशक में स्त्री शिक्षा के स्तर में काफी तेजी से वृद्धि हुयी है। जहाँ सन् 1991 में महिला साक्षरता दर 24.37 प्रतिशत थी वहीं यह दर बढ़कर 42.98 प्रतिशत हो गयी। स्वतन्त्रता के पश्चात् उत्तर प्रदेश में शैक्षिक विकास तीव्र गति से हुआ जहाँ तक स्त्री शिक्षा का प्रश्न है उत्तर प्रदेश में आज भी स्त्री शिक्षा की स्थिति अन्य प्रदेशों की अपेक्षा बहुत दयनीय है। किन्तु 1951 के बाद उत्तर प्रदेश में स्त्री शिक्षा के स्तर में काफी तेजी से परिवर्तन हुआ। सन् 1951 में महिला साक्षरता दर 4.07 प्रतिशत थी, जो 2001 में उत्तरोत्तर वृद्धि के परिणामस्वरूप बढ़कर 42.98 प्रतिशत हो गयी। सन् 1991 और 2001 की जनगणना रिपोर्ट में 7 वर्ष से कम के बच्चे अशिक्षित माने गये जबकि सन् 1981 और उसके पूर्व 5 वर्ष से कम बच्चों को अशिक्षित की श्रेणी में रखा गया था। इसी आधार पर उत्तर प्रदेश की साक्षरता दर की तुलनात्मक अध्ययन की तालिका आगे दी जा रही है।

तालिका नं0 – 1

साक्षरता दर 1951–2001 उत्तर प्रदेश

वर्ष	कुल साक्षरता	पुरूष	महिला
1951	12.0199719	19.16798458	4.073312004
1961	20.87375426	32.08375688	8.364964365
1971	23.99010618	35.01017953	11.23066459
1981	32.64710258	46.65423278	16.74215631
1991	40.71182357	54.82489537	24.36601105
2001	57.36082487	70.22698833	42.97850169

स्रोत :– उत्तर प्रदेश सरकार की नोडल वेब साइड 2001

उपर्युक्त तालिका के अवलोकनार्थ यह पता चलता है कि महिला व पुरूष का शैक्षिक स्तर उत्तरोत्तर बढ़ता गया है। सन् 1951 में पुरूषों की साक्षरता दर 19.17 प्रतिशत और महिलाओं की 4.07 प्रतिशत थी। पुरूषों की अपेक्षा महिलाओं की साक्षरता दर में 15.01 प्रतिशत का अन्तर था। सन् 1961 में पुरूषों के शैक्षिक स्तर में 12.91 प्रतिशत की वृद्धि हुयी और महिलाओं के शैक्षिक स्तर में 4.29 प्रतिशत की वृद्धि हुयी। सन् 1971 में यह वृद्धि (पुरूषों) में 2. 99 प्रतिशत एवं (महिलाओं) में 2.87 प्रतिशत हुयी। जबकि सन् 1981 में पुरूषों की साक्षरता दर में 11.64 प्रतिशत और महिलाओं की साक्षरता दर में 5.51 प्रतिशत की वृद्धि हुयी। सन् 1991–2001 के दशक में सबसे तेजी से स्त्रियों और पुरूषों की शैक्षिक स्तर में वृद्धि हुयी। पुरूषों के शैक्षिक दर में 1991 की अपेक्षा 2001 में 15.41 प्रतिशत तथा स्त्रियों के साक्षरता दर में 18.61 प्रतिशत की वृद्धि हुयी। सन् 1951 से 2001 के बीच पुरूषों और महिलाओं दोनों के शैक्षिक स्तर का विकास हुआ लेकिन यह विकास पुरूषों के पक्ष में था। उत्तर प्रदेश में महिलाओं की साक्षरता दर में उत्तरोत्तर वृद्धि तो हुयी लेकिन वह सन्तोषजनक नही है, पुरूषों की अपेक्षा महिलाओं का शैक्षिक स्तर निम्न है।

निःसन्देह भारत में स्त्रियों की शिक्षा में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं। आज 21वीं शताब्दी में नारी शिक्षा की प्रासंगिकता और भी बढ़ गयी है। उत्तर प्रदेश में भी स्त्रियों के शिक्षा की स्थिति में तीव्र गति से वृद्धि हुयी लेकिन यह वृद्धि सन्तोषजनक नही है। सभी आयोगों एवं समितियों ने स्त्री शिक्षा के विकास के लिए बहुत सी संस्तुतियाँ दी। सम्भवतः वे संस्तुतियाँ अधिकतर कागज के पृष्ठों पर ही अंकित रह गयी। उनका पालन न तो राष्ट्रीय स्तर पर हुआ और न ही उत्तर प्रदेश सरकार ने इस पर ध्यान दिया अन्यथा लड़कियों की शिक्षा की यह असन्तोषजनक स्थिति पैदा नहीं होती। स्त्री शिक्षा के मार्ग में बहुत सी समस्यायें उत्पन्न हुयी और स्त्री शिक्षा का विकास अवरूद्ध हुआ। उत्तर प्रदेश में स्त्री शिक्षा के मार्ग में आने वाली प्रमुख बाधायें हैं –

धार्मिक एवं सामाजिक रूढ़ियां, शैक्षिक अवसरों की असमानता, लड़कियों की शिक्षा के प्रति उचित दृष्टिकोण का अभाव, आर्थिक कठिनाईयाँ, अपव्यय तथा अवरोधन की समस्या

दोषपूर्ण पाठ्यक्रम की समस्या, व्यावसायिक एवं तकनीकी शिक्षा का अभाव, सरकार की उपेक्षा, दोषपूर्ण प्रशासन इत्यादि।

21वीं सदी में आवश्यकता इस बात की है कि केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकारें स्त्री शिक्षा के प्रति उचित नीतियों का निर्धारण करें तथा इनकी शिक्षा के विकास के लिए ठोस कदम उठायें। लड़कियों की शिक्षा को प्रोत्साहित करें और अपने उत्तरदायित्वों का निष्ठापूर्वक निर्वाह करें। उत्तर प्रदेश में यद्यपि कि पढ़ा–लिखा अभिभावक अपनी लड़कियों की शिक्षा के प्रति जागरूक है। लेकिन आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में पिछड़े क्षेत्रों में तथा कुछ विशेष जातियों में स्त्री शिक्षा के प्रति सकारात्मक सोच नही है। ऐसी स्थिति में स्त्री शिक्षा के प्रति उचित दृष्टिकोण का विकास करना एवं जागरूकता लाना बहुत जरूरी है। स्त्री शिक्षा के विकास के लिए आर्थिक कठिनाईयों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है क्योंकि धनाभाव में योजनाओं का क्रियान्वयन सही ढंग से नही हो पाता है। उत्तर प्रदेश में स्त्री शिक्षा के प्रसार के लिए यथा सम्भव सार्थक प्रयास किये जाये जिसकी अभी अत्यन्त आवश्यकता है।

निष्कर्ष :–

निःसन्देह स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत में स्त्री शिक्षा का विकास तीव्र गति से हुआ, स्त्री शिक्षा को नई दिशा और दशा प्राप्त हुयी। भारत के सन्दर्भ में उत्तर प्रदेश में भी स्त्री शिक्षा का विकास तीव्र गति से हुआ। सन् 1951 में उत्तर प्रदेश में महिला साक्षरता दर 4.07 प्रतिशत थी वहीं सन् 2001 तक उत्तरोत्तर वृद्धि कर 42.98 प्रतिशत पहुँच गयी। वास्तव में स्त्रियों की स्थिति में जो परिवर्तन हुआ उसका प्रमुख श्रेय स्त्री शिक्षा के प्रसार एवं प्रचार को है। स्त्रियों की स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन के बावजूद भी वस्तु स्थिति यह शहादत पेश करती है कि स्त्रियों की शिक्षा उत्तर प्रदेश में दबे पाँव आगे बढ़ रही है। उत्तर प्रदेश की लगभग आधी स्त्रियों की जनसंख्या आज भी अशिक्षा के अन्धकार में डूबी हुयी है। स्त्री शिक्षा के विकास हेतु किये गये इतने प्रयासों के बाद भी स्त्री शिक्षा की स्थिति सन्तोषजनक नहीं है। यदि उत्तर प्रदेश में स्त्री शिक्षा का वांछित विकास करना है तो सभी को सरकार, जनता सभी संस्थाओं एवं स्वंय महिलाओं को एक साथ मिलकर आन्दोलन चलाना होगा। यह उत्तरदायित्व किसी एक का नहीं है और नही किसी एक के प्रयासों से इस लक्ष्य की प्राप्ति सम्भव है।

सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची :–

1. अग्रवाल, जे0सी0 : स्वतन्त्र भारत में शिक्षा का विकास, आर्य बुक डिपो, दिल्ली 1982।
2. अग्रवाल, एस0पी0 : वुमेन्स एजुकेशन इन इण्डिया, हिस्ट्रोरिकल रिव्यू प्रेजेन्ट पर्सपेक्टीव प्लान विथ स्टैटिस्टिकल इण्डिकेटर्स, कानसेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, न्यू दिल्ली 1992, रिप्रिन्टेड 1994।
3. उत्तर प्रदेश सरकार की नोडल वेबसाइड – 2001 इन्टरनेट।
4. गुप्ता, एस0पी0 : भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्यायें, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 1996।
5. सेन्सस ऑफ इण्डिया 1981 पार्ट सेकेण्ड बी, सीरिज–1 इण्डिया प्राइमरी सेन्सस अब्सट्रेक्ट जनरल पापुलेशन, ऑफिस ऑफ रजिस्ट्रार जनरल इण्डिया।
6. सेन्सस ऑफ इण्डिया 1991 और सेन्सस रिपोर्ट 1991 : उत्तर प्रदेश, आफिस ऑफ दि रजिस्ट्रार जनरल, इण्डिया।

वैदिक काल के शैक्षिक विचारों की आधुनिक में उपादेयता

शिवाश्रेय यादव

शोध–छात्र
वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय
जौनपुर उ प्र

प्रस्तावना

शिक्षा मानव और सृष्टि के उन्नयन की एक महनीय उपलब्धि और साधन है जो व्यैक्तिक सामाजिक एवं राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना तथा सभ्यता के संरक्षण का परमोत्कर्ष है। इन्हीं मूल्यों का चिन्तन मनन के बाद हमारे प्राच्च ऋषि और मनीषियों ने मानवीय सभ्यता संस्कृति के सर्वांगीण विकास के लिए आदर्श पूर्ण शैक्षिक पाठ्यक्रम के स्वरूप की रचना की। शिक्षा के उद्देश्य पर विचार विमर्श कर ऋषि–मुनियों ने मानव की अन्तःशक्तियों के समुचित प्रस्फुटन के लिए वैदिक शिक्षा का आदर्श प्रस्तुत किया। जिसकी झलक निम्न श्लोकम् से स्पष्टतः झलकती है–

असतो माँ सद्गमय्
तमसो माँ ज्योतिर्गमय।।

एक वैदिक ऋषि का बुद्धि को मेधावी और शुद्ध बनाना तत्कालीन शिक्षा का मूल आदर्श था। कठोपनिषद् मेघाकामी पुरुष मेघा शक्ति के लिए इन्द्र से याचना करता है–

स मेन्द्रो मेधया स्पृणोत्।। तै0 उ0–1.14/1

विश्व कल्याण कर्माण की भावना से ओतप्रोत वैदिक शिक्षा का मुख्य आदर्श है जिसमें आस्तिक भावनाएँ नितान्त अपेक्षित है वैदिक शिक्षा का मुख्य ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति है, और इस ब्रह्म की प्राप्ति तप से ही सम्भव है। किन्तु तपस्या में यम नियमों का पालन तथा अन्तःकरण की वृत्तियों की शुद्धि परमावश्यक है तपोनिष्ठ छात्र ईश्वर से ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति के लिए तेज, वीर्य, बल की प्रार्थना करता है।

तेजोऽसि तेजोमयि धेहि
वीर्यमसि वीर्यन मयि धेहि
वलमसि बलं मयि धेहि।।– शु0य0वे0 9/9

इस प्रकार वैदिक शिक्षा में चारित्रिक विकास पर सर्वाधिक बल दिया जाता है, प्राचीन मान्यता थी कि संसार दोष और इन्द्रिय दोष से मनुष्य में अज्ञानता का प्रादुर्भाव है।

संस्कार दोषात् इन्द्रिय दोषात् च अविद्या।

वस्तुतः अविधा ही मानव को पतन के गर्त में ले जाती है। अविद्या की इस छाया से बचने के लिए तप, व्रत की अनुष्ठान अनिवार्य था–

व्रतेन दीक्षामारनीति दक्षिणाम्, दक्षिणया श्रद्धामारनीति श्रध्या सत्य मारयते।

परिप्रेक्षतः अविद्या की निवृत्ति का एक मात्र साधन शिक्षण ही है।

वैदिक शिक्षा में पाठ्यक्रम :–

वैदिक कालीन शिक्षा में धर्म की प्रधानता थी, मानव जीवन का मुख्य लक्ष्य आवागमन के चक्र से मुक्ति तथा मोक्ष की प्राप्ति है। भारतीय तत्व ज्ञान धर्म तथा सिद्धान्तों का मूल स्रोत गौरवशाली वैदिक ही है। वैदिक की शिक्षा का पाठ्यक्रम अत्यधिक व्यापक था आरम्भिक युग में वैदिक मन्त्र, इतिहास, नाराशंसी गाथाएँ पाठ्य विषय थे। उत्तर वैदिक काल में व्याख्याओं, ब्राह्मण ग्रन्थों को भी पाठ्यक्रम में शामिल किया गया, वैदिक अर्थ के बोध के लिए वेदांग– शिक्षा कल्प, व्याकरण, निरूक्त ज्योति, छन्द के अध्ययन अध्यापन को प्रमुखता मिली। शिक्षा प्रणाली के उत्कर्ष का सूचक है, इस सन्दर्भ में सनत् कुमार के प्रति नारद का कथन है– भगवन् मैंने ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद इतिहास वेद पुराण के अर्थ विधायक ग्रन्थ, पितृ विद्या वृहत विद्या, निधि विद्या, छत्र विद्या, सर्व देव यजन, आदि विद्याओं का गहन अध्ययन किया है।

नारद के इस कथन से यह स्पष्ट है कि उस समय वैदिक वाङ्मय के अतिरिक्त जीवनोपयोगी विषयों को भी पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया है। आध्यात्मिक शिक्षा के साथ–साथ लौकिक शिक्षा का भी व्यवस्था की गयी थी जिससे छात्रों की जीवनोपयोगी कार्य की क्षमता भी प्राप्त है।

वैदिक युग में शिक्षा के दो स्तरों का संकेत मिलता है–

1. प्रारम्भिक स्तर, 2. उच्च शिक्षा बालक को प्रारम्भिक शिक्षा अपने गृह परिवार, माता–पिता से ही मिलती थी।

प्रारम्भिक शिक्षा गुरुकुल से प्रारम्भ होती थी। जहाँ विद्यार्थी का उपनयन संस्कार के पाश्चात्य वेदाध्ययन प्रारम्भ करता था, जहाँ वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम तथा सन्तान का समावेश किया गया है। अतः पाठ्यक्रम में शिक्षा के प्रारम्भिक स्तर के पाठ्यक्रम में वेदांग शिक्षा और व्याकरण पर विशेष महत्व दिया जाता था। वैदिक युग में उच्चशिक्षा के लिए पाठ्यक्रम का जो रूप मिलता है उसमें परा और अपरा दो विधाएँ सम्मिलित है–

दे विधे वेदिदत्ये इति हस्म यद्वृहत विदोवदन्ति परा

चैवापा च–2

उन दोनों में जिसके द्वारा इस लोक और परलोक सम्बन्धी भोगों तथा उनकी प्राप्ति के साधनों का ज्ञान प्राप्त किया जाता है जिसमें भोगों की स्थिति, भोगों के उपभोग के प्रकार, भोग सामग्री की रचना और उपलब्ध करने के नाना साधन आदि का वर्णन है वह तो अपरा विद्या है। जैसे–ऋग्वेद, यजुर्ववेद, सामवेद और अथर्ववेद। इनमें नाना प्रकार के यज्ञों की विधि और उनके फल का सविस्तार वर्णन है। इसके तथ्य ही संसार के सभी पदार्थों एवं विषयों का वेदों में सम्यक वर्णन किया गया है। वेदों का पाठ अर्थात सही उच्चारण करने की विधि का उपदेश शिक्षा है, जिसमें यज्ञ त्याग आदि की विधि बतलायी गयी है, उसे कल्प कहते है। वैदिक और लौकिक शब्दों के अनुशासन का प्रकृति प्रत्यय विभाग पूर्वक शब्द साधन की प्रक्रिया शब्दार्थ बोध के प्रकार एवं शब्द प्रयोग आदि के नियमों के उपदेश का नाम व्याकरण है। वैदिक शब्दों का जो शब्द कोष है जिसमें वैदिक शब्दों का निर्वचन किया गया है उसको निरूक्त कहते है।

वैदिक छन्दों की जाति और भेद को बतलाने वाला छन्द है, ग्रह और नक्षत्रों की स्थिति, गति और उनके जीवों के सम्बन्ध का विचार जिसमें किया गया है वह ज्योतिष है। इस प्रकार चार वेद छः वेदागं इन दक्षों का नाम ही अपरा विद्या है जिसके द्वारा अविनाश पारब्रह्म का तत्वज्ञान होता है उसे परा विद्या कहते है उसका वर्णन भी देवदों में ही है। अर्थात् उतना अंश छोड़कर अन्य सभी विद्याएं अपरा के अन्तर्गत आती है।

हमारे प्राच्च ऋषि और मनीषियों ने मानवीय सभ्यता संस्कृति के सर्वांगीण विकास के लिए आदर्श पूर्ण शैक्षिक पाठ्यक्रम के स्वरूप की रचना की। शिक्षा के उद्देश्य पर विचार विमर्श कर ऋषि–मुनियों ने मानव की अन्तःशक्तियों के समुचित प्रस्फुटन के लिए वैदिक शिक्षा का आदर्श प्रस्तुत किया।

वैदिक शिक्षा का मुख्य ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति है, और इस ब्रह्म की प्राप्ति तप से ही सम्भव है। किन्तु तपस्या में यम नियमों का पालन तथा अन्तःकरण की वृत्तियों की शुद्धि परमावश्यक है तपोनिष्ठ छात्र ईश्वर से ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति के लिए तेज, वीर्य, बल की प्रार्थना करता है।

वैदिक शिक्षा में ब्रह्म विद्या का स्वरूप अत्यन्त व्यापक है, इसकी प्राप्ति कोई साधारण छात्र नही कर सकता था– इस प्रकार उच्च शिक्षा के प्रथम अपरा पाठ्यक्रम में वेद वेदागों की शिक्षा के साथ ही व्यावहारिक शिक्षा, सामान्य ज्ञान, विज्ञान, शरीर–विज्ञान, नक्षत्र विज्ञान आदि का अध्ययन कराया जाता था और द्वितीय चरण के परा पाठ्यक्रम में मोक्ष प्राप्ति के लिए ब्रह्मज्ञान की शिक्षा प्रदान की जाती थी।

वैदिककालीन की शिक्षण विधियाँ :–

वैदिक काल में शिक्षा का मुख्य विषय वैदिक साहित्य ही था। वैदिक स्रोतों का अध्ययन मन्त्रों के रूप में होता था। वैदिक सूत्रों को समझने का प्रयास किया जाता था। प्रख्यात कवि वैदिक सूत्रों से भी उत्तम सूक्त रचना में निपुण थे। परिप्रेक्षतः नये सूत्रों की रचना होने लगी थी। ऋग्वेद की प्रथम सूक्त के दूसरे मन्त्र में पूर्व और नूतन कवियों की रचनायें संग्रहीत की गयी इन सूत्रों का अध्ययन लोकगीतों की भाँति होता था और उसके अर्थ पर विशेष ध्यान दिया जाता था।

वैदिक मंत्रों के मूल स्वर एवं उच्चारण शैली में किसी प्रकार का परिवर्तन मान्य नही था। पुरोहित वर्ग के लोग कर्मकाण्ड विधि सम्पन्न करने के लिए वैदिक मन्त्रों को कंठस्थ करते थे और तत्कालीन वैदिक विद्वान वैदिक मन्त्रों को मूलरूप से ही कंठस्थ करने के पक्षपाती थे। वैदिक मन्त्रों के कंठस्थीकरण के साथ–साथ अर्थबोध पर विशेष बल दिया जाता था।

वैदिक युग में वैदिक वाङ्मय अपौरूषेय है, ब्राह्मण उपनिषद् भी इसी के समतुल्य था। ज्ञान–विज्ञान, सरस सलिल, मनोरम क्रांतिमय वृक्ष की रक्षा का उत्तरदायित्व भारतीय वैदिक पाठशालाओं को प्राप्त था। उस समय लेखन कला का ज्ञान तो हो गया था किन्तु वैदिक मन्त्रों को लिखना धार्मिक कार्य नही माना जाता था वैदिक मन्त्रों का अनादर नही होता था। वैदिक मन्त्रों का उच्चारण और स्वर में लेशमात्र त्रुटि न हो। वैदिक मन्त्रों का प्रक्षेप किसी भी प्रकार न हो। इसलिए पद पाठ, क्रम पाठ–जटा पाठ और धन पाठ की व्यवस्था की गयी। वैदिक साहित्य में निष्णात होने के लिए उनका अभ्यास करना आवश्यक था। जिससे धारणा शक्ति में वृद्धि हो,

किन्तु समय व्यतीत होने के साथ ही इस विशाल साहित्य का अध्ययन अभ्यास, अर्थबोध कठिन होने लगे।

व्याकरण विधि :–

मातृ भाषा के अतिरिक्त किसी भी भाषा को सीखने की विधि है। उस भाषा के व्याकरण का सही ज्ञान व्याकरण के ज्ञान से ही भाषा पर अधिकार सम्भव है। अतः उपनिषद् काल में संस्कृत के सम्यक् ज्ञान क लिए व्याकरण पर विशेष बल दिया जाता है। तत्कालीन शिक्षा का मुख्य विषय वेदों के यर्थाथ ज्ञान के लिए शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द, ज्योतिष, इन छः वेदागों में व्याकरण को प्रमुख स्थान प्राप्त था।

प्रश्नोत्तर विधि :–

शिष्य पाठ्यसामग्री से एक प्रश्नावली तैयार करता है और उसका उत्तर अध्यापक से प्राप्त करता है। शिक्षा अधिगम के समय छात्रों को पाठ्यवस्तु के किसी अंश में जब भी कोई सन्देह उत्पन्न होता है तो वह अपने सन्देह निवारण के लिए अध्यापक से प्रश्न करता था अध्यापक उसका उत्तर देता था और छात्रों की शंकाओं का समाधान करता है। अध्यापक भी पढ़ायी गयी पाठ्यसामग्री कितनी ग्रहण हुई। छात्रों के व्यवहार परिवर्तन में सफल हुआ कि नही आदि बातों का पता लगाने के लिए छात्रों की सामग्री से प्रश्न पूछता था तथा उत्तर न पाने पर पुनः उस विषय को समझाता था।

उपदेश विधि :–

इस विधि में छात्रों के बौद्धिक एवं अध्यात्मिक विकास के लिए शिक्षक शिष्यों को नैतिक शिक्षा का उपदेश देता है। आज भी शिक्षण संस्थाओं में नैतिक शिक्षा का उपदेश छात्रों के मानसिक और शारीरिक विकास के लिए देता है। नैतिक शिक्षा के ज्ञान से ही शिष्यों को जीवन का सही दिशा का बोध होता है। चूंकि सही दिशा के बोध से ही व्यक्ति जीवन का लक्ष्य प्राप्त करता है। अतः लक्ष्य की सिद्धि में शिक्षण का उपदेश विधि विशेष उपादेय है।

आचार्य –

सत्यम वदं धर्म पर। आदि उपदेश मानव जीवन को सही दिशा के उपदेश है।

स्वाध्याय विधि :–

इस विधि में आवश्यक छात्रों को पाठ्य विषयों को बार–बार अध्ययन करने के लिए प्रेरित करता है। निर्देश देता है निर्देश के अनुसार छात्र पाठ्य वस्तु को पुनः पुनः अभ्यास चिन्तन और मनन करता है। क्योंकि स्वाध्याय ज्ञान प्राप्ति का प्रदान साधन है अतः वैदिक की शिक्षा में प्रमाद आलस्य आदि वर्जित है– स्वाध्यायन्मा प्रमद। स्वाध्याय के द्वारा जिसका चित्त शुद्ध हो गया हो उसी को विद्या की प्राप्ति सम्भव है। यथा

''अहं वृक्षस्य रेरिवोति स्वाध्याचार्यों मन्त्राम्नायाः
स्वाध्यायश्च विद्योत्पत्तये। प्रकरणात्।
विद्यार्थी हीदं प्रकरणम्। न्यायार्थत्व भवगम्यते।
स्वाध्यायेन च विशुद्ध सत्वस्थ विद्योत्पत्तिरवकं लत्यते।''

प्रत्यक्ष विधि :–

प्रत्येक छात्र को आदर्श वैदिक मन्त्रों का स्वयं उच्चारण करके ब्रह्मचारी को उस मन्त्र का अभ्यास कराता था। छात्र गुरुमुख से ही मन्त्रों को सुनकर उनका अभ्यास कर लेते थे शिक्षण की यह विधि प्रत्यक्ष तथा व्यक्तिगत थी। आचर्य और ब्रह्मचारी के मध्य पुस्तक माध्यम नही थी।

वैदिक कालीन शिक्षण प्रक्रिया :–

शिक्षण ग्रहण करने की व्यवस्था मुख्य रूप से गुरुकुलों में थी। किन्तु प्रवेश की व्यवस्था मुख्य रूप से गुरुकुलों में थी। किन्तु प्रवेश की व्यवस्था कठोर थी। बालक को प्रवेश के पूर्व ही कुछ सामान्य ज्ञान की बातों को सिखा दिया जाता था। यह कार्य छात्रों के अभिभावकों के द्वारा ही सम्भव था। इसी को प्राथमिक शिक्षा के नाम से अभिगृहीत किया गया था।

विद्याध्ययन का प्रारम्भ पाँच वर्ष की आयु के बाद शुभ मुहूर्त में विद्यादात्री सरस्वती और मांगलिक देवता गणेश की पूजा के साथ प्रारम्भ किया जाता था। इस प्रक्रिया को विद्यारम्भ संस्कार भी कहा जाता है। इन गुरुकुलों के अतिरिक्त शिक्षा ग्रहण करने की व्यवस्था परिषदों और सम्मेलनों, सेमिनारों में भी दी जाती थी। सामान्यतः गुरूकुलों में शिक्षा ग्रहण करने के लिए प्रवेशक की अवधि 12 वर्ष थी। गुरुकुलों में छात्रों के प्रवेश की आयु के विषय में भिन्न–भिन्न मत मिलते है।

मनु के अनुसार– ब्राह्मण क्षत्रिय एवं वैश्य छात्रों की आयु क्रमशः 8,11,12 वर्ष निर्धारित किया है। याज्ञवल्वय मतानुसार – क्रमशः 5, 8, 12 वर्ष की होनी चाहिए। सामान्यतः द्विज बालकों को आठ से लेकर 12 वर्ष तक आयु के मध्य गुरूकुलों में प्रवेश दिया जाता था। गुरुकुलों में शिक्षा प्रारम्भ करने की एक विशेष विधि थी द्विज बालक उपनयन संस्कार के बाद शिक्षा ग्रहण करने के अधिकारी होते थे। वही शुद्रों के लिए इसका विधान नही था। उपनयन संस्कार के बाद गुरू शिष्यों को अपने सम्पर्क में रखकर वेद की शिक्षा देता था। उपनीति बालकों को ब्रह्मचारी कहा जाता था। यही से उसका शैक्षिक जीवन प्रारम्भ होता था। उपनिषद् काल में ब्रह्मचारी बालकों को 25 वर्ष की आयु तक रहकर शिक्षा ग्रहण करना पडता था तत्पश्चात् गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता था।

गुरुकुल शिक्षा समाप्त करने के बाद स्नातक का समावर्तन संस्कार होता था। समावर्तन के अवसर पर स्नातकों को जो उपदेश दिया जाता था उसे दीक्षांत समारोह कहा जाता था। समावर्तन कालीन उपदेश में आचार्य का चिर संचित प्रेम और अनुभव निहित रहते थे जिसका मुख्य उद्देश्य आश्रम में स्नातकों को सभ्य, सरल तथा स्वास्थ्य जीवन व्यतीत करें। गुरु द्वारा दिये गये उपदेश में श्रद्धा, विश्वास, प्रेम, भक्ति, वैराग्य लौकिक एवं परालौकिक कल्याण की भावना निहित होती थी।

वैदिककाल की शिक्षा व्यवस्था और प्रशासन :–

भारतीय प्राच्य वैदिक काल में शिक्षा और शिक्षण की व्यवस्था राज्य प्रशासन के अधीन न होकर स्वतन्त्र आचार्य कुलों के अधीन थी। शिक्षा संचालन का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व आचार्य का होता था। राज्य प्रशासन आचार्य कुल की शिक्षण व्यवस्था में किसी प्रकार की बाधा न उत्पन्न हो, इस बात का विशेष ध्यान रखता था। अतएव वह विद्या के सभी घटकों पर प्रखर

नजर रखता था। अतः यहाँ हम वैदिक शिक्षा की शिक्षा व्यवस्था को निम्न घटकों– शिक्षक, शिक्षार्थी, शिक्षा केन्द्र, शिक्षा का विषय, माता–पिता तथा समाज के अन्तर्गत देख सकते हैं।

शिक्षक :–

वैदिक कालीन शिक्षा व्यवस्था में शिक्षक के लिए आचार्य शब्द का प्रयोग मिलता है। वस्तुतः उस समय शिक्षा प्रदान करने का उत्तरदायित्व का निर्वहन ब्राह्मण ही करता था। आचार्य का जीवन शिक्षार्थियों को आदर्श था। वे शान्त स्वभाव के शस्त्र विद्वान होता था जो अपने शिक्ष्य को निष्पक्ष भाव से विद्या ज्ञान दान करता था। आचार्य शिक्षक शिक्षार्थी का मानस पिता माना जाता था। अतः नैतिक दृष्टि से शिष्य के समस्त दोषों के निवारण का उत्तरदायित्व शिक्षक पर था, वह ज्ञान के साथ–साथ शिक्षार्थी के चरित्र निर्माण पर विशेष बल देता था। आचार्य निष्कपट भाव से अपनी सम्पूर्ण विद्या शिष्य को प्रदान करता था, यदि किसी विषय का उसे पूर्ण ज्ञान नहीं रहता था, तो वह उस विषय के ज्ञाता आचार्य के पास अपने शिष्यों को भेजता था आचार्य उसे उस विषय का ज्ञान देता था। आचार्य योग्य शिष्य की प्राप्ति के लिए सदैव सचेष्ट रहता था।

शिक्षार्थी :–

वैदिक काल में शिक्षार्थी का सामान्य नाम ब्रह्मचारी था। ऋग्वेद में दो प्रकार के ब्रह्मचारियों का उल्लेख मिलता है, एक ब्रह्मचारी आचार्य में कुल में निवास करके विद्याध्ययन के पश्चात् गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करता था और दूसरा ब्रह्मचारी आचार्य कुल में ही अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करता है। ऋग्वेद में शिक्षार्थी के लिए – आन्तेवासी और ब्रह्मचारी दोनों शब्दों का प्रयोग मिलता है।

प्रथम प्रकार का शिक्षार्थी शिक्षोपरान्त आचार्य के आदेश से गृहस्थ धर्म स्वीकार करता था और द्वितीय प्रकार का शिक्षार्थी आचार्य कुल में रहकर ही ब्रह्मज्ञान की शिक्षा प्राप्त करता था।

शिक्षार्थी का नित्यकर्म, प्रति दिन अरण्य से समिधा लाना। शिक्षार्थी समित पाणि होकर आचार्य के पास पहुँचता था। अग्निहोत्र के लिए समिधा लाकर अग्नि को अपने भीतर समाहित करता था, ब्रह्मचारी का दूसरा नित्य कर्त्तव्य था भिक्षाटन। भिक्षाटन से शिक्षार्थी के अहं की निवृत्ति होती थी, भिक्षाटन में ब्रह्मचारी सभी से भिक्षा ग्रहण नहीं करता था। वह अधिकतर प्रशंसनीय आचार्य पत्नी या अपनी माता से भिक्षा ग्रहण करता था। सात रात्रि तक समिधा न लाने वाले तथा भिक्षाटन न करने वाले ब्रह्मचारी का पुनः उपनयन संस्कार कराना पड़ता था।

शिक्षा केन्द्र :–

शिक्षा प्रदान करने वाला केन्द्र आश्रम कहलाता था, आश्रम ही गुरुकुल या आचार्य कुल के नाम से जाना जाता था। नगर से दर प्रकृति की सुरम्य गोद में अरण्य स्थित था, आश्रम में प्रवेश के समय शिष्यों का उपनयन संस्कार होता था, सामान्यतः शिष्य गुरुकुल में रहता था। आश्रम शिक्षा के दो स्तर थे, प्रथम स्तर में बहुत से शिष्य एक साथ आचार्य के साथ बैठकर अध्ययन करते थे। इस स्तर में बौद्धिक मन्त्रों के सस्वर उच्चारण एवं अभ्यास की शिक्षा दी जाती थी। इसका संकेत कठोपनिषद् के द्वितीय अध्याय में स्पष्ट मिलता है–

ऋग्वेद ''शाक्तश्यैव वदति शिक्षभाण''

यह कथन इसी प्रकार की शिक्षा पद्धति का द्योतक है, प्रथम स्तर के बाद आचार्य शिष्यों की योग्यता का परीक्षण करता था और जिसकी बुद्धि मन्त्रों के अर्थग्रहण में समर्थ नहीं होती थी, उसका प्रवेश शिक्षा के द्वितीय स्तर में नहीं होता था।

वैदिक काल में आश्रम शिक्षा का स्वरूप मात्र सैद्धान्तिक ही नहीं, अपितु व्यावहारिक भी था। आश्रम में आचार्य के साथ रहकर शिष्य विद्याध्ययन के साथ आचार्य के प्रशस्त चारित्रिक गुणों का आत्मसात करता था, आचार्य के आदर्शों को प्राप्त करना ही शिष्य का मुख्य उद्देश्य था। आश्रम में रहने वाले शिष्य की व्यावाहरिक शिक्षा आचार्य फुल के घर की देखभाल एवं पशुपालन में होती थी। यहीं पर वह आत्मनिर्भरता परिश्रम का महत्व श्रेष्ठजनों के प्रति आदर भाव तथा सहपाठियों के साथ मातृत्व भाव की व्यावहारिक शिक्षा ग्रहण करता था। आश्रम शिक्षा की समाप्ति के वाद आचार्य द्वारा उपदिष्ट शिष्य की सांस्कृतिक चेतना प्रबुद्ध होती थी, जो शिक्षा का महान उद्देश्य था।

वैदिक काल में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए परिषदों की भी व्यवस्था थी, ये परिषदें उन जिज्ञासुओं के लिए होती थी, जो छात्र जीवन के बाद भी सत्य और ज्ञान की खोज करना चाहते थे। ऋग्वेद में ऐसी संस्थाओं का उल्लेख ''विदथ'' के नाम से हुआ है। परिषदों में शिक्षा की शास्त्रार्थ प्रणाली थी। इन परिषदों में लब्ध–प्रतिष्ठ विद्वान भाग लेकर परस्पर अध्यात्म तत्व पर विचार–विमर्श करते थे। इन परिषदों में किसी को संकोच नहीं होता था, कोई आचार्य किसी प्रश्न का उत्तर देने में असमर्थ होने पर ऐसी ही परिषदों में शिष्य को भेज देता था, वहाँ जाकर वह अपनी शंकाओं का निवारण करता था।

वैदिक काल में शिक्षा का प्रचार–प्रसार करने के लिए एक ऐसी संस्था भी होती थी, जिसे सम्मेलन कहा जा सकता है। यह सम्मेलन राजाओं द्वारा आयोजित होती थी, जिसमें समय–समय पर देश भर के विद्वान बुलाये जाते थे। शास्त्रार्थ में विजयी विद्वान को पुरस्कृत किया जाता था। ऋग्वेद में सम्मेलन के लिए ''वाजिन'' शब्द का प्रयोग मिलता है। वैदिक काल में शिक्षा देने का कार्य माता–पिता के द्वारा भी किया जाता था, यह कोई आवश्यक नहीं था कि शिक्षार्थी अन्य गुरुओं के पास जाकर ही विद्या अध्ययन करें। आश्रम में पिता के साथ रहकर भी शिक्षा प्राप्त करता था। प्रारम्भिक शिक्षा के साथ ही पिता उच्च शिक्षा भी प्रदान करता था। तैत्तिरीयोपनिषद् की भृगुवल्ली में भृगु का अपने पिता वरुण से ब्रह्मज्ञान की शिक्षा प्राप्त करने का संकेत मिलता है। वही कठोपनिषद में नचिकेता को भी अपने पिता उद्दालक से ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति का मार्ग पिता से ही मिलता है।

वैदिककाल में शिक्षा की समुन्नत स्थिति का कारण तात्कालिक समाज का शिक्षा के प्रति उदात्त भावना थी। समाज में आचार्य और ब्रह्मचारी दोनों के समुचित सम्मान प्राप्त था, दोनों पूज्यनीय थे। ब्रह्मचारी भिक्षा के लिए जिस गृहस्थ के पास जाकर मांगता था, वह अपने को धन्य मानता था, समाज में आचार्य और ब्रह्मचारी का सम्मान राजा से कम नहीं था। राजा भी उनको प्रणाम करता था।

गुरु–शिष्य सम्बन्ध :–

वैदिक युग में अपनीत बालकों की शिक्षा का उत्तरदायित्व लेकर आचार्य उन्हें योग्य और उपयोगी नागरिक बनाने का हर सम्भव प्रयास करता था, अतः समाज में उसका समाहित होना

स्वाभाविक था। आचार्य शिष्य को अज्ञान के अन्धकार से निकाल कर ज्ञान के प्रकाश में लाता था। अतः गुरु के प्रति कृतज्ञ होना और अधिकाधिक सम्मान करना शिष्य का कर्त्तव्य था। गुरु माता–पिता से भी अधिक आदर का पात्र था, क्योंकि वह शिष्य को बौद्धिक एवं आध्यात्मिक उन्नति प्रदान करता था। प्राचीन काल से ही आचार्य शिष्य का मानस पिता माना गया है–

"आचार्य उपनयमानों ब्रह्तचारिणम् कृणुते गर्भयन्तुः।"

अध्यापन के अतिरिक्त शिष्य के प्रति आचार्य के अन्य भी कर्त्तव्य थे, जिनमें शिष्य की चारित्रिक विकास मुख्य था, छात्र की विपन्नावस्था में पिता की भाँति उसकी चिकित्सा और शुश्रुषा का उत्तरदायित्व अध्यापक ही वहन करता था। शिक्षोपरान्त समवर्तनोत्सव के अवसर शिष्य के लिए आचार्य द्वारा प्रदत्त उपदेशों के चारित्रिक विकास में मुख्य सहायक तत्त्व था।

राजा माता–पिता तथा देवता की भाँति गुरु के प्रति आदर भाव रखना छात्र का प्रमुख कर्त्तव्य था। वह गुरु से विद्या प्राप्ति के साथ ही शिष्टाचार के नियमों के अनुकूल आचरण भी शिक्षा प्राप्त करता था। गुरुकुल में आचार्य की सेवा करना शिष्य का प्रथम कर्त्तव्य था। गुरु सेवा की एक सीमा निर्धारित थी, शिष्यों को ऐसा कोई कार्य नहीं दिया जाता था, जिससे उनके अध्ययन में बाधा न पहुँचे।

वैदिक काल में छात्र और अध्यापक का सम्बन्ध किसी संस्था के माध्यम से नहीं, अपितु सीधे उन्हीं के बीच था। छात्र अध्ययन के निमित्त लब्ध प्रसिद्ध आचार्य के आश्रम में जाता था। छात्र गुरु के आश्रम में उनके अभिभावकत्व में शिक्षा ग्रहण करता था तथा छात्र को आश्रम के एक सदस्य के रूप में मान्यता प्राप्त थी। आवश्यकता के समय छात्र आचार्य की गृहस्थी के उपेक्षित कार्यों का भी सम्पादन कर लिया करता था, इस प्रकार गुरु और शिष्य के मध्य बड़ा ही घनिष्ठ और स्नेहपूर्ण सम्बन्ध था। वैदिक शिक्षा स्वस्थ आदर्श आचार्य और शिष्य के सामंजय पूर्ण सम्बन्ध पर आधारित था। दोनों प्रतिदिन पाठारम्य के पूर्व परमात्मा से प्रार्थना करता था कि वह उन दोनों की एक साथ रक्षा करें। दोनों को ज्ञान का संभागी बनावें। दोनों एक साथ विद्या प्रदान एवं ग्रहण करें। दोनों के अधीन विद्या तेजस्वी हो तथा वे परस्पर द्वेष न करें।

सहनाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्ये करवावहै।
तजस्विनावधीत मसतु मा विद्धिषा वहै।।

शिष्य परमात्मा से यही प्रार्थना करता है कि वह तथा उसके आचार्य वक्ता की रक्षा करें।

तन्मायवतु तद् वक्तारभवतु अवतु मामवतु वक्तारम।।

इस प्रकार विद्याध्ययन में गुरु एवं शिष्य दोनों का महत्वपूर्ण स्थान था। इसमें आचार्य को प्रथम स्थान और शिष्य को द्वितीय स्थान प्राप्त था। उन दोनों के स्वाध्याय और प्रवचन से उपनिषद्कालीन शिक्षा का प्रचार–प्रसार होता था।

निष्कर्ष–

वैदिक कालीन शिक्षा के अन्तर्गत प्रथम उद्देश्य के अर्न्तगत व्यक्ति के सम्पूर्ण आध्यात्मिक जीवन के विकास के साथ–साथ ब्रह्मतत्व के ज्ञान की प्राप्ति सर्वोत्कृष्ट हैं तथा गौण उद्देश्य के अर्न्तगत मानव के सामाजिक व्यवहारिक तथा नैतिक जीवन क विकास के ज्ञानार्जन की बात कही गयी है। अतएव इन विविध उद्देश्यों के परिप्रेक्ष्य में वैदिक की शिक्षा मे

जिन–जिन उद्देश्यों का निर्धारण किया गया हे उसमें आध्यात्मिक, व्यावहारिक, सामाजिक, बौद्धिक तथ वैयक्तिक सांस्कृतिक विकास मुख्यतः है। यद्यपि वैदिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य ब्रह्मतत्त्व की प्राप्ति है। फिर भी उस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास अपेक्षित है। अतः अध्ययन की समयावधि में विधर्थियों के उपर्युक्त विकास पर विशेष बल दिया गया है।

आज के समाज में जो कोलाहल, भष्टाचार, लूट, अनाचार व्याप्त है वह मनुष्य की दूषित भावनाओं का परिणाम है। समाज में समता, स्थिरता, शान्ति की भावना विकसित करने के लिए मनुष्य को अपनी दूषित भावना का परित्याग करना होगा और यह कार्य शिक्षा के द्वारा ही किया जा सकता है। अतः वैदिक शिक्षा के विभिन्न अंगों को वर्तमान शिक्षा साथ समन्वय स्थापित करके उन्हें स्वरकारना अत्यन्त आवश्यक है।

संदर्भ ग्रन्थ सूचीः–

- अग्रवाल, अल्पना (1987). जैन ज्ञान–मीमांसा एवं समकालीन विचार, पी0एच–डी0 शोध, इलाहाबादः इलाहाबाद विश्वविद्यालय।
- ओड, डॉ0 लक्ष्मीकान्त (1973), *शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि,* जयपुरः राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
- एस0 एविनेरी, (1968), *द सोशल एण्ड पॉलीटकल थॉट्स ऑफ कार्ल मार्क्स,* कैम्ब्रिजः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
- एमील बर्न्स (1977), *एन इन्ट्रोडक्शन टू मार्क्सिज्म,* न्यूयार्कः इण्टरनेशनल पब्लिकेशन्स।
- एलेस्टर, जॉन (1986), *एन इन्ट्रोडक्शन टू कार्ल मार्क्स,* कैम्ब्रिजः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी।
- कुमारी, राजेश (2013). जैन एवं बौद्ध धर्म के शैक्षिक विचारों का समीक्षात्मक अध्ययन एवं वर्तमान शिक्षा में उसकी प्रासंगिकता, लघुशोध प्रबन्ध, इलाहाबादः नेहरू ग्राम भारती विश्वविद्यालय।
- कश्यप व धर्म रक्षित (1950), *संयुक्त निकाय,* पटनाः भारतीय पब्लिशर्स।
- किशोर, देवराजनन्द (1999), *भारतीय दर्शन,* लखनऊ : (उ0प्र0) हिन्दी संस्थान।
- कुमार, संजय (2016–18). वैदिक कालीन शिक्षा व्यवस्था तथा आधुनिक मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम की उपादेयता का अध्ययन, लघु शोध प्रबन्ध, राजा हरपाल सिंह पी0जी0 कालेज, सिंगरामऊ, जौनपुर सम्बद्ध वीर बहादुर सिंह पूर्वान्चल विश्वविद्यालय, जौनपुर।
- गोपाल, मदन (2014). भारतीय शिक्षा के सन्दर्भ में पुरातनकालीन शिक्षा एवं आधुनिक शिक्षा का तुलनात्मक अध्ययन, लघु शोध प्रबन्ध, डॉ0 राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद।
- गुप्ता, एस0पी0 (2008), *भारतीय शिक्षा का विकास तथा समस्यायें,* इलाहाबादः शारदा पुस्तक भवन।

सामाजिक सांस्कृतिक क्षेत्रों में ग्रामीण महिलाओं की स्थिति

प्रियान्शू सिंह

शोध छात्रा
समाजशास्त्र विभाग
डा0 राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय (उ0प्र0)

भारत की वर्तमान जनसंख्या 2011 की जनगणना के अनुसार 1, 2, 70, 15, 247 है। विश्व की जनसंख्या का 16.87 प्रतिशत है। इसकी लगभग आधी जनसंख्या (49,57,38,169) महिलाओं की है। ये सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में महिलाओं का उल्लेखनीय योगदान है, फिर भी महिलाएं उपेक्षित हैं विशेषकर ग्रामीण समाज में।

स्वामी विवेकानंद ने कहा था– "जिस प्रकार एक पक्षी एक पंख के सहारे उड़ नहीं सकता है, समाज तब तक उन्नति नहीं कर सकता है। जब तक महिलाओं को सभी गतिविधि में शामिल नहीं किया जाए।"

महिलाओं के विकास का अर्थ महिलाओं के संपूर्ण विकास अर्थात सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक विकास से हैं ग्रामीण समाज एक ऐसी पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था वाला समाज है, जहां महिलाओं को उनके अधिकारों से वंचित किया जाता है महिलाओं की स्थिति सभी युगों में समान नहीं रही है। वैदिक काल में महिलाओं की स्थिति बहुत अच्छी थी। बौधिक क्षेत्र में पुरूषों के बराबर थी। राजनैतिक, सांस्कृतिक जीवन में इनका पूरा हस्तक्षेप था।

मनु ने लिखा है– "महिलाएं देवी की तरह पूजी जाती थी।"

PN Prabhu - जहां तक शिक्षा का सम्बंध है प्राचीन समय में स्त्री पुरुष में कोई भेद नहीं था। ग्रामीण महिलाओं की स्थिति आज भी सोचनीय है। तमाम योजनाओं के बाद भी महिलाओं को पूरा लाभ नहीं मिल रहा मिल पा रहा है पितृसत्तात्मक सोच भारतीय ग्रामीण सोच में प्रभावी रूप से विद्यमान है। यहां नारी को झूठे सम्मान और इज्जत से जोड़कर देखा जाता है।

ग्रामीण समाज एक ऐसी पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था वाला समाज है, जहां महिलाओं को उनके अधिकारों से वंचित किया जाता है। ग्रामीण समाज में 90 प्रतिशत महिलाएं खेती पर निर्भर है। असंगठित क्षेत्र में 98 प्रतिशत महिलाएं हैं।

ग्रामीण महिलाओं के स्वास्थ्य और शिक्षा की स्थिति सोचनीय है। पितृसत्तात्मक सोच भारतीय ग्रामीण समाज में प्रभावी रूप से विद्यमान है। यहां नारी को झूठे सम्मान और इज्जत

से जोड़कर देखा जाता है महिलाओं की भूमिका को पितृसत्ता महत्वपूर्ण नहीं मानती है, अक्सर यह कहते सुना जाता है, 'तुम तो घर पर पड़ी रहती हो' यही मानसिकता महिलाओं को आज तक गरिमा पूर्ण जीवन नहीं दे पाया है।

पंचायती राज व्यवस्था में 50 प्रतिशत महिला आरक्षण का प्रावधान लागू किया गया है। वर्तमान में लगभग 14 लाख जन प्रतिनिधि महिला है। वास्तविकता में पुरुषों ने यह मौका छीन लिया है पंचायतों से चुनकर आई महिला के अधिकारों का उपयोग उनके पति पिता और भाइयों द्वारा किया जाता है उन्हें घर में रखा जाता है।

महिलाओं के विकास का अर्थ महिलाओं के संपूर्ण विकास अर्थात सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक विकास से हैं ग्रामीण समाज एक ऐसी पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था वाला समाज है, जहां महिलाओं को उनके अधिकारों से वंचित किया जाता है महिलाओं की स्थिति सभी युगों में समान नहीं रही है। वैदिक काल में महिलाओं की स्थिति बहुत अच्छी थी। बौधिक क्षेत्र में पुरूषों के बराबर थी। राजनैतिक, सांस्कृतिक जीवन में इनका पूरा हस्तक्षेप था। मनु ने लिखा है– "महिलाएं देवी की तरह पूजी जाती थी।"

भारतीय समाज में हमेशा नारी की स्थिति उसके पिता पुत्र पति परिवार के सदस्यों की स्थिति की तुलना से आंकी जाती है उसकी अपनी कोई विशिष्ट पहचान नहीं होती है। भारतीय समाज में नारी का महत्व पति पूरक होता है। उच्च पद वाले व्यक्ति की पत्नी समाज में जो प्रतिष्ठा प्राप्त करती है वह उच्च शिक्षा प्राप्त नारी नहीं कर पाती है आज भी पुरुषों का एक अस्तित्व है लेकिन स्त्रियों का अस्तित्व पुरुषों पर आधारित है।

आज 21वीं सदी में संसार का अधिक से अधिक सुसंस्कृत राष्ट्र भी यह दावा नहीं कर सकता है। महिलाओं की स्थिति पूरी तरह से संतोषजनक है। ग्रामीण भारत धर्म प्रधान देश है। गांव में ज्यादा लोग धर्म के प्रति आस्था रखते हैं। विशेषकर महिलाएं क्योंकि ग्रामीण लोग प्रकृति पर ज्यादा निर्भर रहते हैं। प्राचीन काल से भारत और प्रकृति पूजा होती है।

मैक्स मूलर ने भी कहा है– धर्म प्रकृति की असीम शक्तियों में निहित है, ग्रामीण महिलाएं रीति–रिवाजों का पालन अच्छे तरीके से करती हैं ग्रामीण, धार्मिक क्रियाकलापो में व्रत और मनौती का रिवाज है। हर वृक्ष का यहां एक अलग महत्व है। वृक्षों को भगवान का प्रतीक माना जाता है। ग्रामीण लोगों में मान्यता है, कि पीपल का वृक्ष शिवजी का प्रतीक है, केले का वृक्ष विष्णु जी का प्रतीक है, उनका विश्वास ही किसी कार्य को सफल होने का उर्जा प्रदान करता है।

समाजशास्त्र में मैलिनोवस्की ने भी कहा है–

धर्म क्रिया का एक ढंग है विश्वासों की व्यवस्था है, समाज शास्त्रीय घटना के साथ व्यक्तिगत अनुभव है।

धर्म जैसे–जैसे प्राचीन होता है रूढ़ि बन जाता है। रूढ़ियों का पालन करना अत्यंत कठिन होता है गांव में लोग अन्धविश्वासी होते हैं टोना–टोटका पर सर्वाधिक विश्वास महिलाएं करती हैं यह स्थिति समाज में अनेक कठिनाइयां उत्पन्न करती हैं गांव में यदि किसी को कोई बीमारी रोग है तो सबसे पहले महिलाएं झाड़–फूंक कर करवाती हैं कभी–कभी अंधविश्वास इतना ज्यादा होता है कि व्यक्ति की जान चली जाती है, इसलिए धार्मिक होना अच्छा है, लेकिन अंधविश्वासी नहीं। ग्रामीण समाज में रीति–रिवाज का पालन परंपरागत तरीके से होता है। ग्रामीण क्षेत्र में पहनावा पारम्परिक होता है। प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन करने पर पता चलता है कि वेदयुग में भी पर्दा प्रथा नहीं था। धार्मिक क्षेत्र में ग्रामीण महिलाओं की स्थिति सम्बंधी विवेचना के चर्चा से और स्पष्ट होगी। वैदिक युग में नारी पावन और पवित्र समझी जाती थी, किंतु मासिक धर्म के समय वह वह अपवित्र एवं अस्पृश्य मानी जाती थी।

अल्टेका के अनुसार– नारी धर्म के मार्ग में बाधक नहीं थी। धार्मिक संस्कारों में उत्सवों में पत्नी की उपस्थिति सहयोग वांछनीय मानी जाति थी, किंतु वेद युग में उन्हें धार्मिक निषेधों में बाँध दिया गया और मुगल काल में मुस्लिम आक्रमणों कुरीतियों से इसकी जड़े गहरी होती गई, जिसका प्रभाव आज भी ग्रामीण समाज की महिलाओं पर दिखता है। सामाजिक जीवन के विकास में धर्म का महत्वपूर्ण योगदान रहा है धर्म की संरचना इस प्रकार की है जैसे–जैसे प्राचीन होती जाती है, इसमें अनेक तरह के रूढ़ियों का समावेश होता है। यह स्थिति व्यक्ति की सामाजिक दशाओं में अनुकूल करने में कठिनाइयां उत्पन्न करता है।

डेविस ने कहा था– जिस प्रकार अनेक औषधियां कभी–कभी हमारे उस लोग को बढ़ा देती हैं, जिसमें से छुटकारा पाने के लिए उनका उपयोग किया जाता था, उसी प्रकार धर्म कभी–कभी लाभ देने के स्थान पर मानसिक रोगों और सामाजिक समस्याओं में वृद्धि करता है।

ग्रामीण महिलाओं का मनोरंजन प्रायः इकट्ठा होकर तरह–तरह की बातों से होता है। इकट्ठे चौपाल करना, तीज त्यौहार मनाना, ग्रामीण संस्कृति है। गांव में रामलीला–रासलीला आदि के माध्यम से भगवान का चरित्र चित्रण किया जाता है। ग्रामीण लोग इसमें भी मनोरंजन करते हैं ग्रामीण मेले का दृश्य तो अपने आप में अनूठा होता है। भारतीय संस्कृति का मूल रूप तो इन्हीं मेले में होता है, जो गांव के जीवन में पूर्ण रूप से देखा जा सकता है। अंधविश्वास और धर्मान्धता के चलते गांव में परिवर्तन लाना कठिन है।

अत्यंत आवश्यक है कि अपनी सांस्कृतिक विरासत को बनाए रखने के साथ ही हम गांवों के विकास हेतु नई योजनाएं लाये और जरूरी यह भी है कि योजनाओं के प्रति महिलाओं को जागरूक करें और ज्यादा से ज्यादा उन्हें शिक्षित बनाने का प्रयास करें, उन्हें परिवर्तन के लिए प्रेरित करें। भारत में नारी साक्षरता प्रतिशत 65.46 है, जाहिर है कि यह राष्ट्रीय औसत है और गांव में शिक्षा की हालत और भी खराब है। महिलाओं के साथ पुरुष भी अशिक्षित है।

ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सम्बंधी समस्या ज्यादा है प्राइमरी हेल्थ सेंटर हर जगह है, लेकिन उनमें नाम मात्र की दवाइयां दी जाती है, इसलिए किसी बड़ी बीमारी के होने पर शहरों की ओर रूख करना होता है, जो ग्रामीण महिलाओं के लिए कठिन होता है, उसमें भी उनको पुरुषों पर निर्भर रहना पड़ता है। गांव में मनोरंजन आज भी समूह में होता है।

शशि जैन ने कहा है– ग्रामीण जीवन में प्रवृत्ति व्यक्तिवादी ना होकर समूहवादी होता है इसका एक प्रमुख कारण है। भौतिक संसाधनों का अभाव है, मौसम के अनुसार गांव में धार्मिक उत्सव होते हैं जैसे सावन में कजरी महोत्सव फागुन में होली समारोह आदि। फसल बोने के समय पूजा पाठ होता है। प्रत्येक फसल की कटाई का पहला अन्य भगवान को समर्पित किया जाता है। कहने का तात्पर्य है ग्रामीण लोग आज भी प्रथाओं–परंपराओं का रीति–रिवाजों का पालन करते हैं।

हिंदुस्तान टाइम्स रिपोर्ट के अनुसार– ग्रामीण महिलाओं का होगा सांस्कृतिक सम्वर्धन– मजदूर वर्ग की ग्रामीण महिलाओं की पेट की आग में आज कला की भूख भस्म नहीं होगी उनके लिए 2 जून की रोटी का तो एक इंतजाम होगा ही साथ ही उनको नृत्य गीत और संगीत की प्रतिभा भी निखर जाएगी। गरीबों के चलते अब उनकी कलात्मक क्षमता को मरने नहीं दिया जाएगा। कमजोर वर्ग के बीच से ऐसी महिलाओं को चिन्हित किया जाएगा, जिनमें गीत, संगीत, नृत्य व अभिनय की क्षमता है इन महिलाओं की पहचान कर उन्हें प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की जाएगी। राशि का आवंटन ना होने से इस योजना की शुरुआत न हो सकी।

भारत में कोई भी समाज कितना उन्नत हो जाए विशेषकर ग्रामीण समाज वो अपने परम्परा संस्कृति से जुड़ा होता है। जीवन का तुलनात्मक अध्ययन करेंगे तो हम देखेंगे कि कई अवसरों पर ग्रामीण महिलाओं के जीवन में कत्ल हुआ है। पहले की महिला कन्या पैदा होने पर दुखी होती थी, लेकिन आज की महिलाएं कन्या को शुभ लक्ष्मी मान रहीं है उनके पैदा होने पर खुशियां मनाती हैं। ग्रामीण महिलाएं भी धीरे–धीरे धार्मिक आडंबर को त्याग रही हैं। धार्मिक क्षेत्र में भी स्त्रियों के अधिकार और कर्तव्यों का परिवर्तन हुआ है। जहां उन्हें अपवित्र समझ कर अनेक कर्मकांडों को संपादित करने से रोका जाता था। वहीं आज विभिन्न कार्यक्रम धार्मिक कर्मकाण्डो को सम्पन्न कर रही है। महिलाएं जबरन धर्म परिवर्तन को रोक रही है। हम यह तो नहीं कह सकते कि महिलाओं की स्थिति में 100 प्रतिशत बदलाव आया है, पर इतना जरूर कह सकते हैं कि महिलाएं धीरे–धीरे जागरूक हो रही हैं।

बीबीसी के एक सर्वे के अनुसार – भारत में महिलाओं का दर्जा दौलत, उनकी सामाजिक स्थिति पर निर्भर करता है। सर्वेक्षण कहता है, भारत में पहले एक महिला प्रधानमंत्री रह चुकी है एक महिला राष्ट्रपति रह चुकी है, मगर यह तथ्य गांव की स्त्रियों से कहीं भी मेल नहीं खाती हैं यहां अभी भी उनको हेय दृष्टि से देखा जाता है।

गिरिजा खन्ना ने मध्ययुग और ब्रिटिश काल को अभिव्यक्त किया है 11वीं शताब्दी में मुसलमानों के आगमन से स्त्रियों के सामाजिक अधिकार सीमित कर दिए गए 18वीं शताब्दी से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति तक ब्रिटिश काल में स्त्रियों की दशा काफी दयनीय थी। वे अपने वैदिक काल में प्राप्त अधिकारों को भूल गई। धर्मशास्त्र में उनके ऊपर धार्मिक प्रतिबंध लागू किए गए, जो मध्ययुग में और बढ़ता गया, पर प्रतिबंध पर्दा प्रथा के कारण बढ़ता गया। अन्धविश्वास और कुरीतियों ने महिलाओं को जकड़ने लगी मनुस्मृति में जो धार्मिक बन्धन लागू किए गए, उनको अमान्य बताया गया।

मध्य युग में शिक्षा पर प्रतिबंध पर्दा प्रथा, बाल विवाह, विधवा पुनर्विवाह, पर निषेध सती प्रथा आदि के कारण पुरुषों पर आश्रितता बढ़ी। बहुपत्नी विवाह से पुरुषों का स्थान ऊंचा हुआ। पुरूषों की स्थिति रक्षक बढ़कर स्वामी की हो गई स्त्रियां दासी के रूप में संबोधित की जाने लगी। घर की चारदीवारी में बंद रहने के कारण परम्पराओं और कुरीतियों अन्धविश्वासों के पालन हेतु जहां एक तरफ बाध्य हुई वहीं उनमें परस्पर ईष्या द्वेष की भावना का विकास हुआ। बाल विकास के फलस्वरूप पति सास–ससुर उस पर सहज ही अधिकार जमाने लगे।

ब्रिटिश शासकों महिलाओं की स्थिति पर ध्यान नही दिये गये। स्त्री शिक्षा के संदर्भ में कोई प्रयास नहीं किए गए। समाज सुधार के प्रयासों के फलस्वरूप कुछ महिला सुधार सम्बंधी बिल पास किए। लंबे समय में पराधीनता से उत्पन्न सांस्कृति अवरोध के कारण इस काल में भी स्त्रियों की सामाजिक सांस्कृतिक उत्थान में कोई कार्य न हो सका।

1982 में स्त्रियों की स्वतंत्रता पर आधारित सर्वेक्षण रिपोर्ट भारतीय नारी कितनी स्वतंत्र कितनी परतंत्र– पर एक लेख में लिखा गया है कि, "समस्त प्रयत्नों के बावजूद भारतीय नारी हीनता का शिकार है, नारी को कुंठा का जीवन जीने के लिए विवश होना पड़ रहा है। स्वतंत्रता और मुक्ति का मूल्य क्या है इसका उत्तर आपको हमको देना है।"

ग्रामीण महिलाओं का साक्षरता प्रतिशत भी पुरूषों की अपेक्षा कम है। स्त्री पुरुष के औसत आय में काफी अंतराल है स्त्री की औसत आयु काफी कम है पुरुषों की अपेक्षा अधिक मर रही हैं।

परम्परागत भारतीय नारी की समस्त गतिविधियां घर तक ही सीमित थी। धीरे–धीरे उन्हें अधिकार और स्वतंत्रता दी जाने लगी। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समितियां भी इनके शोषण को रोकने के लिए सुरक्षा कानून बनाएं इनमें अखिल भारतीय महिला परिषद, अखिल भारतीय गृहणी संघ आदि हैं, लेकिन इन सब संस्थाओं योजनाओं का लाभ भी 100 में से 10 प्रतिशत महिलाएं ही ले पाती हैं, कारण शिक्षा और जागरूकता का अभाव है। आधुनिक वेशभूषा पहनावा को परिवर्तन का आधार नहीं माना जा सकता है असली परिवर्तन तो स्वयं महिला की सोच समाज का उनके प्रति दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। पहले ग्रामीण महिलाएं चूल्हे पर खाना

बनाती थी अब गांव में इलेक्ट्रिक चुल्हा गैस इन सब की सुविधा उपलब्ध है, जो साक्षर और सम्भ्रांत हैं उन्हीं के लिए यह सब सुविधा है। गांव में अभी भी गरीबी है, महिलाएं भी मजदूरी करती हैं, मजदूरी करने वाली महिलाएं कहां से भौतिक संसाधन जुटा सकती हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए कई प्रयास किए गए हैं इसका ठोस परिणाम भारत के संविधान 50 में है, जिसमें महिला पुरूष के समान अधिकारों की गारंटी दी गई है। महिलाओं के अधिकारों के सम्बंध में संवैधानिक गारंटी और विशिष्ट विधान के बावजूद वैज्ञानिक अधिकारों के प्रति अज्ञानता सुदृढ़ साधारण अस्तित्व का अभाव ग्रामीण क्षेत्रों में उनके अधिकारों की रक्षा करने वाले महिला समूह की अनुपस्थिति के कारण महिलाएं लगातार उपेक्षा सहन कर रही हैं। ग्रामीण महिलाएं व्यवसाय में बहुत पीछे हैं। महिलाओं को हमें व्यवसाय में भी आगे लाना होगा, जब वे आर्थिक रूप से सशक्त होंगी तभी सामाजिक विकास होगा शिक्षा भावी पीढ़ी की निर्माता होती है ग्रामीण महिलाओं के पीछे होने का बड़ा कारण है अशिक्षा। शिक्षा महिलाओं की आर्थिक स्थिति को भी अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है। महिलाओं को शिक्षित करके उनकी आर्थिक, सामाजिक स्थिति को सुदृढ़ किया जा सकता है

सेंसस आफ इंडिया सर्वे के अनुसार– भारत में प्रत्येक तीन निरक्षर में 2 महिलाएं हैं।

Directory of Major Scheme and programme for empowerment of women के अनुसार–

महिलाओं के आर्थिक साधारण विकास के लिए 100 से अधिक योजना चलाई जा रही है। गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वालों के लिए सरकार ने कई योजनाएं चलाई है, जैसे एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम, ट्रायसेम जवाहर रोजगार, परंतु गरीब महिलाओं के जीवन में यह अपेक्षित प्रभाव नहीं डाल पाई आज भी महिलाएं पुरुषों से असमर्थ है।

ग्रामीण महिलाएं कृषि क्षेत्र में भी अपनी भूमिका निभाती हैं। घर परिवार की जिम्मेदारी देखती हैं। कार्य क्षेत्र में भी पुरुषों का सहयोग करती हैं, भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था में महिलाओं की सामाजिक स्थिति सांस्कृतिक स्थिति तय करती है। गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वालों के लिए सरकार ने कई योजनाएं चलाई हैं, जैसे– एकीकृत ग्रामीण विकास जवाहर योजना प्रारंभ हुई थी। गरीब महिलाओं के सम्बंध में अपेक्षित प्रभाव नहीं डाल पाई, क्योंकि महिलाएं पुरुषों से असमर्थ थी। ये कार्यक्रम महिलाओं की स्थिति को प्रभावित नहीं कर पाए ग्रामीण महिला की विकास प्रक्रिया से अभी दूर है। ध्यान देने वाली बात है कि परिवार की संपत्ति पर पुरुषों का मालिकाना हक महिलाओं के रोजगार में बाधा डालता है। ऋण के संबंध में महिलाएं ऋण की सुविधा का लाभ नहीं उठा पाती हैं। गांव में महिलाओं के सामने आज भी प्रमुख समस्या है। अत्याधुनिक उपकरण ना होना महिलाओं की पेयजल की समस्या है, पेयजल

प्राप्त करने का अभी पुराना साधन है। आरो फिल्टर तो दूर साधारण फिल्टर का भी अभाव है, इसलिए महिलाओं को यकृत सम्बंधी बीमारी होती है। पथरी की बीमारी आमतौर पर पाई जाती है।

महिलाओं की दशा खराब होने का प्रमुख कारण है, रोजगार का अभाव। पुरूषों का एकमात्र रोजगार है कृषि। इससे वे अपने परिवार को आधुनिक सुविधाएं देने में असमर्थ है, इसलिए महिलाओं का जीवन जैसा था वैसा ही है। ग्रामीण क्षेत्रों में कायाकल्प के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी की आवश्यकता बहुत पहले महसूस किया जाने लगा। महिलाओं के समस्याओं के समाधान हेतु विज्ञान तकनीकी के अनुप्रयोग से जोड़ती हैं इसके माध्यम से देश के ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं के लिए रोजगार के अवसर सृजित होने लगे हैं। खेती के द्वारा कठिन श्रम से थकान हो जाती थी। DST और कृषि मंत्रालय ने साथ मिलकर ऐसी तकनीक का विकास किया, जिनके उपयोग से खेती से सम्बद्व थकान में कमी आई है। गांव के स्वास्थ्य और पोषण को सुनिश्चित करने के लिए तकनीकी हस्तक्षेप और रणनीतियों का विकास किया गया हैं।

पंचवर्षीय योजनाओं में महिलाओं के विकास सम्बंधी जो कार्यक्रम लागू होते हैं उनका लाभ केवल कागज तक सीमित हो गया है हम देखते हैं कि साढ़े तीन दशक बीत जाने के बाद हमारी पंचवर्षीय योजनाएं के क्रियान्वयन के लिए प्रशासन पर निर्भर है। सिर्फ सभी योजनाएं कागज पर ही सीमित रह गई हैं। अगर ऐसी ही स्थिति रही तो ग्रामीण महिला जागरूकता के अभाव में सरकार द्वारा चलाई गई योजना का लाभ नहीं उठा पायेंगी, यदि ग्रामीण महिलाओं की सामाजिक आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करना है तो सबसे पहले उनको जागरूक करना होगा। हर योजना का प्रचार प्रसार करना होगा, जिससे वह योजना की वास्तविकता जान सके और कैसे लाभ दिया जाए इसके लिए प्रयासरत रहें।

महिलाओं की सामाजिक स्थिति को लेकर बहुत देशों ने सर्वेक्षण किया और कहा गया कि– इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता कि भारत की तरह विश्व में हर जगह स्त्री–पुरुष का असमानता बराबर है। सामाजिक स्तर पर विवाह, धर्म, प्रथा, परम्परा, रीति–रिवाज आदि के प्रति उसके दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ है। घर के बाहर भी महिलाएं निकलकर जिम्मेदारी निर्वहन कर रही हैं, लेकिन गांव में उसका प्रतिशत कम है, लेकिन पूर्व की स्थिति से वर्तमान स्थिति में परिवर्तन हुआ है। हमारी राय में सभी स्तरों पर महिलाओं को विकास की प्रक्रिया में सम्मिलित होने के अवसर दिया जाए। घर के कामकाज के अलावा सभी पुरुष मुद्दे पर उनकी राय ली जाए। समाज स्त्रियों को आर्थिक रूप से मजबूत बनाने में अपना सहयोग दें। स्त्रियों को भी सम्पत्ति का अधिकार मिलना चाहिए, ताकि वह कल्याणकारी योजना का लाभ ले सके। ग्रामीण महिलाओं की स्थिति दयनीय होने के बाद भी जनतांत्रिक माहौल व महिलाओं की भागीदारी के चलते स्थितियों में बदलाव आना प्रारंभ हो गया है। कुछ समय से देश में कुछ

महिलाओं ने अभूतपूर्व जागृति का परिचय दिया है। मणिपुर, आंध्र प्रदेश, व हरियाणा में शराब बन्दी लागू करने के पीछे ग्रामीण महिलाओं के आंदोलन का ही एकमात्र भूमिका रही है। मणिपुर में ग्रामीण महिलाओं ने आंदोलन चलाया और शराब पीने वाले पुरुषों का सामाजिक बहिष्कार किया। शराब पीने वाले पुरुषों की पिटाई की। ग्रामीण महिलाओं के लिए पुरुषों का शराब पीना भी प्रमुख समस्या है। अपने जीवन यापन के लिए पुरुषों पर निर्भर रहती हैं पुरुष अपनी आय का बड़ा प्रतिशत शराब पर खर्च कर देता है, जिससे इनको आर्थिक परेशानी का सामना करना पड़ता है, इससे इनका सामाजिक स्तर भी घटता है लोग हेय दृष्टि से देखते हैं। बच्चों पर गलत प्रभाव पड़ता है, बच्चों का पालन पोषण सही तरीके से नहीं हो पाती है। अच्छी शिक्षा देने में असफल होती हैं। कृषि के कार्यों में हाथ तो बटाती हैं, लेकिन उस पर भी सामाजिक नियमों के अनुसार पुरुषों का अधिपत्य होता है। बिना पुरुष के सहायता से महिलाएं कोई कार्य नहीं कर पाती हैं कोई निर्णय नही ले पाती हैं हमारी राय में महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए आर्थिक सहायता दी जानी चाहिए।

किसी भी समाज की स्थिति उस समाज के स्त्रियों की दशा देखकर ज्ञात की जा सकती है। महिलाओं की स्थिति में समय–समय पर परिवर्तन होता आया है। समाज के निर्माण में महिला का उतना ही भूमिका है, जितना किसी शरीर को जीवित रखने के लिए भोजन, वायु, व जल है। जिस समाज की महिला उपेक्षित और तिरस्कृत होती हैं, वह समाज कभी प्रगति नहीं कर सकता है। महिलाओं की शिक्षा पर बल देते हुए विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948) के यह ऐतिहासिक सब ध्यान देने योग्य है–

"शिक्षित स्त्रियों के बिना शिक्षित पुरुष हो ही नहीं सकता यदि पुरुषों और स्त्रियों में से केवल किसी एक के लिए सामान्य शिक्षा कर प्रदान करना हो तो यह अवसर स्त्रियों को दिया जाना चाहिए क्योंकि यह शिक्षा स्वयं में अगली पीढ़ी तक पहुंच जाएगा"

1963 में वनस्थली विद्यापीठ में भाषण देते हुए पंडित जवाहरलाल नेहरू ने इसी तथ्य को दोहराया– लड़के की शिक्षा एक व्यक्ति की होती है। लड़की की शिक्षा संपूर्ण परिवार की होती है। स्त्री शिक्षा आवश्यक होते हुए भी अभी तक उपेक्षित है, इसलिए महिलाओं के सामने जटिल समस्या है। शैक्षिक, आर्थिक, राजनीतिक सभी दृष्टिकोण से महिलाएं अभी पीछे हैं। ग्रामीण महिलाएं जो शिक्षित नहीं है, उन्हें जागरूक करने की आवश्यकता है। जब तक महिलाओं को प्रत्येक योजना अधिकारों की जानकारी नहीं होगी, तब तक महिलाओं का विकास असंभव है। भारतीय महिलाओं का शिक्षा का प्रतिशत कम है, यदि महिलाएं पूर्ण रूप से शिक्षित हो तो समाज का सर्वाधिक विकास हो सकता है। महिलाओं की स्थिति के लिए मूल रूप से लड़के–लड़कियों को संस्कार में मिलने वाली सोच जिम्मेदार है। पारिवारिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, व सामाजिक परम्परा मूल्य रीति रिवाज भी इस दृष्टि कोण की पूर्ति करते हैं।

महिलाओं के लिए राष्ट्रीय स्तर पर विधिक प्रावधान–

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् नवीन भारतीय नेतृत्व में भी महिलाओं के पिछड़ेपन को दूर करने और विकास में उनके योगदान को सुनिश्चित करने के लिए विविध स्तरों पर प्रयास प्रारंभ किया। जैसे कि संविधान में 73वें 74वें संशोधन द्वारा पंचायती राज संस्थाओं तथा स्थानीय नगर निकायों के एक तिहाई पद महिलाओं के लिए आरक्षित कर दिया जाना। भारतीय संघ ने महिलाओं के लिए अनेक संवैधानिक प्रयास किया है। महिलाओं के विभिन्न संवैधानिक अधिकारों को ध्यान में रखकर उनसे सम्बंधित कानून बनाए, ताकि उन्हें उत्पीड़न से बचाकर पूरा मान मिल सके। भारत में महिलाओं के विकास कल्याण और सशक्तिकरण के लिए महत्वपूर्ण कार्यक्रम और योजनाएं चलाई जा रही हैं।

जैसे द्वारका योजना 1982, न्यू मॉडल चरखा योजना, 1987 महिला प्रशिक्षण योजना 1989, मातृ और शिशु स्वास्थ्य कार्यक्रम 1992, किशोरी बालिका 1992, राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना 1992, ग्रामीण महिला विकास परियोजना 1996, स्वास्थ्य सखी योजना 1997, बालिका समृद्धि योजना 1997, आदि पंचवर्षीय योजना में भी महिलाओं का विशेष ध्यान रखा गया। इन योजनाओं का उद्देश्य महिलाओं का सर्वाधिक विकास करना था।

भारत के कृषि क्षेत्र में कुल श्रम 60 से 80 प्रतिशत हिस्सेदारी ग्रामीण महिलाओं की है। कुल श्रम का योगदान 43 प्रतिशत है। विकसित देशों में आंकड़ा 70 से 80 प्रतिशत है।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद और डी0आर0डब्लू0ए0 के 9 राज्यों में किए गए शोध से पता चला है कि प्रमुख फसलों की पैदावार में महिलाओं की भागीदारी 75 प्रतिशत रही है, बागवानी में 79 प्रतिशत, फसल कटाई के बाद 4 प्रतिशत है, मछली उत्पादन में 95 प्रतिशत तक है। कहा जा सकता है कि विकासशील देशों में खेती का तकरीबन आधा काम महिलाओं द्वारा किया जाता है। खाद्य और कृषि संगठन के एक अध्ययन के मुताबिक अगर महिलाओं को पुरुषों के बराबर परिसम्पतियां कच्चा माल और सेवा जैसे संसाधन मिले तो समस्त विकासशील देशों में कृषि उत्पादन ढाई से 4 फीसदी बढ़ता है। पुरुषों के रोजगार पलायन को लेकर ग्रामीण महिलाओं की कृषि कार्य में भागीदारी बढ़ी है। मवेशी पालन चारे संग्रह में भी ग्रामीण महिलाओं की भूमिका बड़ी है। ग्रामीण महिलाएं खेत खलिहान में काम करके देश के आर्थिक विकास में बहुमूल्य योगदान दे रही हैं। हमें ऐसे महिलाओं को विकास की धारा से जोड़ना है, जो घोर शिक्षा रूढ़ियों से ग्रस्त है। यदि भारतीय महिला वर्ग की इस आबादी का विकास नहीं होता है, तो देश और समाज का विकास नहीं हो सकता है। भारत का सामाजिक सांस्कृतिक ढांचा ही ऐसा है, बहुत कोशिशों के बावजूद भी पर्याप्त बदलाव नहीं आया है। उनके श्रम को सहयोग मात्र कहा जाता है। किसी कार्य करने वाली महिलाएं भी अपने श्रम को महत्व नहीं देती हैं। पूछने पर बताती हैं कि हम घरेलू महिला हैं।

योजनाओं के कार्यान्वयन में अधिक त्रुटियां रही हैं, जिससे समूचा प्रणाली राजनीति से ग्रसित रहता है। कार्यक्षेत्र और प्रक्रिया का स्तर इतना जटिल रहा है, इसका सीधा लाभ उन महिलाओं तक नहीं पहुंच पाता है, जिसको वास्तव में इस कार्यक्रम की आवश्यकता है।
(महिला विकास कार्यक्रम डॉक्टर आशा पृष्ठ 225)– डा0 पंचवर्षीय योजना को शुरू करते समय प्रोफेसर महालनवीस ने यह आशंका जताई थी कि इस कार्यक्रम के क्रियान्वयन में प्रशासनिक तंत्र के कारण काफी कठिनाई होगी, जो हम देखते हैं कि साढ़े तीन दशक बीत जाने के बाद स्थिति वैसी की वैसी है, यदि इसी तरह की स्थिति रही तो ग्रामीण महिला विकास कार्यक्रम का भविष्य वैसा ही होगा। एकीकृत ग्रामीण महिला कार्यक्रम की जहां कहीं सफलता देखी गई वह विकसित क्षेत्र और शिक्षित महिला तक ही सीमित थी यह महसूस होता है कि यदि विकास प्रक्रिया को ग्रामीण महिलाओं पर दया का प्रभाव कायम करना है उनकी सामाजिक दशाओं को सुधारों की आवश्यकता है। पंचवर्षीय योजनाओं में महिलाओं के विकास पर ध्यान दिया गया, लेकिन स्थिति अभी सुधरी नहीं है। महिला दशक के मध्य में कोपेनहेगन में सम्मेलन हुआ, जिसका उद्देश्य विभिन्न देशों में हुई महिला कार्यवाही ऊपर विचार करना था, रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि मुद्दे को विशेष प्राथमिकता के क्रम में जोड़े गए। नैरोवी में हुए इस गैर सरकारी सम्मेलन में विश्व के विभिन्न भागों में लगभग 1200 प्रतिनिधियों ने भाग लिया, इसमें भारत की 700 महिला थी। भारत की बीना मजूमदार नीरा देसाई प्रेमा पुरवा इला भट्ट गीता सेन ने परिचर्चा में सक्रिय भाग लिया। इसी अधिवेशन में कहा गया कि इस तत्व को नकारा नहीं जा सकता कि विश्व में समानता का तराजू एकदम असंतुलित है, नारी जिस पलड़े पर रखी हुई है, जिम्मेदारियों के बोझ तले झुकी जा रही है। पुरुषों का पलड़ा शक्ति के कारण ऊपर उठा है।

कहा जाता है कि जब एक महिला को सामाजिक आर्थिक रूप से सशक्त बनाते हैं, तो वह महिला न केवल अपने परिवार को समाज को बल्कि देश को भी सशक्त बनाती है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात स्त्रियों की स्थिति के संदर्भ में राष्ट्रीय समिति की रिपोर्ट में कहा गया है– हमारी राय में सभी स्थानों पर विकास की प्रक्रिया में स्त्रियों को सम्मिलित करने के राष्ट्रीय उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उन्हें दिए गए संवैधानिक आश्वासनों को पूरा करने के लिए आवश्यक है, इन्हें इस रूप में सामाजिक मान्यता दी जाए की स्त्रियां घर को बनाने सवारने मातृत्व निभाने तथा सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से उत्पादन कार्य करने वाले व्यक्तियों की बहुमुखी भूमिका निभा सकें। सामान्य से सामान्य स्त्रियों को अपनी विभिन्न भूमिकाएं सफलतापूर्वक निभाने के लिए आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध कराने और सहायता दें। विवाह और मातृत्व जो राष्ट्र के अस्तित्व को बनाए रखने में योग देते हैं। आर्थिक क्रिया प्रक्रिया में स्त्रियों की लाभकारी सफलता प्राप्त करने में अयोग्यता न बन जाए यही वह परिस्थिति है जिसका सम्मान सामना भारत का विशाल स्त्री समुदाय कर रहा है।

हम यह तो नहीं कह सकते कि महिलाओं की हालत पूरी तरह बदल गए हैं, पर पिछले की तुलना में कुछ तरक्की हुई है। महिलाएं अपने रोजगार को लेकर जागरूक हैं, महिलाएं लोकतंत्र और मतदान में जागरूक हो गई हैं। महिलाओं की स्थिति के साथ नकारात्मक और सकारात्मक दोनों पक्ष है। महिलाओं के अधिकारों को जितनी प्राथमिकता दी जा रही है, उसे वह खुद नहीं समझ पा रही हैं। आरक्षण की ही बातें ले लीजिए 100 में से 80 महिलाएं ऐसी हैं जो चुनाव लड़ती हैं। लेकिन उन्हें उनके अधिकारों का पता ही नहीं है। महिलाओं को खुद को जागृत करना करना अपने हित के बारे में स्वयं सोचना होगा। दूसरे विकासशील देशों की तुलना में हमारे देश में महिलाओं की स्थिति काफी बेहतर है लेकिन पूरी तरह से संतोषजनक नहीं है। वर्तमान समय में भारतीय सरकार द्वारा महिलाओं के उत्थान के लिए अनेक कार्यक्रमों और योजनाओं का संचालन किया जा रहा है, यदि सीधे इसका लाभ महिलाओं तक पहुंचे तो स्थिति काफी बेहतर हो सकती है। महिलाओं की स्थिति सुधरने से देश की प्रगति में वे अपना योगदान दे सकती हैं हमें महिलाओं को ऐसी स्थिति में पहुंचा देना चाहिए जहां वे अपनी समस्या खुद सुलझा सके। ज्यादातर महिलाएं पुरुष प्रधान मानसिकता से पीड़ित हैं। इसके बारे में स्वामी विवेकानंद ने कहा है, किसी भी राष्ट्र की प्रगति का सर्वोत्तम थर्मामीटर है महिलाओं की स्थिति।

हमें नारियों का एक रक्षक नहीं सहयोगी बनना चाहिए, उन्हें दिशा दिखाना चाहिए, जिससे वे अपना प्रत्येक कार्य आसानी से पूरा कर सकें महिलाओं को उपर्युक्त अवसर देना चाहिए तभी भारत का उज्ज्वल भविष्य सुनिश्चित होगा। महिलाओं को स्वतंत्रता देनी चाहिए। शहरी क्षेत्रों में हालत अच्छे हैं, लेकिन ग्रामीण महिलाएं आज भी पूरी तरह से स्वतंत्र नहीं है। महिलाओं को जब तक स्वतंत्र नही किया जाएगा तब तक वे अबला ही बनी रहेंगी। महिलाओं को जरूरत है वह अपनी क्षमता को पहचाने और प्रयास करें, कि अपने परिवार के साथ देश और समाज के प्रति अपनी भूमिका को निभा सके यह बदलाव तभी संभव है जब सारा समाज एक साथ खड़ा होकर सकारात्मक रुख अपनाएगा। महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिए जो राजनीतिक संरक्षण मिला है। तकनीकी और विज्ञान जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में जो नई बदलाव देखने को मिली है, यह महज शुरुआत भर है, जब तक समाज के प्रत्येक वर्ग में महिलाओं पुरुषों के बराबर भागीदारी सुनिश्चित नहीं हो जाती, वे हर प्रकार से शिक्षित, सुरक्षित, संरक्षित नहीं हो सकती हैं तब तक हमारी आजादी अधूरी मानी जाएगी। उनको जागरूक करना सबसे प्रमुख कार्य है। महिलाओं को जरूरत है अपनी क्षमता पहचानने और प्रयास करें कि अपने परिवार के साथ–साथ देश और समाज के विकास के प्रति अपनी भूमिका निभा सकें। सरकार को ज्यादा ज्यादा योजना चलानी चाहिए महिलाओं के विकास के लिए और यह सुनिश्चित करें

कि योजना का पूरा लाभ महिलाओं को मिले तभी महिला सशक्त होकर राष्ट्र के विकास में अपना योगदान दे सकती हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची:–

महिला विकास कार्यक्रम– डा0 आशारानी प्रतियोगिता दर्पण

नारी चेतना– उपकार प्रकाशन आगरा।

राष्ट्रीय समिति रिपोर्ट – भारतीय समाज में स्त्रियों की प्रस्थिति।

तैत्तरीय संहिता– 2–5–9–57

अल्टेकर – द पोजीशन आफ वुमन इन हिन्दु सिविलाइजेशन

डेविस – Human Society 553

इग्नू – नारी और समाज

दोषी जैन – भारतीय समाज

सोशल मिडिया पर युवाओं का प्रभाव

गरिमा सिंह

शोध छात्रा
समाजशास्त्र विभाग
वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर (उ0प्र0)
Email - garimasurhan@gmail.com

21वीं सदी को यदि मीडिया की सदी कहे तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी, शिक्षा के क्षेत्र में नए–नए आयामों शिक्षा जगत में महत्वपूर्ण उपलब्धियों का पहाड़ सा खड़ा कर दिया, जिसमें मीडिया की लोकप्रियता सर्वत्र छायी रही। मीडिया ने न केवल वर्तमान में अपितु स्वतंत्रता संग्राम में भी अपनी सेनानियों की यशोगाथा का वर्णन किया।

शुरुआती दौर में सोशल नेटवर्क एक सामान्य सी दिखने वाली साइट होती थी, इसके जरिये उपयोगकर्ता एक–दूसरे से चौट के जरिए बात करते थे, अपनी निजी जानकारी और विचार एक दूसरे के साथ बांटते थे। 90 के दशक में इस साइटों में बदलाव आया इसमें फोटो, वीडियो, संगीत, शेयरिंग, ऑनलाइन गेम्स, विज्ञान, कला, प्लानिंग, चौटिंग, ऑनलाइन डेटिंग जैसी तमाम सुविधाएं बढ़ी। भारत में सबसे ज्यादा प्रयोग में होने वाली वेबसाइट फेसबुक ऑरकुट शामिल है।

सोशल नेटवर्क से लोगों में जन आंदोलन एवं जन जागरण की समस्त आकांक्षाओं और संभावनाओं का उदय हुआ यह भारत देश के लिए गौरव की बात है। यह जन जागृति एवं जन चेतना न केवल आम लोगों में आई बल्कि विद्यार्थियों में यह जनचेतना उन्हें उत्तेजित कर स्वतंत्रता, आंदोलन और स्वाधीनता एक दूसरे के पूरक बने। विद्यार्थियों को भी शैक्षिक चेतना का बोध हुआ।

सोशल मीडिया सकारात्मक भूमिका अदा करता है, जिससे किसी भी व्यक्ति संस्था समूह और देश को आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक रूप से समृद्ध बनाया जा सकता है। सोशल मीडिया के जरिये कई विकासात्मक कार्य हुआ, जिससे कि लोकतंत्र और समृद्ध हुआ है।

मीडिया ने जब पहली बार काम शुरू किया प्रिंट मीडिया आया, उसके बाद रेडियो पर कार्यक्रम प्रसारित होने लगे, रेडियो के द्वारा हम प्रमुख समाचार को सुनते थे, इसके बाद मीडिया क्षेत्र में क्रांति लाई टीबी ने।

भारत में दूरदर्शन चैनल के साथ सीरियल ज्ञानवर्धक बातें ही आती थी, समय के साथ टीवी चैनल बढ़े, लोगों का रुझान बढ़ा 24 घंटे न्यूज आने लगे, अब गानों के लिए अलग चैनल और न्यूज के लिए अलग चैनल। इस तरह मीडिया का विस्तार होता चला गया और मीडिया का नाम देश समाज में फैल गया। इस तरह टीवी पर आने वाले मीडिया को मास मीडिया का नाम मिला।

मीडिया के बहुत सकारात्मक लाभ भी हैं मीडिया के द्वारा लोगों को शिक्षा मिलती है वे टी0वी0 रेडियो प्रोग्राम के द्वारा स्वास्थ्य वातावरण दूसरी जानकारी प्राप्त करते हैं, बच्चों का ज्ञान बढ़ता है, बच्चे डिस्कवरी चौनल क्विज प्रोग्राम के द्वारा बहुत कुछ सीखते हैं। रेडियो भी एक अच्छा माध्यम है, इसके द्वारा कहीं पर भी रहकर जानकारी मिल जाती है। आजकल मोबाइल में एफ0एम0 की सुविधा मौजूद रहती है। मीडिया के द्वारा विज्ञापन कंपनी के उन्नति के रास्ते खुल गए हैं। जैसे ही मीडिया आई उसके पीछे–पीछे अपने प्रोडक्ट का विज्ञापन करने के लिए उन्हें अच्छा माध्यम मिल गया।

विज्ञापन के द्वारा अलग–अलग तरह के सामानों की जानकारी मिलती है, जिससे इसकी बिक्री भी अधिक होती है, विज्ञापन के द्वारा टी0वी0 चैनलों की भी कमाई होती है। ये मनोरंजन का बहुत अच्छा साधन है इसमें दिखाए जाने वाले टी0वी0 सीरियल न्यूज गाने फिल्मों के द्वारा लोगों का मनोरजन होने लगा।

सोशल मीडिया एक ऐसी मीडिया है जो बाकी सारे मीडिया प्रिंट इलेक्ट्रानिक और समानांतर मीडिया से अलग है। सोशल मीडिया इंटरनेट के माध्यम से एक वर्चुअल वर्ल्ड बनाता है, जिसे उपयोग करने वाला व्यक्ति सोशल मीडिया के किसी प्लेटफार्म (फेसबुक इंस्टाग्राम) आदि का उपयोग कर सकता है।

आज के दौर में सोशल मीडिया जिंदगी का हिस्सा बन चुका है, जिनके बहुत सारे फीचर हैं, जैसे की सूचनाएं आदान–प्रदान करना, मनोरंजन करना, शिक्षित करना, मुख्य रूप से शामिल है सोशल मीडिया एक परंपरागत मीडिया (Tradistional Media) है। यह एक वर्चुअल वर्ल्ड बनाता है। सोशल मीडिया एक विशाल नेटवर्क है, जो सारे संसार को जोड़ें रखता है यह संचार का अच्छा माध्यम है। यह द्रूत गति से सूचनाओं का आदान–प्रदान करता है, जिसमें हर क्षेत्र की खबरें समाहित होती है सोशल मीडिया सकारात्मक भूमिका अदा करता है, जिससे किसी भी व्यक्ति, संस्था, समूह और देश को आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक रूप से समृद्ध बनाया जा सकता है। सोशल मीडिया के जरिये कई विकासात्मक कार्य हुए हैं, जिनमें कि लोकतंत्र को समृद्ध बनाने का काम हुआ है जिससे किसी भी देश की एकता अखंडता पंथनिरपेक्षता समाजवादी गुणों में अभी वृद्धि हुई है।

आज के समय में शायद ही ऐसा कोई होगा, जो सोशल मीडिया का इस्तेमाल नहीं करता होगा, बच्चे युवा और बूढ़े सभी आजकल सोशल मीडिया पर सक्रिय रहते हैं लोग घंटो अपना जरूरी काम छोड़कर व्हाट्सएप, यूट्यूब, ट्वीटर जैसे प्लेटफार्म पर लगे रहते हैं आजकल यह बहुत ही प्रसिद्ध हो गया है।

सोशल मीडिया एक ऐसी मीडिया है जो बाकी सारे मीडिया प्रिंट इलेक्ट्रानिक और समानांतर मीडिया से अलग है। सोशल मीडिया इंटरनेट के माध्यम से एक वर्चुअल वर्ल्ड बनाता है, जिसे उपयोग करने वाला व्यक्ति सोशल मीडिया के किसी प्लेटफार्म (फेसबुक इंस्टाग्राम) आदि का उपयोग कर सकता है। सोशल मीडिया एक विशाल नेटवर्क है, जो सारे संसार को जोड़ें रखता है यह संचार का अच्छा माध्यम है।

भारत में 70 करोड़ लोगों के पास फोन है, जिसमें 25 करोड़ लोग इस स्मार्टफोन का इस्तेमाल करते हैं हम ऐसे कई उदाहरण देखते हैं, जिसमें इस बात की पुष्टि होती है, कि सोशल मीडिया किसी भी कार्य योजना आंदोलन आदि को सफल बनाने में बड़ी भूमिका निभा रहा है कोई खास हो या आम सब लोग स्वतंत्र होकर अपनी बात कह पा रहे हैं। जैसा कि "India against Corruption" को ही देख लें, जो कि भ्रष्टाचार के खिलाफ महाअभियान था, जिसे सड़कों के साथ–साथ सोशल मीडिया पर भी लड़ा गया, जिसके कारण विशाल जनसमूह अन्ना हजारे के आंदोलन से जुड़ा और उसे प्रभावशाली बनाया।

2014 के आम चुनाव के दौरान राजनीतिक पार्टियों ने जमकर सोशल मीडिया का उपयोग कर आमजन को चुनाव के लिए जागरूक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। आम चुनाव में सोशल मीडिया के उपयोग से वोटिंग प्रतिशत बढ़ा। साथ ही साथ युवाओं में चुनाव के प्रति जागरुकता बढ़ी। सोशल मीडिया के माध्यम से ही निर्भया को न्याय दिलाने के लिए विशाल संख्या में युवा सड़कों पर आए हैं, जिससे सरकार दबाव में आकर एक नया और ज्यादा प्रभावशाली कानून बनाने पर मजबूर हो गई।

लोकप्रियता के प्रसार में सोशल मीडिया एक बेहतरीन प्लेटफार्म है, जहां व्यक्ति स्वयं को अपने किसी उत्पाद को ज्यादा लोकप्रिय बना सकता है। आज फिल्मों के ट्रेलर कोई भी प्रोग्राम का प्रसारण भी सोशल मीडिया के माध्यम से किया जा रहा हैं वीडियो तथा ऑडियो चौट की सोशल मीडिया के माध्यम से सुगम हो पाया है, जिनमें फेसबुक, इंस्ट्राग्राम प्रमुख प्लेटफार्म है।

सोशल मीडिया जहां सकारात्मक भूमिका अदा करता है वहीं कुछ लोग इसका गलत उपयोग भी करते हैं कुछ लोग भ्रामक बातें फैला कर नकारात्मक जानकारी साझा करते हैं, जिससे कि जनमानस प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

कई बार तो बात इतनी बढ़ जाती है कि सरकार सोशल मीडिया के गलत इस्तेमाल करने पर सख्त हो जाती है और हमने देखा है कि सरकार को जम्मू–कश्मीर जैसे राज्य में सोशल मीडिया पर प्रतिबंध लगाना पड़ता है। मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र में हुए किसान आंदोलन में भी सोशल मीडिया पर प्रतिबंध लगा दिया गया ताकि असामाजिक तत्व किसान आंदोलन की आड़ में किसी भी घटना को अंजाम न दे पाए।

दैनिक जीवन में सोशल मीडिया का पूरा प्रभाव रहता है सभी वर्गों के लिए जैसे कि शिक्षित वर्ग हो या अशिक्षित वर्ग यहां किसी प्रकार से कोई भी व्यक्ति किसी भी कंटेंट का मालिक नहीं बना होता है फोटो, वीडियों, सूचना, डाक्यूमेंट्स आदि को आसानी से शेयर किया जा सकता है।

यह बहुत सारी जानकारी प्रदान करता है, जिनमें से बहुत सी जानकारी भ्रामक भी होती हैं। जानकारी को किसी भी प्रकार से तोड़–मरोड़ कर पेश किया जा सकता है। यहां कंटेंट का कोई मालिक ना होने से मूल स्रोत का अभाव होना प्राइवेसी पूर्णतः भंग हो जाती है। फोटो या वीडियो को एडिटिंग करके भ्रम फैला सकते हैं जिनके द्वारा कभी–कभी दंगे जैसी आशंका भी उत्पन्न हो जाती है।

सोशल मीडिया आज हमारे जीवन में एक बड़ी भूमिका निभा रहा है। अपने दोस्तों को संदेश फोटो और वीडियो भेजने के लिए हम इसे इस्तेमाल करते हैं। देश में करोड़ों लोग इसका इस्तेमाल कर रहे हैं। आजकल हमारे देश के प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी, आमिर खान जी, अमिताभ बच्चन जी, बड़े–बड़े राजनेता, खिलाड़ी, मशहूर हस्तियां सोशल मीडिया पर सक्रिय हैं। आज के समय में यह बहुत प्रसिद्ध हो गया है, लोग इसका इस्तेमाल विचारों की अभिव्यक्ति के लिए करते हैं और यह अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने का साधन बन गया है।

सोशल मीडिया आजकल ज्ञान का नया भंडार बन गया है इस पर हर तरह की जानकारी आप पा सकते हैं। किसी भी सवाल का जवाब एक्सपर्ट से पूछ सकते हैं। इस तरह से यह ज्ञान का भंडार भी है। आजकल बड़े संसाधन, कोचिंग, टीचर, प्रोफेसर, सोशल मीडिया जैसे यूट्यूब पर पढ़ाते हैं, यह बिल्कुल मुफ्त होता है। आजकल इंटरनेट के जमाने में हजारों लोग सोशल मीडिया की मदद से पैसा कमा रहे हैं। लोग अपना चौनल बनाकर अपने वीडियो पोस्ट लगाकर हजारों लाखों हर महीना कमा रहे हैं। यूट्यूब जैसे प्लेटफार्म पर आज लाखों लोगों ने अपने चैनल बना लिए हैं।

सोशल मीडिया का सबसे बड़ा फायदा यह है कि आप अपने बिजनेस व्यापार का प्रचार–प्रसार कर सकते हैं सोशल मीडिया एक ऐसा साधन है, जिसका उपयोग सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही प्रकार से किया जा सकता है। कई लोग इसका उपयोग नकारात्मक उर्जा फैलाने के लिए भी करते हैं, जिससे देश और समाज का माहौल भी नकारात्मक हो रहा

है। आज के समय में स्मार्टफोन हर दूसरे व्यक्ति के पास है और हर व्यक्ति सोशल मीडिया पर एक्टिव रहता है। आज व्यक्ति दैनिक जीवन में काम करना भूल जाता है, लेकिन मोबाइल में सोशल मीडिया पर चल रही सारी गतिविधियां देखना नहीं भूलता है।

सोशल मीडिया मनोरंजन का एक बहुत बड़ा मंच बन चुका है आज का युवा इससे एक पल भी दूर नहीं रहना चाहता है, यह कहना गलत नहीं होगा कि आज का युवा इसका आदी हो गया है। सुबह उठने पर सबसे पहले अपना मोबाइल देखता है, फेसबुक पर कितने कमेंट्स, लाइक्स मिले व्हाट्सएप पर मैसेज चेक करेगा। इन गंभीर बीमारी से हर उपयोगकर्ता ग्रसित है। M.S. Sabnam Mahat ने 2014 में Impact of Social Networking sites on youth में अपना अध्ययन पांडिचेरी के युवाओं पर किया– सोशल नेटवर्किंग साइट वेब सर्विस है जो लोगों को एक पद सिस्टम में पब्लिक प्रोफाइल बनाने के लिए अनुमति देती है। सोशल नेटवर्किंग साइट का उपयोग उन लोगों से संपर्क करने में होता है, जिनके दोस्त सुधार परिवार के सदस्य पहले से ही नेट पर होते हैं। उनके माइंडसेट विचार दिलचस्पी लगभग एक जैसी होती है, यह लोग आपस में किसी टॉपिक पर विचार विमर्श करते हैं।

सोशल नेटवर्किंग साइट्स न सिर्फ चौटिंग वीडियो फोटो शेयर करने का प्रसिद्ध प्लेटफार्म मंच है, बल्कि सामाजिक विषयों पर विचार विमर्श करने का भी महत्वपूर्ण मंच है। युवा इस सोशल साइट्स पर कई सामाजिक विषय जैसे भ्रष्टाचार, मानवाधिकार के उल्लंघन से जुड़े विषयों के बारे में आवाज उठाते हैं। आजकल युवा सामाजिक विषयों से जुड़े मुद्दे पर ज्यादा जागरूक हो गया है। पिछले 5 सालों में सोशल नेटवर्किंग साइट्स जैसे फेसबुक, ट्विटर, ऑरकुट का उपयोग बहुत तेजी से बढ़ा है। सामाजिक नेटवर्किंग साइट्स युवाओं की पढ़ाई को ज्यादा प्रभावित कर रहा है, क्योंकि एक बार जो सोशल नेटवर्किंग साइट्स का उपयोग कर लेता है, उसी के वशीभूत होकर अपनी सुध–बुध खो देता है और अन्य सारी चीजों से ध्यान हट जाता है। पढ़ाई के लिए एकाग्रता की आवश्यकता होती है, परंतु सोशल नेटवर्किंग साइट्स का प्रयोग उन्हें पढ़ाई में एकाग्र नही होने देता है, वह हर पल अपना फोन ही चेक करते रहते हैं। सोशल मीडिया का सकारात्मक उपयोग भी है। जैसे सोशल मीडिया दुनिया भर के समाज और समाज के ज्ञान को प्राप्त करने में युवा पीढ़ियों की सहायता कर सकती है, क्योंकि वह वास्तविक समय में समाचार घटनाओं पर अपडेट किए जा सकते हैं। यह मनोरंजन का एक रुप है, जब तक यह अति साबित नहीं होता है तब तक उनको फायदा हो सकता है। युवा लोग अपने दोस्तों के साथ तुरंत संपर्क में हो सकते हैं और दुनिया भर में कनेक्शन बना सकते हैं, लेकिन उन कनेक्शन का सहयोग होना भी जरूरी है कई लोगों को सोशल मीडिया का दुरुपयोग करते देखा जा सकता है। सोशल मीडिया पर भड़काऊ संदेश और वीडियो भेजते हैं,

जिसके कारण लोगों की मानसिकता पर काफी प्रभाव पड़ता है। कई युवा तो भड़काऊ संदेश और वीडियो देखने के बाद घिनौना अपराध करते हैं।

मीडिया के माध्यम से देश दुनिया की लाइव न्यूज देखने को मिल जाता है। दुनिया के किसी भी कोने में होने वाली घटना को यह मीडिया वाले तुरंत अपने कैमरे में कैद कर सबके सामने ले जाते हैं।

सभी विषयों के लिए अलग–अलग चैनल हो गए है, जिससे अपनी मर्जी मन मुताबिक जब जो चाहे वह देख लिया। बच्चों के लिए अलग–अलग चैनल है, जिससे अभिभावक उन्हें सिर्फ वही दिखा सकते हैं और बाकी चौनल से उन्हें दूर रखा जा सकता है।

टीवी पर ढेरों स्पोर्ट्स चैनल भी आते हैं, इन्हीं के बदौलत हम घर बैठे– बैठे दूरदराज चल रहे क्रिकेट का लुफ्त उठाते हैं। मीडिया वाले भ्रष्टाचारी नेताओं की पोल खोलने के लिए कई तरह से मेहनत करते हैं, वह स्टिंग ऑपरेशन द्वारा उनकी सच्चाई सबके सामने लाते हैं।

मीडिया का रूप बढ़ने से बड़े नेता अभिनेता कुछ भी गलत काम करने से डरते हैं, क्योंकि उनकी हर गतिविधि पर मीडिया की पैनी नजर होती है। मीडिया वाले अपनी बात खबर पहुंचाने के लिए दिन रात मेहनत करते हैं हर मीडिया वाला यह कोशिश करता है कि उसके चौनल में सबसे पहला न्यूज या प्रोग्राम टेलीकास्ट हो। मीडिया हमारी रोजमर्रा की जिंदगी का हिस्सा बन चुकी है।

सोशल मीडिया का दुरुपयोगः–

आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2018–19 में फेसबुक, ट्विटर समेत कई साइट्स पर 3245 आपत्तिजनक सामग्रियों के मिलने की शिकायत की गई थी, जिनमें से जून 2019 तक 2662 सामग्री हटा दी गई। इसमें ज्यादातर वह सामग्री थी, जो धार्मिक भावनाओं और राष्ट्रीय प्रतीकों के अपमान का निषेध करने वाले कानून का उल्लंघन कर रही थी, इस अल्पावधि में बड़ी संख्या में आपत्तिजनक सामग्री का पाया जाना यह दर्शाता है कि सोशल मीडिया का कितना ज्यादा दुरूपयोग हो रहा है।

दूसरी ओर सोशल मीडिया के जरिए ऐतिहासिक तथ्यों को तोड़–मरोड़ कर पेश किया जा रहा है न केवल ऐतिहासिक घटनाओं को अलग रूप में पेश करने की कोशिश हो रही है, बल्कि आजादी के सूत्रधार रहे नेताओं के बारे में गलत जानकारी बड़े स्तर पर साझा की जा रही है।

विश्व आर्थिक मंच रिपोर्ट के अनुसार– दुनिया में सोशल मीडिया के माध्यम से गलत सूचनाओं का प्रचार कुछ प्रमुख उभरते जोखिम में से एक हैं। यकीनन यह न केवल देश की प्रगति में रुकावट है, बल्कि भविष्य में इसके खतरनाक परिणाम भी सामने आ सकते हैं। अतः

आवश्यक है कि देश की सरकार को इस विषय पर गंभीरता से विचार करते हुए इसे पूरी तरह रोकने का प्रयास करना चाहिए।

सोशल मीडिया आज हमारे जीवन में एक बड़ी भूमिका निभा रहा है एक बटन दबाने पर भी हमारे पास अत्यंत विस्तृत सम्बन्धी सकारात्मक और नकारात्मक किसी भी प्रकार की जानकारी पहुंचा जा रही है। सोशल मीडिया एक बहुत ही सशक्त माध्यम है, और इसका प्रभाव प्रत्येक व्यक्ति पर पड़ता है। सोशल मीडिया के बिना हमारे जीवन की कल्पना करना मुश्किल है। इसके अत्यधिक उपयोग के वजह से इसकी कीमत चुकानी पड़ती है। हालांकि कई चिकित्सकों का मानना है कि सोशल मीडिया लोगों में निराशा और चिंता पैदा करने वाला एक कारक है यह बच्चों में खराब मानसिक विकास की भी कारण बनते जा रहा है। सोशल मीडिया का अत्यधिक उपयोग निद्रा को प्रभावित करता है। साइबर बोलिंग छवि खराब होना जैसे कई अन्य नकारात्मक प्रभाव हैं। सोशल मीडिया भी की वजह से युवाओं में गुम हो जाने का भय (F.O.A.M.O.) अत्यधिक बढ़ गया है। उपयोगकर्ता हैकिंग, आईडेंटिटी की चोरी फिशिंग अपराध इत्यादि जैसे साइबर अपराधों का शिकार होता है।

आजकल कई लोगों को सोशल मीडिया का दुरुपयोग करते देखा जा सकता है। सोशल मीडिया पर लोग भड़काऊ संदेश और वीडियो भेजते हैं, जिसके कारण लोगों की मानसिकता पर काफी प्रभाव पड़ता है। किसी भी समुदाय विशेष के लोगों के खिलाफ गलत और भड़काऊ शब्दों का प्रयोग करना तो सोशल मीडिया पर आम बात हो गई है। सोशल मीडिया के बढ़ते उपयोग से ज्यादातर युवा अपना बहुमूल्य समय बर्बाद करते हैं सोशल मीडिया का युवाओं में एडिक्शन सी बढ़ती जा रही है।

सोशल मीडिया और फेक न्यूज संबंधी नियमः–

भारत में सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पहले से ही सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम 2008 के दायरे में आते हैं। यदि सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म को अदालत या कानून प्रवर्तन संस्थाओं द्वारा किसी सामग्री को हटाने का आदेश दिया जाता है, तो उन्हें अनिवार्य रूप से ऐसा करना होगा। सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर रिपोर्टिंग तंत्र भी मौजूद है, जो यह पता लगाने का प्रयास करते हैं क्या कोई सामग्री सामुदायिक दिशा निर्देशों का उल्लंघन कर रही है या नहीं और यदि वह ऐसा करते हुए पाई जाती है, तो उसे प्लेटफार्म से हटा दिया जाता है।

भारत में फेक न्यूज को रोकने के लिए कोई विशेष कानून नहीं हैं भारत में अनेक संस्था हैं, जो इस संदर्भ में कार्य कर रही हैं।

प्रेस काउंसिल ऑफ इंडियाः–

एक ऐसी ही नियामक संस्था है, जो समाचार पत्र, समाचार एजेंसी और उनके संपादकों को स्थिति में चेतावनी दे सकती है यदि यह पाया जाता है कि उन्होंने पत्रकारिता के सिद्धांतों का उल्लंघन किया है।

News Broadcost Accociation:-

निजी टेलीविजन समाचार और करेंट अफेयर्स के प्रसार का प्रतिनिधित्व करता है, उनके विरुद्ध शिकायतों की जांच करता है।

Broadcosting Content Complaint Council:-

टीवी ब्रॉडकास्टरों के खिलाफ आपत्तिजनक और फर्जी खबरों की शिकायत स्वीकार करती है और उनकी जांच करती है।

फायदे के साथ नुकसान भी बहुत है एक तरफ यह दूर रहे लोगों को पास ले आया है, पर करीबियों को दूर कर दिया है मां बाप बच्चों तक से सोशल मीडिया के जरिए बात कर रहे हैं। युवाओं के पास समय नहीं है, कि अभिभावक से कुछ क्षण बाद तक करें। सोशल मीडिया पर गोपनीयता की कमी होती है। कई बार निजी डेटा चोरी होने का खतरा रहता है। साइबर अपराधों हो जैसे हैकिंग और फिशिंग आदि का खतरा बढ़ जाता है। सोशल मीडिया का अत्यधिक प्रयोग हमारे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को बड़े पैमाने पर प्रभावित कर सकता है। कई शोध बताते हैं यदि कोई सोशल मीडिया का आवश्यकता से अधिक प्रयोग किया जाए तो वह हमारे मस्तिष्क को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकता है और हमें डिप्रेशन की ओर ले जा सकता है।

सोशल मीडिया साइबर बुलिंग को बढ़ावा देता है, यह फेक न्यूज और हेट स्पीच फैलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सोशल मीडिया पर गोपनियता की कमी होती है, कई बार आपका निजी डेटा चोरी होने का खतरा रहता है और हैकिंग और फिशिंग का भी खतरा बढ़ जाता है। आजकल सोशल मीडिया के माध्यम से धोखाधड़ी का चलन भी तेज हो गया है। ये लोग सोशल मीडिया की तलाश करते हैं, जिन्हें आसानी से फसाया जा सके। सोशल मीडिया का सबसे ज्यादा मानसिक प्रभाव पड़ रहा है। बढ़ते चैनल के साथ एक चैनल दूसरे चैनल का प्रतिद्वन्दी हो गया है, टीआरपी की होड़ में प्रोग्राम में क्वालिटी नहीं होती है, बस कुछ भी दिखाते हैं।

लगातार मास मीडिया सोशल मीडिया के संपर्क में रहने से बच्चों को कम उम्र में ही चश्मा लगने लगा है, इसके अलावा सर दर्द, नेक पेन आदि समस्याएं सामने आने लगी है।

मास मीडिया में गंदे से चौनल की आती है ये हमारे समाज में अभिशाप की तरह है, जो देश का भविष्य बिगड़ते हैं, इसके लिए सरकार को कड़े कदम उठाने चाहिए और ऐसे टीवी चौनल प्रोग्राम को टीवी पर प्रसारित नहीं होने देना चाहिए। कई लोग एफएम सुनने के आदी

होते हैं, वह हेडफोन लगाकर लगातार सुनते हैं, ड्राइविंग करते हैं, इससे उनके कान में परेशानी होती है, साथ ही ड्राइविंग के समय हेडफोन लगाने से बड़ी दुर्घटना भी होती है।

मास मीडिया पर दिखाए जाने वाले प्रोग्राम कई बार गलत शिक्षा की भी देते हैं, इसमें क्राइम से जुड़े प्रोग्राम भी आते हैं। कई लोग नए–नए आईडिया लेकर क्राइम करते हैं, सोशल मीडिया पर कई प्रोग्राम में सिगरेट शराब का सेवन खुलेआम दिखाया जाता है, इसे देख बच्चे प्रभावित होते हैं। टीवी पर दिखाए जाने वाले प्रोग्राम में अमीर गरीब जाति धर्म का बहुत बोलबाला था, जिससे लोगों को गलत शिक्षा मिलती है, इसके साथ ही उसमें दिखावा साजसज्जा अधिक होती है, जिससे प्रभावित होकर आम जनता भी उसे अपने जीवन में उतारने की कोशिश करती है मास मीडिया में दिखाए गए स्टैंड को बच्चे युवा अपने घर में करते हैं जिससे उन्हें नुकसान होता है मीडिया वाले कुछ भी बोलते हैं। टीआरपी के लिए किसी भी हद तक पहुंच जाते हैं। सांप्रदायिक दंगे फैलाने में और जातिवाद को बढ़ाने में मीडिया की प्रमुख भूमिका होती है।

आजकल टीवी कार्यक्रम में ज्यादा से ज्यादा तो विज्ञापन आता है, टीवी चैनल वालों को विज्ञापन से पैसा मिलता है, जिससे वह अपने कार्यक्रम में विज्ञापन दिखाते हैं और प्रोग्राम को छोटा कर देते हैं।

कुछ भी दिखाने के लिए आजकल फूहड़ता परोसी जाती है कई बार फैमिली चौनल में भी कार्यक्रम ऐसे आते हैं, जो परिवार के साथ बैठकर नहीं देखे जा सकते हैं और अचानक ऐसा कुछ आने से सभी असमंजस महसूस करते हैं।

टीवी में बढ़ते चैनल की वजह से अधिकतर लोग इसमें बिजी हो गए हैं। एक के बाद एक कार्यक्रम के चलते टीवी सेट्स के सामने बैठे ही रहते हैं, इसके साथ ही दूसरी चैनल में उसी समय प्रोग्राम आता है, जिसे देखने के बाद लोग उसका रिपीट देखते हैं, इसका मतलब लोगों की जिंदगी बस टीवी के इर्द–गिर्द घूमती है। मुख्य रूप से ऐसा औरतें करती हैं, औरतें अपने कार्यक्रम के चलते घर का सारा काम–धाम छोड़ देती हैं उनकी इस आदत से घर में कलह पैदा हो जाता है अधिकतर टाइम लोग मास मीडिया और सोशल मीडिया में बिताने के कारण लोग समय बर्बाद करते हैं, इससे लोगों की सामाजिक जिंदगी भी प्रभावित होते हैं। सबसे ज्यादा बुरा प्रभाव बच्चों पर पड़ता है, इससे लोगों की सामाजिक जिंदगी भी प्रभावित होती है।

मास मीडिया, सोशल मीडिया एक तरह से आपको अपनी आदत लगा देते हैं, इसके बिना रहना आपके लिए मुश्किल हो जाता है, इससे इंसान के दिमाग का विकास रुक जाता है और एक से वह एक स्तर तक ही सोच पाते हैं। लगातार मीडिया के प्रभाव में आने से सभी के दिमाग और आँख पर असर होता है।

सोशल मीडिया ने समाज के अंतिम छोर पर खड़े व्यक्ति को भी समाज की मुख्यधारा से जोड़ने और खुलकर अपने विचारों को अभिव्यक्त करने का अवसर दिया है।

आंकड़ों के अनुसार वर्तमान भारत में तकरीबन 350 सोशल मीडिया यूजर हैं और अनुमान के मुताबिक वर्ष 2023 तक यह संख्या लगभग 447 मिलियन तक पहुंच जाएगी वर्ष 2019 में जारी एक रिपोर्ट के मुताबिक भारतीय उपयोगकर्ता औसतन 2.4 घंटे सोशल मीडिया पर बिताते हैं।

इसी रिपोर्ट के मुताबिक फिलीपींस के उपयोगकर्ता सोशल मीडिया का सबसे अधिक प्रयोग करते हैं इस आधार पर जापान में सबसे कम प्रयोग होता है इसके अतिरिक्त सोशल मीडिया अपनी आलोचनाओं के कारण भी चर्चा में रहता है।

भारत में नीति निर्माताओं के समक्ष सोशल मीडिया के दुरुपयोग को नियंत्रित करना एक बड़ी चुनौती बन चुकी है, लोगों द्वारा इस पर गंभीरता से विचार किया जा रहा है।

सोशल मीडिया और निजता का :–

वर्तमान परिदृश्य भारत को डिजिटल सेवाओं के लिए एक नवीन डिजाइन तैयार करने का अवसर प्रदान करते हैं, जिसमें व्यक्तिगत और राष्ट्रीय सुरक्षा दोनों का समावेश होता है। निजता संरक्षण डेटा संरक्षण से जुड़ा विषय है, क्योंकि जब कोई व्यक्ति किसी डिजिटल पहचान द्वारा इंटरनेट माध्यम का प्रयोग करता है, तो उस दौरान विभिन्न धाराओं का संग्रह तैयार हो जाता है, जिससे बड़ी आसानी से उपयोगकर्ता के निजी डेटा को प्राप्त किया जा सकता है।

अतः डेटा संरक्षण ढांचे के डिजायन में महत्वपूर्ण चुनौती डिजीटलीकरण के उपयोग से दीर्घकालिक रिकॉर्ड को सुरक्षित रखना तथा इसके साथ ही गोपनीयता को बनाए रखना है ।

भारत में प्रभावी डेटा संरक्षण के लिए डेटा नियामको के पदानुक्रम और एक मजबूत नियामक ढांचे की आवश्यकता होगी, जो डिजिटल सेटअप और आम सहमति के अलावा हमारे मूल अधिकारों की रक्षा कर सकें।

पिछले वर्ष भारतीय पर्यटन एवं यात्रा प्रबंध संस्थान ग्वालियर के अध्ययन में बताया गया कि भारत में आने वाले 89% पर्यटक सोशल मीडिया के जरिए ही भारत के बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं यहां तक कि इनमें से 18 फीसदी लोग तो भारत आने की योजना थी तब बनाते हैं, जब सोशल मीडिया से प्राप्त सामग्री इनके मन में भारत की अच्छी तस्वीर पेश करती है।

सोशल मीडिया ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार को नया आयाम दिया है। आज प्रत्येक व्यक्ति बिना किसी डर के सोशल मीडिया के माध्यम से अपना विचार रख सकता है और उसे हजारों लोगों तक पहुंचाया जा सकता है, परंतु सोशल मीडिया के दुरुपयोग ने इसे एक खतरनाक उपकरण के रूप में स्थापित किया है तथा इसके विनिमय की आवश्यकता लगातार महसूस की जा रही है।

अतः आवश्यक है की निजता के अधिकार का उल्लंघन किए बिना सोशल मीडिया के दुरुप्रयोग को रोकने के लिए सभी पक्षों के साथ विचार–विमर्श कर नए विकल्पों की खोज की जाए, ताकि भविष्य में इसके संभावित दुष्प्रभावों से बचा जा सके।

सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पहलुओं में कोई संदेह नहीं है, लेकिन उपयोगकर्ता को सोशल नेटवर्किंग के उपयोग पर अपने विवेकाधिकार का उपयोग करना चाहिए। एक छात्र के रूप में संपूर्ण जीवन जीने के लिए अध्ययन, खेल और सोशल मीडिया जैसे कार्यों में संतुलन बनाए रखना चाहिए।

सोशल मीडिया के उपभोक्ताओं में शामिल होने से पहले ध्यान से सकारात्मक और नकारात्मक पहलुओं की जांच कर लेनी चाहिए यदि सोशल मीडिया की सही तरीके से उपयोग किया जाए तो यह मानव जाति के लिए वरदान साबित हो सकता है।

मीडिया वालों को यह ध्यान रखना चाहिए कि जो वह दिखा रहे हैं, उसमें सच्चाई हो, झूठी बातें, अफवाह को नहीं दिखाना चाहिए, अपने कार्यक्रम के द्वारा किसी को मानसिक रूप से परेशान नहीं करना चाहिए, ऐसे कार्यक्रम दिखाना चाहिए, जिससे देश और समाज कुछ आगे बढ़ सके कुछ सीखें। सरकार को मास मीडिया और सोशल मीडिया पर पैनी नजर रखनी चाहिए। किसी भी गलत बात बेरंग प्रोग्राम को टेलीकास्ट नहीं होने देना चाहिए।

मीडिया एक ऐसा प्लेटफॉर्म बन चुका है, जो समाज में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है, उसको अपनी प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिए कुछ काम करना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः–

1. दृष्टि I.A.S. Swarn Suman BBC News
2. Book- Social Networking "कल आज और आज" राकेश कुमार (Rigi publication).
3. Social Media की भूमिका और प्रभाव– अमित कुमार विश्वास।
4. Social Media– हथियार और सिरदर्द – मानसी दाश।

वैदिक शिक्षा एवं आधुनिक शिक्षा का समन्वय
(शिक्षा पर राजनीति के प्रभाव के विशेष संदर्भ में)

अखिलेश कुमार द्विवेदी
एम.फिल. (राजनीति विज्ञान)
मो.नं. – 8871205133
RESEARCH SCHOLAR (POLITICAL SCIENCE)
Institution /Organization: APS UNIVERSITY
Address: REWA (M.P.)
Mobile No. : 8871205133
Email : akhilesh.dwivedi86@gmail.com

अवधारणात्मक विश्लेषण

वैदिक शिक्षा –

वैदिक शिक्षा भारत की सबसे प्राचीन शिक्षा व्यवस्था है। भारत में अतीत में सम्पूर्ण जगत में शिक्षा नाम की कोई चीज ही नहीं थी उस समय भारतीय समाज में वैदिक शिक्षा का प्रचलन था। वैदिक शिक्षा गुरूकुल पद्धति पर आधारित थी। शिष्य अपने गुरू के सानिध्य में रहकर शिक्षा प्राप्त किया करता था। यह शिक्षा न केवल सामाजिक थी बल्कि अस्त्र–शस्त्र, संगीत, राजनीति, ज्योतिष, न्याय शास्त्र, दर्शन शास्त्र, खगोल शास्त्र आदि विषयों पर आधारित थी।

भारत की प्राचीन शिक्षा प्रणाली व्यवहारिक जीवन की शिक्षा थी। वैदिक शिक्षा बाल केन्द्रित नहीं थी। वर्तमान में शिक्षा बाल केन्द्रित है। शिक्षा का उद्देश्य बालक को केन्द्र में रखकर तैयार किया जाता है। वह वैदिक काल में नहीं था। शिक्षा व्यक्ति का सामाजिक और राष्ट्रीय प्रगति के लिए अनिवार्य तत्व है। इस तथ्य को प्राचीन भारतीयों ने भलीभांति समझाया। इसी कारण भारतीय सभ्यता के प्रारम्भिक काल से ही भारत में शिक्षा की उचित व्यवस्था की गई थी। गुरू शिक्षार्थी को अपना सानिध्य देते थे और शिक्षा प्रदान किया करते थे। वैदिक शिक्षा भारत की अपनी मौलिक शिक्षा व्यवस्था थी।

भारतीय गुरूकुल में देश ही नहीं अपितु विदेश से आए हुए शिक्षार्थी भी शिक्षा ग्रहण किया करते थे। विदेशी यात्रियों ने भी अपनी पुस्तकों और वृत्तान्तों में यहॉ की शिक्षा व्यवस्था का ध्यानाकर्षण किया है। भारत में तक्षशिला, नालन्दा जैसे विश्वविद्यालय हुआ करते थे, जिसमें चाणक्य जैसे आचार्य का शिष्यों को सानिध्य मिलता था। माना जाता है कि तक्षशिला के

विद्यालय के प्रहरी भी प्राचीन भाषा संस्कृत में वार्तालाप किया करते थे। ऐसी श्रेष्ठ वैदिक शिक्षा गुरूकुल का प्रमाण कहीं और देखने को नहीं मिलता है।

भारत की प्राचीन शिक्षा प्रणाली व्यवहारिक जीवन की शिक्षा थी। वैदिक शिक्षा बाल केन्द्रित नहीं थी। वर्तमान में शिक्षा बाल केन्द्रित है। शिक्षा का उद्देश्य बालक को केन्द्र में रखकर तैयार किया जाता है। वह वैदिक काल में नहीं था। शिक्षा व्यक्ति का सामाजिक और राष्ट्रीय प्रगति के लिए अनिवार्य तत्व है। इस तथ्य को प्राचीन भारतीयों ने भलीभांति समझाया। इसी कारण भारतीय सभ्यता के प्रारम्भिक काल से ही भारत में शिक्षा की उचित व्यवस्था की गई थी। गुरू शिक्षार्थी को अपना सानिध्य देते थे और शिक्षा प्रदान किया करते थे।

आधुनिक शिक्षा –

किसी भी राष्ट्र अथवा समाज की उन्नति उस देश की शिक्षा पर आधारित होती है, क्योंकि शिक्षा के माध्यम से ही उस देश के नागरिकों को सर्वांगीण विकास होता है। भारत की वर्तमान शिक्षा प्रणाली को परतन्त्रकालीन शिक्षा प्रणाली माना जाता है। ब्रिटिश प्रतिरूप पर आधारित होने के कारण जिसे सन् 1835 ई. में लागू किया गया। जिस तीव्रगति से भारत के सामाजिक, राजनैतिक व आर्थिक परिदृश्य में बदलाव आ रहा है उसे देखते हुए यह आवश्यक है कि हम देश की शिक्षा प्रणाली की पृष्ठभूमि, उद्देश्य चुनौतियों तथा संकट पर गहन अवलोकन करें।

सन् 1835 ई. में जब वर्तमान शिक्षा प्रणाली की नींव रखी गई थी तब लार्ड मैकाले ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि अंग्रेजी शिक्षा का उद्देश्य भारत में प्रशासन के लिए विचौलियों की भूमिका निभाने तथा सरकारी कार्य के लिए भारत के विशिष्ट लोगों को तैयार करना है।

इसके परिणामस्वरूप एक सदी तक अंग्रेजी शिक्षा को प्रयोग में लाने बाद भी 1935 ई. में भारत की साक्षरता दस प्रतिशत् के आंकड़े को भी पार नहीं कर पाई। स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय भारत की साक्षरता मात्र तेरह प्रतिशत ही थी। इस शिक्षा प्रणाली ने उच्च वर्गो को भारत के शेष समाज में पृथक रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। ब्रिटिश समाज में बींसवीं सदी तक मानना था कि श्रमिक के बच्चों को शिक्षित करने का तात्पर्य है उन्हे जीवन में अपने कार्य के लिए अयोग्य बना देना। ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली ने निर्धन परिवारों के बच्चों के लिए इसी नीति का अनुपालन किया। लगभग पिछले 200 वर्षो की भारतीय शिक्षा प्रणाली के विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि यह शिक्षा नगर तथा उच्चवर्ग केन्द्रित श्रम तथा बौद्धिक कार्यो से रहित थी। इसकी बुराइयों को सर्वप्रथम गांधी जी ने 1917 ई. में गुजराज एजुकेशन सोसाइटी के सम्मेलन में उजागर किया तथा शिक्षा में मातृ भाषा के स्थान और हिन्दी के पक्ष को राष्ट्रीय स्तर पर तार्किक ढंग से रखा।

जब इस देश में अंग्रेजी राज फैलने लगा उस समय ऐसा नही था कि यहाँ शिक्षा का प्रसार न रहा हो। मुस्लिम राज्य काल में फारसी उत्तर भारत में काफी प्रचलित हो गई थी और फारसी के मदरसे उत्तर भारत के प्रायः सभी नगरों में काम कर रहे थे। जगह–जगह धनी–मानी लोग अपने घरों पर भी मौलवी रखा करते थे जो फारसी पढ़ाते थे। इसके सिवा संपूर्ण देश में संस्कृत–टोल और पाठशालाएँ भी काम करती थी। यही नही नगरों और गावों में रहने वाले प्रत्येक पंडित का घर छोटी–मोटी पाठशाला होता था। तात्कालीन संस्कृत विद्यालय आज की तरह सुसंगठित तो नही थे। किन्तु उनकी संख्या काफी अच्छी थी और प्राथमिक

पाठशालाओं की संख्या बहुत अधिक थी जिनमें पढ़–लिखकर लोग व्यवहारिक कामकाज में लग जाते थे। इनके सिवा उच्च विद्यालय भी थे जिनका उद्देश्य न्याय, व्याकरण, दर्शन साहित्य और ज्योतिष तथा आयुर्वेद की उच्च शिक्षा देना था। तत्कालीन शैक्षणिक स्थिति पर एडम की जो रिपोर्ट निकली थी उसमें कहा गया था कि बंगाल बिहार में हर चार सौ व्यक्तियों पर एक स्कूल था। सन् 1821 ई. में मद्रास के गवर्नर सर टॉमस मुनरो ने जो जाँच करवाई थी उससे यह पता चलता था कि मद्रास की सवा करोड़ जनसंख्या में से कोई दो लाख लोग विद्यालय में पढ़ रहे थे। श्री एम.आर परान्जपे ने लिखा है कि उस समय मद्रास के प्रत्येक गांव में एक स्कूल था।

अध्ययन के उद्देश्य –

प्रस्तुत शोध–पत्र का उद्देश्य निम्न है –

1. वैदिक शिक्षा से परिचित होना।
2. वैदिक शिक्षा के प्रभाव को जानना।
3. आधुनिक शिक्षा के विकास में वैदिक शिक्षा के योगदान को समझना।
4. इस बात का ऑकलन करना कि वैदिक काल से लेकर आज तक शिक्षा में क्या–क्या परिवर्तन हुए हैं।
5. वैदिक शिक्षा एवं आधुनिक शिक्षा का तुलनात्मक अध्ययन करना।

अध्ययन की सीमाएँ –

प्रस्तुत शोध भारत वैदिक कालीन शिक्षा एवं आधुनिक शिक्षा के समन्वय का अध्ययन है। अतः यह भारतीय शिक्षा व्यवस्था के विभिन्न आयामों राजनीतिक प्रभाव तक पर सीमित है।

शोध प्रतिधि –

प्रस्तुत शोध समाज वैज्ञानिक है। इस शोध में प्राथमिक आंकड़ों का उपयोग किया गया है। अतः प्रस्तुत शोध को पूरा करने के लिए पत्र–पत्रिकाओं, पुस्तकें एवं नियतकालिक लेखों के द्वारा आंकड़ों को जुटाया गया एवं विषय का अध्ययन किया गया।

शिक्षा पर राजनीति का प्रभाव :–

दुनिया में भारत पहला देश है जहाँ शिक्षा राजनीति का शिकार है। कभी प्रबन्धतंत्र के स्तर पर, कभी शिक्षक के स्तर पर, कभी छात्र के स्तर पर और कभी दोनों के स्तरों पर। भारत में शिक्षा के कई स्तर हैं। एक, दो, तीन और इससे ज्यादा भी। यहाँ शैक्षणिक संस्थाएँ जातिगत आधार पर चलती है। अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक के आधार पर विभाजन सरकार की नीति का ही परिणाम है। जब संस्थाओं की निर्मित ही विभाजन के आधार पर हो तो शिक्षा का भविष्य क्या ?

शिक्षा सीधे तौर पर समाज से जुड़ी होनी चाहिए परन्तु हमारे शिक्षा में समाज के आवश्यक और वैकल्पिक प्रश्नों के लिए कोई पाठ्यक्रम नहीं है। ऐसे पाठ्यक्रम जो समाज के लिए पोषक हो यहाँ पाठ्यक्रम में सोती सुन्दरी है उसके सोने के बाल एक राजकुमार है जो सोती सुन्दरी को छूता है। पा लेता है। एक ओर ज से जहाज है। दूसरी ओर ज से जमाखोर

विसंगति यह है कि जमाखोर की जरूरत वाले विद्यार्थी को जहाज और जहाज की जरूरत वाले विद्यार्थी को जमाखोर पढ़ाया जाता है।

शिक्षा आर्थिक युग का पूरा–पूरा लाभ उठा रही है वह भी बट गई है। कई स्तरों पर म्युनिसिपल स्तर पर, कान्वेन्ट स्तर पर, सिटी मान्टेंसरी स्तर पर, क्लैस स्तर पर और सेन्ट्रल बोर्ड स्तर पर। हमारी शिक्षा रंगीन सपने बेचती है। कल्पना बेचती है। हम अभी तक अतीत की शिक्षा दे रहे हैं। जो आज हमारे लिए अधूरी है, अपर्याप्त है। वह मात्र रोजी–रोटी की शिक्षा देती है। अर्न्तदृष्टि नही देती है। रोजी–रोटी के लिए मिलने वाली शिक्षा प्रतिस्पर्धात्मक होती है। परंतु प्रतिस्पर्धात्मक शिक्षा में स्वार्थ व ईर्ष्या का समावेश हो जाने पर वह आत्मघाती हो जाती है। प्रतिस्पर्धा में प्रायः निहित हो रही है। आज यह पाना येन–केन–प्रकारेण हो गया है इसके लिए आदमी–आदमी, प्रतियोगी–प्रतियोगी आपस में संघर्ष कर रहे हैं। इससे मैत्रीभाव समाप्त हो जाता है। आनन्द मर जाता है। हमारी शिक्षा में सीखना महत्वपूर्ण नही है। महत्वपूर्ण है परीक्षा में उत्तीर्ण होना। दो वर्ष के सीखे को, पढ़े को मात्र 35 मिनट में लिखना, 35 मिनट के लिखे को 5 मिनट में जाँचना फिर जाँचते समय कार्य करते हैं और भी कई प्रभाव परीक्षक का मूड, परीक्षक का बौद्धिक वर्गवाद। यदि परीक्षक की उस विषय पर पुस्तक है तो छात्र ने उसे पढ़ा–लिखा है या नहीं। हमारी शिक्षा भविष्य के बेदी पर कभी वर्तमान की बलि चढ़ाती है तो कभी वर्तमान की बेदी पर भविष्य की यानि हमारी शिक्षा में उत्सर्ग जरूरी है। पाया–खोया का सिद्धान्त आवश्यक है।

निष्कर्ष :–

हमारा लक्ष्य जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को आदर्श बनाना है। वैदिक शिक्षा, वैदिक स्वास्थ्य, वैदिक कृषि, वैदिक सुरक्षा, वैदिक पर्यावरण, वैदिक प्रशासन, वैदिक विधि एवं न्याय, वैदिक सरकार, वैदिक व्यापार तथा उद्योग एवं वास्तविकता में सब कुछ वैदिक। इससे प्रत्येक जीवन आदर्श बनेगा और यह भारत को आदर्श भूतल पर स्वर्ग सा भारत रामराज्य बनाएगा जहाँ कोई भी व्यक्ति किसी कारण से कष्ट नही पाएगा। यह हमारी योजना है और हम इसे अत्यंत शीघ्रता से अपने सामर्थ्य अनुसार पूरा करने में कोई कसर नहीं छोड़ेंगे।

ज्ञान की बौद्धिक खोज को संतृप्त एवं पूर्ण करने के लिए जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वैदिक ज्ञान को उल्लिखित किया गया है। वैदिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मनुष्य का चरित्र निर्माण है जो व्यक्ति जीवन में बुरे कार्य करता है। वह अपने माता–पिता, आचार्य व कुल को दूषित करता है। आजकल तो ऐसे दूषित कार्य साधारण लोग नही अपितु धर्मात्मा व महात्मा कहलाने वाले लोग कर रहे हैं। ऐसी वर्तमान शिक्षा, सामाजिक वातावरण विदेशी मूल्यों व मान्यताओं को प्राथमिकता तथा कुछ अन्य कारणों से है। इन कारणों को दूर करने का एक ही उपाय वैदिक शिक्षा का वर्तमान शिक्षा में पूर्ण समावेश करना है। ऐसा करके मनुष्य के चरित्र निर्माण सहित देशोन्नति का लक्ष्य तो प्राप्त होगा ही साथ ही मनुष्य अपने जीवन के लक्ष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को भी प्राप्त करने में आगे बढ़ेगा।

भारत में शिक्षा का अधिकार कानून एक अप्रैल 2010 से लागू किया गया है। इसके दस साल पूरे होने को हैं इसके तहत 6–14 वर्ष तक के बच्चों को अनिवार्य एवं मुफ्त शिक्षा का प्रावधान किया गया है। शिक्षा की स्थिति खराब होने का एक कारण शिक्षा में बहुत गहरे तक

घुसी हुई राजनीति भी है। हर फैसले में राजनीति होती है। जहाँ राजनीति होती, वहाँ बाकी नीतियाँ होती हैं। कभी आठवीं तक फेल नहीं करने की नीति लागू होती है तो कभी उसे हटा दिया जाता है। ऐसे ही निर्णय पाठ्यक्रम को लेकर लागू किए जाते हैं। आखिर कब तक शिक्षा जैसे बुनियादी विषयों पर राजनीति होती रहेगी? अगर सरकारी स्कूलों में पढ़ाई का स्तर ऊपर उठाना है तो उसके लिए सबसे पहले सरकार को, समाज को शिक्षकों को, अभिभावकों को एवं शिक्षार्थियों को भी स्वयं शिक्षा के प्रति अपना नजरिया बदलना चाहिए। शिक्षा से संबंधित बड़े फैसलों में शिक्षकों के विचारों को जगह देनी चाहिए एवं समाज को उनके साथ खड़े रहना चाहिए। शिक्षा में सुधार संभव है लेकिन नजरिया बदलने की जरूरत है।

सुझाव :–

वैदिक कालीन शिक्षा एवं आधुनिक शिक्षा में समन्वय और राजनीति का शिक्षा पर प्रभाव विषय का अध्ययन करने पर जो तथ्य सामने आए उनके सही प्रयोग के लिए निम्न सुझाव इस प्रकार हैं –

1. वैदिक कालीन शिक्षा भारतीय शिक्षा व्यवस्था की आधार है जिसका संबंध हमारे आज के आधुनिक शिक्षा से अभी भी है। जिसके उत्थान के लिए प्रयास किए जाने चाहिए।
2. आधुनिक शिक्षा संस्कार विहीन होती जा रही है। जिसका परिणाम भारतीय मान्यताओं से परे है। अतः वैदिक शिक्षा को जोड़ना परमावश्यक है।
3. भारतीय शिक्षा पर राजनीति के प्रभाव को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय शिक्षा व्यवस्थाा पूरी तरह से चरमरा गई है। शिक्षा के उद्देश्य की पूर्ति नही हो पा रही है। अतः राजनीति के प्रभाव को पूरी तरह से खतम करने के प्रबन्ध करने चाहिए।

शोध सन्दर्भ ग्रंथ :–

1. सिंह डॉ. वीरेन्द्र कुमार, 2002, प्राचीन भारतीय संस्कृति, अक्षयवट प्रकाशन, एकेडमी, प्रेस दारागंज, इलाहाबाद।
2. रामधारी सिंह 'दिनकर', 2014, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, दरबारी बिल्डिंग महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद।
3. उपाध्याय आचार्य बलदेव, 2001, संस्कृत साहित्य का इतिहास, शारदा निकेतन पाँच–बी कस्तूरबा नगर, सिगरा, वाराणसी।
4. द्विवेदी डॉ. कपिल देव, 2004, संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, रामनारायण लाल, विजय कुमार
   अनिल प्रिंटर्स 19 बी/13, एल्गिन रोड इलाहाबाद।

पाण्डेय पं. चन्द्रशेखर एवं व्यास, डॉ. शान्ति कुमार नानूराम, 2001, संस्कृत साहित्य की रूपरेखा साहित्य निकेतन, शिवाला रोड गिलिस बाजार, कानपुर।

आधुनिक शिक्षा प्रणाली में चारित्रिक विकास का विलापन

आकांक्षा सिंह

शोधछात्रा (शिक्षाशास्त्र)
शिक्षक शिक्षा संकाय
नेहरू ग्राम भारती मानित विश्वविद्यालय,
प्रयागराज (उ0प्र0)

आधुनिक शिक्षा प्रणाली में व्यवहारिक भाग के बजाय सैद्धांतिक भाग पर जोर दिए जाने के कारण चारित्रिक विकास का हास् देखा जा सकता है, परंतु चारित्रिक विकास शिक्षा का एक विशेष पहल होने के साथ देश वासियों के चरित्र निर्माण की आधारशिला है। राष्ट्र की उन्नति और विकास का तभी संभव है जब मनुष्य चारित्रिक विकास कर सच्चाई, ईमानदारी, दया, धर्म एवं नैतिकता के मार्ग पर प्रशस्त हो। आधुनिक शिक्षा के द्वारा सिर्फ पैसा कमाने पर जोर देने का बजाय चारित्रिक विकास पर भी ध्यान दिया जाता रहे, जिससे राष्ट्र में प्रेम सौहार्द बनाए रखने में आधुनिक शिक्षा प्रणाली का विशेष योगदान रहे।

प्रस्तावना

आधुनिक शिक्षा प्रणाली समय के साथ विकसित हुई और पश्चिमी प्रणाली से प्रभावित है यह प्रौद्योगिकी में बदलाव और प्रगति से प्रभावित हुई है इस शिक्षा प्रणाली में ई बुक, वीडियो, व्यख्यान वीडियो, चैट 3डी, इमेजरी आदि तकनीक शामिल है, इसमें कोई संदेह नहीं है कि आधुनिक शिक्षा प्रणाली तकनीकी विकास को शामिल करने के लिए विकसित हुई है, इस शिक्षा प्रणाली के एक मात्र कमी यही है कि व्यवहारिक भाग के बजाय सैद्धांतिक भाग पर जोर दिया जाता है, जब प्रतिधारण, समझ और अवसरों की बात आती है तो कोई इंकार नहीं कर सकता कि आधुनिक शिक्षा अधिक प्रभावी है, लेकिन दूसरे पहलु को ध्यान दिया जाये तो शिक्षा का वास्तविक अर्थ होता है कुछ सीख कर अपने को पूर्ण बनाना , किसी भी राष्ट्र अथवा समाज में शिक्षा समाजिक नियन्त्रण, चरित्रिक विकास तथा सामाजिक व आर्थिक प्रगति का मापदंड होती है।

''हम वैदिक कालीन शिक्षा की आदर्शवादिता को आधुनिक शिक्षा के एक मूल सिद्धांत के रूप में ग्रहण कर सकते हैं और जीवन–निर्माण, चरित्र निर्माण तथा सादा भोजन और उच्च विचार को शिक्षा के महत्वपूर्ण उद्देश्यों में स्थान दे सकते हैं।''
(डॉ0 महेश चन्द्र सिंघल)
('' भारतीय शिक्षक की वर्तमान समस्याएँ '' पुस्तक,)
केवल गायत्री मंत्र का ज्ञान रखने वाला चरित्रवान, ब्राह्मण, संपूर्ण वेदों का ज्ञाता पर चरित्रहीन विद्वान से कहीं अधिक श्रेष्ठ है।

(मनुस्मृति)

'' छात्रों का चरित्र निर्माण करना, शिक्षा का एक अनिवार्य उद्देश्य माना जाता था।

'' डॉ0 वेद मित्र ''

'' भारत सहित सारे संसार के कष्टों का का कारण यह है कि शिक्षा का संबंध नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों के प्राप्ति से न रहकर केवल मस्तिष्क के विकास से रह गया है।''

'' राधाकृष्णन ''

एक बार गांधी जी से पूछा गया कि– ''जब भारत स्वतंत्र हो जाएगा तब आपकी शिक्षा का क्या उद्देश्य होगा ? उनका उत्तर था – चरित्र निर्माण''।

'' गांधी जी ''

''मनुष्य की सबसे बड़ी आवश्यकता और सबसे बड़ा रक्षक चरित्र है, शिक्षा नहीं ''।

'' स्पेन्सर''

आधुनिक शिक्षा प्रणाली का स्वरूप

आधुनिक शिक्षा प्रणाली में सबसे बड़ी कमी यह है कि यह विद्यार्थियों के चरित्र का निर्माण करने के बजाय उसका नाश कर देती है, और नवयुवकों को जीवन के आरंभ से ही काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर का दास बना देती है। इसी का परिणाम है कि जब बीस–पच्चीस वर्ष की आयु में आजकल के विद्यार्थियों बी.ए., एम.ए., की डिग्रियों को लेकर लेकर जीवन क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। तो वे प्रायः निर्बल, निस्तेज और अनेक प्रकार के आधि–व्याधि के शिकार दिखाई पड़ते हैं। प्राचीन समय छात्र चौबीस–पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करके और हर तरह की कठोर जीवन को सहन करके पूर्ण शक्ति और उत्साह के साथ जीवन संग्राम में पदार्पण करते थे और आत्मविश्वास के साथ प्रत्येक परिस्थिति का सामना करने को प्रस्तुत रहते थे। यही दोनों प्रणालियों का सर्व प्रधान अंतर है।

आधुनिक शिक्षा प्रणाली तकनीकी विकास को शामिल करने के लिए विकसित हुई है, इस शिक्षा प्रणाली के एक मात्र कमी यही है कि व्यवहारिक भाग के बजाय सैद्धांतिक भाग पर जोर दिया जाता है, जब प्रतिधारण, समझ और अवसरों की बात आती है तो कोई इंकार नहीं कर सकता कि आधुनिक शिक्षा अधिक प्रभावी है।

सद्विचारों और सत्कर्मों की एकरूपता ही चरित्र है। जो अपनी इच्छाओं को नियंत्रित रखते है। और उन्हें सत्कर्मों का रूप देते हैं उन्हीं को चरित्रवान कहा जा सकता है। सयंत इच्छाशक्ति से प्रेरित सदाचार का नाम ही चरित्र है, चरित्र मानव जीवन की स्थाई निधि है, जीवन की स्थाई सफलता का आधार मनुष्य का चरित्र ही है। चरित्र मानव जीवन की स्थाई निधि है। सेवा, दया, परोपकार, उदारता, त्याग, शिष्टाचार और सद्व्यवहार आदि चरित्र के बाह्य अंग है जो सद्भाव, उत्कृष्ट चिंतन, नियमित–व्यवस्थित जीवन, शांत–गंभीर मनोदशा चरित्र के परोक्ष अंग है, तो किसी व्यक्ति के विचार, इच्छाएं, आकांक्षाएं और आचरण जैसे होगा, उन्हीं के अनुरूप चरित्र का निर्माण होता है। लेकिन आधुनिक युग में उत्तम चरित्र ह्रास है। उत्तम चरित जीवन के सही दिशा में प्रेरित करता है, चरित्र निर्माण में साहित्य का बहुत ही महत्व है जो विचारों को दृढ़ता व शक्ति प्रदान करने वाला साहित्य आत्म निर्माण में में बहुत योगदान करता है। इससे आंतरिक विशेषताएं जागृत होती है।

आधुनिक शिक्षा व्यवस्था उचित नहीं क्यों ? और विकल्प

भारत की प्राचीन शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बालक का नैतिक विकास और चरित्र निर्माण था, लेकिन आधुनिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य धनोपार्जन करना हो गया है। जिससे देश में अनेकों विकृतियां उत्पन हो गई हैं।

प्राचीन युग में भारती दार्शनिकों का अटल विश्वास था कि केवल लिखना पढ़ाना ही शिक्षा नहीं है, वरन नैतिक भावनाओं को विकसित करके चरित्र निर्माण करना परम आवश्यक है।

मनुस्मृति में लिखा है कि–

'' ऐसा व्यक्ति जो सद्चरित्र हो चाहे उसे वेदों का ज्ञान भले ही कम हो, उस व्यक्ति से कही अच्छा है जो वेदों का पंडित होते हुए भी शुद्ध जीवन व्यतीत न करता हो ''।

अतः प्रत्येक बालक के चरित्र का निर्माण करना उस युग में आचार्य का मुख्य कर्तव्य समझ समझा जाता था। इस संबंध में प्रत्येक पुस्तक के पन्नों पर सूत्र रूप में चरित्र संबंधी आदेश लिखे रहते थे, तथा समय–समय पर आचार के द्वारा नैतिकता के आदेश भी दिए जाते थे। बालकों के समक्ष राम, सीता, लक्ष्मण तथा हनुमान आदि महापुरुषों के उदाहरण प्रस्तुत किए जाते थे। कहने का तात्पर्य यह है कि प्राचीन भारत की शिक्षा का वातावरण चरित्र–निर्माण सहयोग प्रदान करता था।

सद्चारों और सत्कर्मो की एकरूपता ही चरित्र है। जो अपनी इच्छाओं के नियंत्रित रखते हैं, और उन्हें सत्कर्मो का रूप देते हैं। उन्हीं को चरित्रवान कहा जाता है। संयत इच्छाशक्ति से प्रेरित सदाचार का नाम ही चरित्र है। चरित्र मानव जीवन की स्थाई निधि है। जीवन की स्थाई सफलता का आधार मनुष्य का चरित्र ही है।

स्वामी विवेकानंद ने कहा है कि–''प्रत्येक मनुष्य जन्म से ही दैवीय गुणों से परिपूर्ण होता है। ये गुण सत्य, निष्ठा, समर्पण, साहस एवं विश्वास से जागृत होते है। इनको अपने आचरण में लाने से व्यक्ति महान एवं चरित्रवान बन सकता है। मनुष्य को महान बनने के लिए संदेह, इर्ष्या एवं द्वेष छोड़ना होगा।''

स्वामी विवेकानंद जी ने चरित्र निर्माण के 5 सूत्र दिये–''आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता, आत्मज्ञान, आत्मसंयम और आत्मत्याग''।

गांधी जी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि ''मैंने सदैव हृदय की संस्कृति अथवा चरित्र निर्माण को प्रथम स्थान दिया है, तथा चरित्र निर्माण को शिक्षा का उचित आधार माना है।

आचार्य नरेंद्र देव ने लिखा–

''सामाजिक संगठन में बिना महान परिवर्तन किए हमारा जिंदा रहना भी कठिन है। समाज के प्रश्न धर्म के दामन में मुंह छुपाने से हल न होगे, समाज की उन्नति करने का एक वैज्ञानिक तरीका है, उसको अपनाना होगा। पोंप का शासन फिर से प्रतिष्ठित नहीं किया जा सकता है। हां उसको प्रभाव का दुरूपयोग प्रतिक्रियावादी शक्तियॉ आज भी कर रही है। इस आधुनिक युग में रहस्यवाद की प्रतिष्ठा करना कठिन है। विज्ञान का सद्पयोग कीजिए, समाज मे आदर्श की प्रतिष्ठा के लिए मनुष्य के चरित्र की ओर ध्यान दीजिए न कि आधुनिकता को

छोड़ कपोल कल्पित बातों का फिर से जिंदा कीजिए। मनुष्य के चरित्र पर उसकी परिस्थितिं का प्रभाव अवश्य पड़ता है। किंतु ब्यक्तिगत चरित्र के गठन की ओर भी ध्यान देना चाहिए।

निष्कर्ष

आधुनिक युग वैज्ञानिक युग है, यहां इस बात पर बल दिया गया है कि भावी पीढ़ी के चरित्र का निर्माण करना एक महत्वपूर्ण उद्देष्य अथवा कार्य है। हमें आधुनिक युग के साथ चलते हुए नए आदर्शो की प्रतिष्ठा करनी होगी और मनुष्य के चरित्र निर्माण अथवा विकास करना होगा। मनुष्य के चरित्र का निर्माण अथवा विकास करते समय हमें यह ध्यान रखना होगा कि चरित्र के निर्माण पर विद्यमान परिस्थिति का प्रभाव अवश्य पड़ता है। अतः चरित्र निर्माण का कार्य प्रारंभ करने से पूर्व हमें वर्तमान परिस्थितियों पर भी शोध करना होगा।

चरित्र निर्माण को योजना बनाते समय हमें व्यक्तिगत चरित्र के गठन की ओर विशेष ध्यान देना होगा, क्योंकि चरित्रवान व्यक्ति ही समाज का सच्चा नेतृत्व कर सकते हैं। यह सत्य है कि सामाजिक प्रणालियॉ भी कम महत्वपूर्ण नहीं होती। किंतु आवश्यकता यह है कि अच्छी सामाजिक प्रणालियॉ भी स्वतः कुछ नहीं कर सकती। सामाजिक प्रणाली तभी सर्व हितकर हो सकती है जब उसको कार्यान्वित करने वाले व्यक्ति चरित्रवान और शिक्षित भी हो।

संदर्भ ग्रन्थ सूचीः–

आचार्य नरेंद्र देव
गुरु सरण दास त्यागी
(भारत में शिक्षा का विकास)
जे0 सी0 अग्रवाल
(उदीयमान भारतीय समाज में शिक्षा

वैदिक शिक्षा एवं आधुनिक शिक्षा का समन्वय
(शिक्षा एवं संस्कृति के विशेष संदर्भ में)

अरूण कुमार शुक्ल

शोध छात्र (संस्कृत)
APS UNIVERSITY, REWA (M.P.)
Mobile No. : 9754583873

अवधारणात्मक विश्लेषण

वैदिक शिक्षा का स्वरूप –

प्रत्येक व्यक्ति अपने ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा विषयों के साक्षात्कार के अनन्तर आवश्यकतानुसार विभिन्न जीवन व्यवहार के लिए कर्मेन्द्रियों का प्रयोग करता है। इस इन्द्रिय प्रयोग के अवसर पर सुख एवं दुख के अनुभूति के अनुसार जीवन व्यवहार की शिक्षा ग्रहण करना प्रत्येक प्राणी का स्वभाव है। शिक्षा ग्रहण की यह प्रवृत्ति मानव जीवन में विशेष रूप से दृष्टिगोचर होती है, क्योंकि मानव में चेतना का सर्वाधिक विकास हुआ है उसमें शैशव काल से ही सतत् शिक्षा ग्रहण करने की यह प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है।

वैदिक शिक्षा –

वैदिक शिक्षा प्रणाली की खास विशेषता थी गुरूकुल प्रणाली छात्रों को शिक्षा के पूरे काल के लिए शिक्षक और उनके परिवार के साथ रहना आवश्यक था कुछ गुरूकुल एकान्त वन क्षेत्रों में होते थे लेकिन सिद्धांत एक ही था विद्यार्थियों को गुरू और उनके परिवार के साथ रहना होता था यह प्रणाली लगभग 2500 वर्षो तक यथावत चलती रही पाठशालाओं तथा शिक्षण संस्थाओं का विकास बहुत बाद में हुआ।

वैदिक शिक्षा का उद्देश्य –

शिक्षा के उद्देश्य का पहला उल्लेख ऋगवेद के 10वें मण्डल में पाया जाता है। इस मण्डल के सूक्त में कहा गया है कि विद्या का उद्देश्य वेदों तथा कर्मकाण्ड के ज्ञान के अतिरिक्त समाज में सम्मान प्राप्त करना, सभा समिति में बोलने में सक्षम होना, उचित–अनुचित का बोध आदि में इससे प्रतीत होता है कि पूर्व वैदिक युग में शिक्षा के उद्देश्य व्यवहारिक थे बाद में उपनिषद् काल में ज्ञान का उद्देश्य अधिक सूक्ष्म हो गया। विद्या को दो भागों में बाँटा गया – परा और अपरा। अपरा विद्या में प्रायः समस्त पुस्तकीय तथा व्यवहारिक ज्ञान आ गया। केवल ब्रम्ह विद्या को परा विद्या माना गया है। परा विद्या श्रेष्ठ मानी गयी है क्योंकि उससे मोक्ष की प्राप्ति होती है। मोक्ष शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य हो गया। कहा गया है कि ''सा विद्या या

विमुक्तये'' क्योंकि मोक्ष सभी के लिए साध्य नही हो सकता। प्रसिद्ध विद्वान ए. यस अल्तेकर ने वैदिक शिक्षा के व्यवहारिक उद्देश्य बताये है जो निम्नांकित है –

1. चरित्र का निर्माण करना।
2. व्यक्तित्व का विकास करना।
3. कार्यक्षमता एवं नागरिक जिम्मेदारी का विकास करना।
4. विरासत एवं संस्कृति का संरक्षण करना।

वैदिक शिक्षा का पाठ्यक्रम –

समय क्रम में वैदिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में निम्नांकित विषयों का समावेश हुआ –

1. संहिता
2. ब्राम्हण
3. आरण्यक
4. उपनिषद्
5. वेदांग
6. षट् दर्शन

वैदिक कालीन शिक्षकः –

जब लिखित पुस्तकें नही थी तो गुरू ज्ञान का एकमात्र स्त्रोत था इसलिए प्राचीन ग्रंथों में गुरू की बडी महिमा बतायी गई है –

अखण्ड मण्डलाकारं प्याप्तं येन चराचरम्।
तत् पदं दर्शितं येन तस्में श्री गुरूवे नमः।।

अथर्ववेद के ब्रम्हचर्य सूक्त का उल्लेख किया गया है। जिसके अनुसार गुरू की आज्ञा मानना हर परिस्थिति में अनिवार्य था।

वैदिक कालीन छात्रः –

वैदिक युग की शुरूआत को छोंड़ दे ंतो बाद में प्रायः शिक्षा तीन उच्च वर्णो पुरूषों तक ही सीमित थी। शूद्रों एवं स्त्रियों के प्रवेश गुरूकुलों निषिद्ध था। यह कदाचित वैदिक शिक्षा की सबसे बड़ी कमी थी पर जो छात्र गुरूकुलों में स्थान पाने के अधिकारियों उनको प्रवेश अवश्य मिलता था चाहे वे कितने निर्धन हो कोई शिक्षण शुल्क नहीं होने कारण हर किसी को प्रवेश मिल सकता था सभी छात्र को एक तरह से सादा जीवन जीना पड़ता था चाहे उनके माता–पिता कितने धनी या प्रभुत्वसंपन्न ही क्यो न हो। छात्र को कुछ शारीरिक श्रम करना पड़ता था। गुरू आज्ञा सब प्रकार से मान्य थी।

वैदिक कालीन शिक्षण विधिः –

प्रत्येक छात्र को व्यक्तिगत तौर से पढ़ाया जाता था अर्थात् गुरू एक बार में एक छात्र को पढ़ाते थे छात्र को एक दिन में दो या तीन वैदिक ऋचायें याद करनी होती छात्र को गुरू के निर्देश के अनुसार शब्दों का सही उच्चारण करना होता था और ऋचाओं को ठीक उसी ढंग से बोलना या गायन करना होता जो परंपरागत थी। अध्ययन मौखिक या लिपि का विकास होने के बाद भी वैदिक मंत्रो का मौखिक अध्यापन जारी रहा क्योंकि उच्चारण और गायन की मूल परंपरा का मौखिक रूप में पूरी तरह सुरक्षित रखा जा सकता था। याद करके

सीखने का तरीका केवल वैदिक संहिताओं के लिए प्रयोग होता था अन्य विषयों को पढ़ाने के लिए व्याख्यान प्रश्नोत्तर, शास्त्रार्थ इत्यादि विधियों का प्रयोग होता था।

विद्या का उद्देश्य वेदों तथा कर्मकाण्ड के ज्ञान के अतिरिक्त समाज में सम्मान प्राप्त करना, सभा समिति में बोलने में सक्षम होना, उचित–अनुचित का बोध आदि में इससे प्रतीत होता है कि पूर्व वैदिक युग में शिक्षा के उद्देश्य व्यवहारिक थे बाद में उपनिषद् काल में ज्ञान का उद्देश्य अधिक सूक्ष्म हो गया।

विद्या को दो भागों में बाँटा गया – परा और अपरा। अपरा विद्या में प्रायः समस्त पुस्तकीय तथा व्यवहारिक ज्ञान आ गया। केवल ब्रम्ह विद्या को परा विद्या माना गया है।

वैदिक कालीन अनुशासनः –

व्यक्तिगत नैतिकता और अच्छे आचरण पर जोर उपनयन से ही आरंभ हो जाता था। विद्यार्थी से आत्मानुशासन की उम्मीद की जाती थी। आत्मानुशासन शिक्षा का अभिन्न अंग था। शिक्षक के परिवार में रहने के कारण छात्रों पुत्रवत आचरण करना होता था गुरू अपने चरित्र और आचरण द्वारा उचित आदर्श छात्रों के समक्ष प्रस्तुत करता था। इन सभी कारणों से दण्ड अनुशासन के लिए आवश्यक नही फिर भी मानव प्रकृति के अनुसार छात्र कभी–कभी अनुशासन भंग करते थे इस दशा में मनु ने गुरू को सलाह दी थी कि वह छात्र को समझा–बुझाकर सही रास्ते पर लाये।

आधुनिक शिष्यः –

शिक्षा सीखने की वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम अपने जीवन को ऊँचाइयों पर ले जाते हैं। चाहे किसी भी प्रकार की परिस्थितियॉ हों शिक्षा के द्वारा उसका हल बहुत आसानी से निकाला जा सकता है। हमारे व्यक्तित्व में सुधार आता है इससे बौद्धिक क्षमता बढ़ती है। यह सामाजिक विकास और आर्थिक उन्नति का आधार है लेकिन क्या हम शिक्षा को सही अर्थो में अपने जीवन के साथ जोड़कर मानव के उत्थान के रूप में देख पा रहे हैं। या फिर शिक्षा सिर्फ पैसे कमानें का साधन है।

स्वतंत्रता से पूर्व सरकार के विधि सदस्य लार्ड मैकाले ने अंग्रेजी शिक्षा का समर्थन किया। उनके अनुसार देश में एक ऐसा वर्ग बनाया जाये जिससे शासन ठीक प्रकार किया जा सके। इसके लिए उसने निचले स्तर में नौकरी के लिए अंग्रेजी भाषा को अपनाने का मार्ग बताया। इस प्रकार लार्ड विलियम ने 1837 ई. में 1837 ई. में अंग्रेजी भाषा को सरकारी भाषा घोषित कर दिया और सरकारी नौकरियों में अंग्रेजी भाषा अनिवार्य कर दिया। आज भी अंग्रेजी भाषा को विशेष महत्व दिया गया है। और हम उसके गुलान बनकर रह गये है। अंग्रेजी भाषा को जानना एक अलग बात है। लेकिन जब भी कोई चीज हमारी अस्मिता को चोट पहुॅचाती तो वह हमारे लिए घातक है फिर हमारी राष्ट्र भाषा को सर्वोपरि महत्व क्यों दें।

हालॉकि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (1964) या कोठारी शिक्षा आयोग के द्वारा शिक्षा नीति में बदलाव और अपनी मातृभाषा हिन्दी को महत्व दिया गया। साथी ही माध्यमिक स्तर पर स्थानीय भाषा को भी प्रोत्साहित किया गया। सबको समान शिक्षा मिले, अमीरी गरीबी की खाई को कम किया जाये। आगे चलकर राष्ट्रीय शिक्षा आयोग 1968 का गठन हुआ। जो कोठारी आयोग का ही विस्तार माना जा सकता है। सरकार द्वारा समय–समय पर शिक्षा में सुधार की नीतियॉ तो तैयार की जाती हैं लेकिन वास्तविक सरकार द्वारा पूर्ण

साक्षरता का दंभ तो भरा जाता है। लेकिन हकीकत क्या सर्वविदित है। सिर्फ नाम लिख लेना ही साक्षरता की श्रेणी में नही आना चाहिए। व्यक्तित्व के विकास के साथ इसको जोड़कर परिभाषित किया जा सकता है।

सरकारी स्कूल पब्लिक स्कूलों में कहीं भी समानता नही दिखाई देती। इन संस्थाओं में अमीरी एवं गरीबी के बीच की खाई स्पष्ट देखी जा सकती है। प्रायवेट स्कूलों की फीस इतनी अधिक हो गई है। कि आम आदमी इससे कोसों दूर होता जा रहा है। दूसरी तरफ भ्रष्टाचार के चलते सरकारी स्कूलों का विकास नहीं हो पा रहा है। अध्यापक की कोठियों और बैंक बैलेंस से इनको देखा जा सकता है। शिक्षा संस्थान आज व्यवसायिक केन्द्र बनकर रह गये हैं।

स्वार्थ और दिखावे में उलझा आज का छात्र पर्यावरण जैसे मुद्दे पर मूकदर्शक बना रहता है। प्रकृति से लगाव खतम होता जा रहा है। इंजीनियरिंग, मेडिकल जैसे संस्थानों में शोषण आत्महत्या और बलात्कार जैसे वारदातों की संख्या में लगातार वृद्धि होती जा रही है। त्याग, तपस्या, आध्यात्मिक मूल्यों का ह्रास होता जा रहा है। स्पष्ट है कि दर्शनशास्त्र, साहित्य, संस्कृत और नैतिक शास्त्र जैसे विषयों के प्रति हीन दृष्टिकोंण और व्यवहारिक स्तर चलन का ना हो पाना। इन विषयों को सरकार द्वारा प्रोत्साहित करके ही इन समस्याओं को दूर किया जा सकता है।

आज पश्चात्य शिक्षा का अंधानुकरण हो रहा है। बाह्य चमक–दमक के सामने हमारी संस्कृति फीकी नजर आती है। जातिवाद के बंधन ने शिक्षा को भी नही छोड़ा है। आरक्षण जैसे मुद्दे फिर हावी होने लगे हैं। वोट के खातिर नेताओं को ऐसे मुद्दे उठाने में समय नहीं लगता फिर उसकी आग में सभी जलते हैं। इस मुद्दे पर सरकार समय–समय पर आर्थिक आधार पर आरक्षण की वकालत करती दिखायी तो देती है। लेकिन आज तक इसका हल नहीं निकल पाया।

कई राज्यों में तो नकल आम बात हो गई है। जहाँ अभिभावक स्वयं बच्चों को नकल करवाने के लिए प्रेरित करते है। अनुशासन के अभाव में सामाजिक ढॉचा जैसे चरमरा गया है। यदि इनको सख्ती से न रोका गया तो समस्या और गंभीर हो सकती है। बच्चों को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उनका आकलन और विष्लेषण करके उनके क्षेत्र का निर्धारण किया जा सकता है। जिस भी विषय में बच्चों की रूचि हो उस पर उसे पूर्ण निर्णय लेने दे साथ ही घर के माहौल को बिगडने न दें। क्योंकि पति–पत्नी के झगड़े से बच्चों पर इसका बुरा असर पड़ता है। आज के इस एनीमेशन और स्मार्ट एजूकेशन के दौर में योग एवं अनुशासन के समन्वय से ही शिक्षा के सही अर्थो को पहचाना जा सकता है।

शिक्षा और संस्कृतिः –

शिक्षण संस्थान ज्ञान के मंदिर हैं। मंदिर इसलिए कि ज्ञान से पवित्र सृष्टि में और कुछ है ही नहीं जैसा कि कहा गया है – ''न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते'' वेद कहता है कि ज्ञान और ब्रहम् पर्यायवाची है। शंकराचार्य भी यही कहते हैं कि ब्रहम् ज्ञान मात्र है। ज्ञान का आधार विद्या है। शिक्षित व्यक्ति ही किसी देश की संस्कृति और सभ्यता है। इस देश में ज्ञान का सम्मान कितना है कि वेदव्यास, बाल्मीकि, पाषिनि, पतंजलि जैसे मनीषियों को भगवान मान लिया क्योंकि ज्ञान व्यक्ति मिथ्या दृष्टि से मुक्त कराता है। जीवन तथा ईश्वर में आस्था पैदा

करता है। समाज विरोधी तत्वों को ज्ञान के प्रभाव से परिचित करके ही स्वतंत्र हो सकता है। हमारे आत्मा के चार भाग हैं। आत्मा, मन, बुद्धि और शरीर। शरीर और बुद्धि शिक्षा में तथा आत्मा और मन धर्म के विषय बन गये हैं। शिक्षा धर्मनिरपेक्ष हो गयी तब व्यक्ति स्व–धर्म की पहचान कहॉ सीखेगा? शिक्षा के मूल धरातल आधिदैविक, आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक तो खो ही गये। व्यक्तित्व विकास पीछे छूट गया। विज्ञान रह गया ब्रहम छूट गया, माया रह गयी, सब छूट गया, कृति रह गयी। यानी संस्कृति खण्ड–खण्ड हो गयी बीस वर्ष तक किया गया श्रम और लगाया गया धन जीवन संघर्ष में व्यक्ति के काम नही आएगा।

जीवन का लक्ष्य : –

शास्त्र कहते हैं ''जन्मना जायते विप्रः संस्काराद् द्विज उच्यते'', जीवन का लक्ष्य है। अभ्यूदयः निःश्रेयस इसी को योग–क्षेम कहते हैं। विद्या के योग से अविद्या के आवरण को हटाना आत्मसाक्षात्कार करना (मोक्ष) ही पुरूषार्थ का लक्ष्य है। आज शिक्षा में पुरूष प्रकृति का स्वरूप ही नही रहा। सृष्टि का निर्माण युगल तत्व अग्नि सोम से अथवा योषा–वृषा से होता है। कौन बताता है ? इस ज्ञान के बिना स्त्री पुरूष भी मात्र शरीर रह गये, जैसे अन्य प्राणियों के होते हैं। जीवन रूढ़ि बन गया, मिथक बन गया, उपयोगिता की ही शिक्षा में तलाश रह गयी 'वसुधैव कुटुम्बकम्' निजी स्वार्थ में बदल गया। व्यक्ति के कर्म और अनुभव भी सुप्त रूप से उसके साथ रहते है, उसकी विशिष्टतायें शक्तियॉ की आत्मा का अंश बनकर रहती है। ''ईश्वर अंश जीव अविनाशी'' कहा है। इनको जाग्रत करना तथा इनका जीवन में उपयोग कैसे हो पायेगा। शिक्षा तो इनको भुला देती है। कमाना सीख जाता है, समाज को कुछ देना भी चाहिए, भूल जाता है।

समय परिवर्तन लाता है। समय के साथ आवश्यकताएँ भी बदलती है। त्रेता और द्वापर राम और कृष्ण ज्ञान की प्राप्ति के बाल्मीकि एवं सन्दीपनी के आश्रम में जाते थे। गुरूकुल समाज से मिली भिक्षा पर आश्रित रहते थे।

द्वापर के अंत में ही शिक्षक घर आकर पारिश्रमिक के बदले में शिक्षित करने लगे थे। आचार्य द्रोण इसका श्रेष्ठ उदाहरण हैं। द्रोण अब सबको शिक्षा नहीं दे सकते थे। न एकलव्य को न ही कर्ण को शिक्षा के विषय छात्रों के अनुरूप होते चले गये। कृष्ण–सुदामा का साथ छूट गया। दुर्योधन भी पैदा होने लग गये। आश्रम में यह संभव नही था। वहाँ पात्रता के अनुरूप शिक्षा दी जाती थी यहाँ संरंक्षण का आधार था।

महाभारत के साथ ही द्वापर बीत गया। शिक्षा में कुछ काल तक धर्म की भूमिका भी बढ़ी। अंग्रेजो ने नई व्यवस्था बनाई। न शिष्य गुरू के घ जायेगा न ही गुरू शिष्य के घर स्कूल खड़े कर दिये गये। समय पढ़ाई का भी निश्चित हो गया। विषय निश्चित हो गये। वेद के गुरू और शिष्य शब्द भी लुप्त हो गये। लंदन के ईडन स्कूल के लिए प्रसिद्ध था कि यहाँ के छात्र ही ब्रिटेन के प्रधानमंत्री बनते थे। आज तो खुले विश्वविद्यालय उपलब्ध है। न गुरू को जानने की जरूरत है न ही शिष्य के परिचय की। डिग्री घर बैठे ही आ जाती है इसी में आगे डिग्रियाँ खरीदने की व्यवस्था हो गयी। कई बार तो फीस भेजते ही कोर्स और डिग्री साथ आ जाते है।

आज की अधिकांश शिक्षण संस्थाएँ अनुदान–आश्रित हैं। अनेक सीमाओं और राजनीतिक समीकरणों में बंधी है। यहाँ तक की पाठ्यक्रम में पुस्तकों का चयन भी अधिकारी, नेता ही तय करवा देते हैं। वे ही नीतियाँ बनाते हैं। शिक्षाविद् मौन रहने को विवश हो गये हैं। इसमें

शिक्षकों, साहित्यकारों, मनीषियों का आदर कम होता गया है। शिक्षण संस्थाओं स्वायत्तता भी स्वछन्दता बन गई। शिक्षकों के सरकारी सम्मान भी राजनीति के मार खा रहे हैं। अब शिक्षक सर्वपल्ली राधाकृष्णन की तरह से राष्ट्रपति नही बन सकते।

शोध का उद्देश्य : –

1. वैदिक कालीन शिक्षा का अध्ययन करना।
2. आधुनिक शिक्षा का अध्ययन करना।
3. शिक्षा एवं संस्कृति के विषय में जानकारी प्राप्त करना।
4. वैदिक एवं आधुनिक शिक्षा में समन्वय स्थापित करना।
5. संस्कृति पर शिक्षा के प्रभाव को जानना।

शोध की सीमाएँ : –

प्रस्तुत शोध वैदिक शिक्षा एवं आधुनिक शिक्षा में समन्वय शिक्षा एवं संस्कृति के विशेष संदर्भ का एक संक्षिप्त अध्ययन है। अतः यह वैदिक एवं आधुनिक शिक्षा की सामान्य जानकारी तक सीमित है।

शोध प्रविधि : –

प्रस्तुत शोध अध्ययन के वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित है। इसके अध्ययन में प्राथमिक आँकड़ों के माध्यम से तय संकलित किये गये हैं।

निष्कर्ष : –

आज शिक्षा जीवन को जीने योग्य नहीं बना सकती वह ब्रहम का पर्याय नही है। उसमें रस, माधुर्य, संस्कार देने की क्षमता अथवा अच्छा इंसान बनाने की ताकत नही है। डिग्री या नौकरी के अलावा कुछ नहीं है। सभ्यता और संस्कृति तक नही। शिक्षित अधिक दुखी दिखाई जान पड़ते हैं। भले ही प्रोफेसर प्रापर्टी डीलर बन गये हों। जीवन की रसमयता ही विद्या का योग है। यही परा विद्या कही जाती है। यह संस्कृति का मूल तथा व्यक्तित्व एवं देश की पहचान बनती है। किसी भी फसल में खाद पानी का तो उपयोग होता है किन्तु हवा और धूप का ही योग होता है। मानव के आध्यात्मिक और आधिभौतिक स्वरूप से संबंध रखने वाले अंतः और ब्रहम आचार ही क्रमशः मानव की संस्कृति तथा सभ्यता माने गये हैं।

सुझाव : –

1. आधुनिक शिक्षा वैदिक शिक्षा जोड़ने की अत्यंत आवश्यक है।
2. भारतीय संस्कृति को संजोने के लिए समयानुसार आधुनिक शिक्षा के वैदिक शिक्षा भी देने की आवश्यकता है।
3. संस्कृति में शिक्षा के प्रभाव को समझने की आवश्यकता है।
4. शिक्षा को इस प्रकार से पाठ्यक्रम किया जाय कि शिक्षार्थी को मशीन न बनाकर मानवीय गुण संवेदनाएँ एवं मानवीयता उत्पन्न हो सके।
5. शिक्षा को नैतिकता से जोड़ा जाना चाहिए।

शोध संदर्भ : –

1. मिश्र, डॉ. भास्कर, वैदिक शिक्षा पद्धति, महर्षि सान्दीपनी, राष्ट्रीय वेद–विद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन।
2. पत्रिका, दैनिक समाचार पत्र।

3. सिंह, डॉ. बीरेन्द्र कुमार, 2002, प्राचीन भारतीय संस्कृति अक्षयवट प्रकाशन 26, बलरामपुर हाउस इलाहाबाद।
4. सिंह, रामधारी दिनकर संस्कृति के चार अध्याय, 2014 लोकभारती प्रकाशन महात्मा गांधी मार्ग इलाहाबाद।
5. उपाध्याय, आचार्य बलदेव संस्कृत साहित्य का इतिहास 2001 खण्डेवाल प्रेस एवं पब्लिकेशन्स मान मंदिर वाराणसी।
6. द्विवेदी, डॉ. कपिल देव, संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास 2004 रामनारायण लाल विजयकुमार, अनिल प्रिन्टर्स 19 बी/13 एल्गिन रोड इलाहाबाद।

भारत में शिक्षा पर राजनीति का प्रभाव

आजाद यादव (शोध छात्र)

शिक्षक प्रशिक्षण विभाग
शिब्ली नेशनल पी.जी. कालेज
आजमगढ़

सार –

यह शोध लेख भारतीय शिक्षा प्रणाली पर राजनीति के प्रभाव का आलोचनात्मक मूल्यांकन करता है। किसी भी देश की शिक्षा उस विशेष राष्ट्र की विकास के लिए एक महत्वपूर्ण उपकरण है। शिक्षा ही मनुष्य में नैतिकता व मूल्यों को समावेशित कर उन्हें साक्षर एवं सभ्य नागरिक बनाती है। यदि हमारे पास अच्छी तरह से पोषित और संतुलित शिक्षा प्रणाली है तो राष्ट्र के विकास का आधा कार्य स्वयं ही पूर्ण हो जाता है, लेकिन अगर हम भारतीय संदर्भ में देखे तो भारतीय शिक्षा प्रणाली कई राजनीतिक सामाजिक व आर्थिक मुददों से पीड़ित है। जैसे– भ्रष्टाचार, जातिवाद, भाई–भतीजावाद और सबसे प्रमख है– शिक्षा की गुणवत्ता। भारत के सामने जो समस्याएँ है उसे हल कर पाना एक कठिन चुनौती है। आज तेजी से बढ़ते तकनीकी युग के साथ भारतीय शिक्षा प्रणाली कंधे से कंधा मिलाकर कार्य नहीं कर पा रही है। इस लेख में हम कुछ स्पष्ट वास्तविकताओं को देखेंगें, जिसके कारण भारतीय शिक्षा प्रणाली गंभीर संकट में है।

मुख्य शब्द –

शिक्षा, राजनीति, भ्रष्टाचार, जातिवाद और शिक्षा की गुणवत्ता।

उद्देश्य –

इस लेख का उद्देश्य शिक्षा आयोगो एवं सरकार द्वारा शिक्षण स्तर के उत्थान के प्रयास के बावजूद शैक्षिक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों का आंकलन करना व क्षिक्षा पर राजनिति के प्रभाव का आलोचनात्मक मूल्यांकन करना है।

शिक्षा और राजनिति का एक दूसरे के साथ एक सहजीवी संबंध है। जिसमें यदि एक पक्ष दुसरे पक्ष पर अपने प्रभुत्व की स्थापना करना चाहता है तो वहाँ एक नकारात्मक वातावरण का सृजन हो जाता है जिसमें किसी भी प्रकार के रचनात्मक कार्य की अवधारणा की संकल्पना नही की जा सकती है। शिक्षा और राजनीति की कल्पना दो अलग–अलग रूपों में की जा सकती है। पहला, सामाजिक व्यवस्था को प्रभावित करने वाली राजनीति का शिक्षा पर प्रभाव

का एक निश्चित स्तर तो दूसरी ओर औपचारिक और अनौपचारिक प्रणाली के माध्यम से शिक्षा का राजनीति पर प्रभाव।

भारत दुनियाँ का सबसे बड़ा लोकतंत्र है, और यहाँ सबसे ज्यादा राजनीतिक दल भी है। भारत में विभिन्न स्तरों पर चुनाव होते है। राष्ट्रीय, राज्य के एवं स्थानीय स्तर पर अलग–अलग राजनीतिक मद्दे होते है। जिनमें भष्ट्राचार जाति, धर्म, बेरोजगारी आदि महत्वपूर्ण मद्दे हैं। जिनको सुलझा पाना इन सभी दलों के लिये एक टेढ़ी खीर है। शिक्षा की गुणवत्ता भी एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। क्योंकि किसी भी देश के आर्थिक विकास और अस्तित्व के लिए शिक्षा एक आवश्यक तत्व है। भारत पहला देश है, जहाँ शिक्षा राजनीति का शिकार है। कभी प्रबंध तंत्र के स्तर पर, कभी शिक्षक के तो कभी छात्रों के स्तर पर या फिर इन सभी स्तरों पर। यहाँ शैक्षणिक संस्थाएँ भी जातिगत व साम्प्रदायिक आधार पर चलती हैं। अल्पसंख्यक व बहुसंख्यक आधार पर भी शिक्षण संस्थाओं का विभाजन सरकार की नीति का ही परिणाम है। आज धर्म, शिक्षण व राजनीतिक संस्थाओ दोनों के लिए एक भय का विषय बन गया है। अगर शिक्षण

संस्थाओं में धर्मनिरपेक्षता को नजर अंदाज कर दिया जायेगा तो ये नौजवानों व लोकतंत्र दोनो के लिए एक खतरा हो जायेगा। धर्म और शिक्षा को समन्वित कर देने से साम्प्रदायिकता का खतरा सदैव मँडराता रहता

है। धर्म अंधविश्वास को जन्म देता है तो दूसरी ओर विज्ञान और प्रौद्योगिक हमें तथ्यों के आधार पर विकासोन्मुख करने का प्रयास करते हैं। तब बात यह उठती है कि जब संस्थायें निर्मित ही विभाजन के आधार पर हों तो शिक्षा का भविष्य क्या होगा ?

शिक्षा सीधे तौर पर समाज से जुड़ी होनी चाहिये परंतु हमारी शिक्षा में समाज के आवश्यक एवं वैकल्पिक प्रश्नों के लिऐ कोई पाठ्यक्रम नही है। शिक्षा आर्थिक युग का भी पूरा–पूरा फायदा उठा रही है। वह कई स्तरों पर बँट गयी है–म्यूनिसिपल, कान्वेन्ट, मांटेसरी, कैश या सेंट्रल बोर्ड स्तर पर। ज्यादातर स्तरो पर अभी तक हम अतीत में निर्धारित मानकों के आधार पर ही शिक्षा दे रहे है, जो अधूरी शिक्षा है। यह हमें अंतर्दृष्टि नहीं देती क्योंकि हमारी शिक्षा पद्धति में सीखना महत्वपूर्ण नही है, महत्त्वपूर्ण है परीक्षा में उत्तीर्ण होना। जिसमें परीक्षक का मुड या परीक्षक का बौद्धिक वर्गवाद भी शामिल है। हमारी शिक्षा भविष्य की बेदी पर कभी वर्तमान की बलि चढ़ाती है तो कभी वर्तमान की बेदी पर भविष्य की । हमारी शिक्षा में पाया–खोया का सिद्धांत आवश्यक है इसी आधार पर व्यक्ति की श्रेष्ठता व निकृष्टता निश्चित की जाती है। कितना हास्यास्पद है कि वर्ष भर छात्र जो करता है वह निर्णायक नहीं होता, निर्णायक होता है तीन घंटे में हल किये गये कुछ चंद सवाल।

शिक्षा का वास्तविक कार्य मनुष्य के विवेक को जागृत कर उसे न्यायपूर्ण, नैतिक, सच्चा, ईमानदार तथा कर्मठ नागरिक बनाना है। जिनके आधार पर एक बुद्धिजीवी नागरिक के रूप में देश की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक सभी समस्याओं के विषय में स्पष्ट रूप से चिन्तन करके अपना निजी निर्णय ले सके और उन्हें सुलझा सके। सत्य, असत्य तथा वास्वविकता एवं प्रचार में अन्तर समझते हुए अन्ध विश्वासों तथा निरर्थक परम्पराओं का उचित विश्लेषण करके अपने जीवन में आने वाली विभिन्न समस्याओं के विषय में वैज्ञानिक दृष्टिकोण द्वारा अपना निजी निर्णय ले सकें। प्लेटो व अरस्तू के काल से ही चिन्तक इस बात पर जोर देते रहे है कि जब तक राजनीति के साथ नैतिक तत्व नही जुड़ेगा तब तक उसके अस्वच्छ रूपों का शमन नही किया जा सकता। शिक्षा ही समाज तथा राष्ट्र के चरित्र का निर्माण कर सकती है। शिक्षा प्रणाली का आधार होते है राष्ट्र के उद्देश्य जिनकी पूर्ति के लिये राज्य की शासन व्यवस्था की ईमानदारी, क्रियाशीलता व सक्षमता उत्तरदायी है। ये सभी तथ्य शिक्षा प्रणाली के माध्यम से राष्ट्र की जीवन प्रक्रिया के रथ को आगे बढ़ाते है। अतः यह कहा जा सकता है कि शिक्षा समाज की पुनर्रचना के प्रबल अभिकरण है, किन्तु तभी जब शिक्षा राजनीति निरपेक्ष हो और राजनीति शिक्षित व्यक्ति सापेक्ष हो बहुमत के आधार पर भेड़चाल की राजनीति दिशाहीन व विवेकहीन राजनीति होती है। शिक्षा और राजनीति मानव का अन्तर्वाह्य कवच है, जिनके द्वारा मानवता की बर्बरता स्वार्थ लोलुपता और अराजकता से रक्षा होती है।

शिक्षा ही मनुष्य में नैतिकता व मूल्यों को समावेशित कर उन्हें साक्षर एवं सभ्य नागरिक बनाती है। यदि हमारे पास अच्छी तरह से पोषित और संतुलित शिक्षा प्रणाली है तो राष्ट्र के विकास का आधा कार्य स्वयं ही पूर्ण हो जाता है, लेकिन अगर हम भारतीय संदर्भ में देखे तो भारतीय शिक्षा प्रणाली कई राजनीतिक सामाजिक व आर्थिक मुददों से पीड़ित है। जैसे– भ्रष्टाचार, जातिवाद, भाई–भतीजावाद और सबसे प्रमख है– शिक्षा की गुणवत्ता।

किन्तु क्या वर्तमान में राजनीति और शिक्षा से उन उद्देश्यों की पूर्ति हो रही है जिनके लिये भारतीय संविधान मे हमने शपथ ली थी? क्या आज देश के कोने–कोने में विभिन्न मुद्दों को लेकर हड़ताल, हत्याएँ, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, औषधियों में मिलावट, कराड़ो रूपये खर्च कर मदिरापन कराकर वोट प्राप्त करने की राजनीति हमे सकारात्मक दिशा की ओर ले जा रहे है? क्या यह सत्य नही है कि शिक्षा का व्यक्ति और समाज सापेक्ष न होने का ही यह दुष्परिणाम है कि आज का युवक बेरोजगारी का शिकार हो गया है? शिक्षा न हमें ज्ञान दे पा रही है न शान्ति और न समाज के साथ एकात्मकता की हमें अनुभति ही करा पा रही है। यदि देश को शत–प्रतिशत शिक्षा प्राप्त होने के पश्चात स्वतंत्रता मिलती तो प्रजातंत्र अधिक सफल होता। दुर्भाग्य से 71 वर्ष स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी देश शत प्रतिशत साक्षरता का लक्ष्य प्राप्त नहीं

कर सका है बढ़ती हुई साक्षर अज्ञानता का परिणाम यह हुआ कि राजनीति लोगो का पेशा बन गया है और शिक्षा का स्तर दिन प्रतिदिन गिरता जा रहा है।

भारतीय सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली का एक महत्वपूर्ण पहलू है इसकी निम्न गुणवत्ता। गुणक्ता एवं शिक्षा के मानको में विभिन्न राज्यो में भिन्नताये हष्टिगत होती है। महिलाओं के साक्षरता के आधार पर यदि हम देखें तो बिहार में 34 प्रतिशत हैं। और केरल में 88 प्रतिशत का आँकड़ा है और पुरूषों की बात करें तो बिहार में 60 प्रतिशत तो केरल में 94 प्रतिशत है। राजस्थान में सबसे बड़ा लिंग भेद हैं, अगर महिला साक्षरता 44 प्रतिशत हैं तो पुरूष की 77 प्रतिशत है। सरकारें आती जाती हैं। लेकिन अंत में आशाओं का एक रहस्य छोड़ जाती है जहाँ एक तरफ जी.डी.पी. का 6 प्रतिशत तक शिक्षा पर खर्च करने का संकल्प लिया गया। लेकिन वास्तविकता में यह आकड़ा 4 प्रतिशत के आसपास ही मँड़राता रहा। इतने सारे संशोधन किये गये नीतियाँ बनी, आयोगो की स्थापना की जाती रही, लेकिन ये सब वास्तविकता के घरातल पर खड़ी नही हो पायी और शिक्षा जगत में व्याप्त भ्रष्टाचार इसे और घातक बनाने का कार्य करता रहा। जहाँ एक आदर्श व्यवस्था के रूप मे शिक्षा को उभरना चाहिये था वहाँ भ्रष्ट नेताओ व उद्योगपतियों को लाभान्वित करने की योजनाएँ ज्यादा कारगर रूप से लागू की जाती रही। भ्रष्टाचार के रूप अलग–अलग है जैसे रिश्वत, भाई–भतिजावाद, जातिवाद, गबन और नाजायज संरक्षण। शिक्षा में बढ़ते निवेश के बावजूद यहाँ की 35 प्रतिशत आबादी निरक्षर है। केवल 15 प्रतिशत भारतीय छात्र हाईस्कूल तक पहुँचते है और सिर्फ 7 प्रतिशत स्नातक स्तर तक। राष्ट्रभर में 25 प्रतिशत पद रिक्त हैं और 57 प्रतिशत शिक्षकों में गुणवत्ता की कमी हैं। शिक्षक ने यदि तीस साल पहले शिक्षा पाई हैं तो वह तीसों साल से वही दुहराते आ रहे है। जब कि परिस्थितियाँ निरन्तर बदलती रहती है। ज्ञान राशि नित्य बढ़ रही है। हर क्षण हमारे प्रति संवेदन पुराने पड़ने जा रहे है। स्थिति यह हैं कि किसी भी विषय पर अब किताब नहीं लिखी जा सकती क्योंकि जितने दिन में किताब पूरी होगी नए आवष्किार नए तथ्य पुस्तक को असंगत कर देते है। फिर भी शिक्षक वही पुराना तथ्य पढ़ाते है। और आश्चर्य की बात तो यह है कि इसकर उन्हे राज्य से पुरस्कार भी प्राप्त हो जाता है।

एक ही समूह के मध्य आय की असमानता भी शिक्षण गुणवत्ता के पतन का एक महत्वपूर्ण कारण है। यदि सरकार द्वारा सरकारी स्कूलों व ग्रामीण क्षेत्र के स्कूलों की शिक्षा प्रणाली में सुधार नही किया गया तो अमीर अमीर होता जायेगा और गरीब गरीब। निजी एवं सरकारी स्कूल के अंतर को समाप्त करना होगा। शिक्षा की गुणवत्ता में निरन्तर "ह्रास का एक और कारण अपर्याप्त शिक्षण सुविधाये भी है। यदि संस्थाओ की बात की जाए तो भारत मे 20 केन्द्रीय 215 राज्य विश्वविद्यालय 100 डीम्ड विश्वविद्यालय, 1800 अन्य संस्थान, 16000 कालेज (सहायता प्राप्त व स्ववित्तपोषित) एवं महिला महाविद्यालय है। किन्तु संख्या से गुणवत्ता ज्यादा

मायने रखती है। विश्व बैंक के आँकड़ो से यह पाया गया कि भारत में किशोरों की संख्या 40 प्रतिशत से भी कम हैं, जो माध्यमिक स्कूल तक की शिक्षा ले सकें। द इकोनोमिस्ट की रिपोर्ट है कि 10 साल के ग्रामीण बच्चों में से आधे भी मूल स्तर तक नहीं पढ़ पाये और वे पढ़ाई में 60 प्रतिशत से अधिक लाने में असमर्थ थे। तो क्या यही नींव है जिस वर आज 2020 में भारत एक महाशक्ति के रूप में खड़े होने के स्वप्न देख रहा है। क्या हमारी शक्ति इतनी बढ़ पाती है कि हम चीन, ब्रिटेन, यू एस ए जैसे देशो से प्रतिस्पर्धा करने की हिम्मत कर सकें।

संक्षेप में आज शिक्षा जगत में भ्रष्टाचार के कारण आयोग्य शिक्षकों की भरमार हो गयी है। सभी सरकारें जाति व सम्प्रदाय के आधार पर भी शिक्षको का चुनाव करती रही आज शिक्षक छात्रों में सरकार के प्रचार–प्रसार का एक माध्यम बन गये है। शैक्षणिक संस्थान एक निश्चित ब्राँण्ड की राजनीति के विज्ञापनकर्ता बन गए हैं, बैठकों और अभियानो के माध्यम से छात्रों को प्रभावित करते रहते है। परिसर के भीतर जूझ रहे छात्रों के कुछ समूह अराजकता फैलाने के कार्य में संलिप्त रहते है। जिससे सीखने की प्रक्रिया बाधित हो जाती है और एक स्वस्थ शांतिपूर्ण नैतिक और अनुशासन का माहौल सृजित होना असंभव हो जाता है। भारत के विश्वविद्यालयो अथवा कालेजो मे छात्र अभियान उनके राष्ट्रीय सहयोगियों द्वारा वित्तपोषित होते है और वे धन, समय एवं अन्य संसाधनो की पूर्णतया बर्बादी करते हैं। छात्रों के ये समूह विचारधारा में शून्य है। ये ज्यादातर राष्ट्रीय चिंता के मुद्दो को संबोधित नही करते हैं इनके दिग्भ्रमित होने की संभावना सदैव ही बनी रहती है। आज सी.ए.ए. को लेकर जे एन यू व जामियाँ अन्य संस्थानों में हो रहें आंदोलन उसके ज्वलंत उदाहरण हैं।

बाहरी राजनीति दल भी अपने छात्र सहयोगियों को जबरन वसूली करने के लिए मौन स्वीकृति प्रदान करते है। बदले में पार्टियाँ राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर के चुनाव के दौरान पारपरिक प्रचार के लिए या और भी संदिग्ध उद्देश्यों के लिए इन छात्रों के पंखो का उपयोग करती हैं जैसे मतदाताओं को विशिष्ट उम्मीदवारों को चुनने से डराने के लिए पोलिंग बूथ पर ले जाना। दूसरे शब्दों में विभिन्न राजनीतिक दलों के लिए कालेज परिसर उनके वास्तविक राजनीतिक जीवन का एक प्रशिक्षण केन्द्र हैं।ये दल शायद ही कभी छात्रों का ध्यान आवास की कमी या कालेज कैण्टीन के भोजन में गुणवत्ता की कमी की ओर आकर्षित करते हैं बल्कि वे अकसर जाति व धर्म के आधार पर छात्रो में विभद पैदा करते है और इन्ही आधारों पर उन्हें वोट देने का भी आग्रह करते हैं।

बेरोजगारी इतनी ज्वलन्त समस्या है जिसके कारण छात्रो का ध्यान पढ़ाई से हटने लगा है और चोरी, हत्या, बलात्कार जैसी घटनायें सामने आती है जो समाज के वातावरण को दूषित करती है। कहा गया है कि खाली दिमाग शैतान का घर होता हैं अर्थात् जब छात्रो के मन में ये बात घर कर जाती है कि पढ़ने लिखने से नौकरी नही मिलेगी तो उनका ध्यान पढ़ाई

से हटकर अन्य चीजो में ज्यादा लगता है जो कभी–कभी उन्हें गलत रास्तों पर ले जाती है जहा से लौट पाना उनके लिये मुश्किल और कभी–कभी तो नामुमकिन हो जाता है।

अब यदि हम शिक्षा पर राजनीति के सकारात्मक प्रभावो की चर्चा करें तो हम ये पाते है कि युवा लोंग मतदाता आबादी का एक बड़ा हिस्सा होते हैं इसलिये ये आवश्यक है कि उन्हे राजनीतिक मुद्दो के बारे में पर्याप्त जानकारी हो क्योंकि राजनीतिक फैसले सीधे तौर पर किसी भी देश के नागरिकों को प्रभावित करते हैं आज हम अक्सर चुनाव प्रचार के दौरान राजनेताओ को विवेकपूर्ण मुद्दों को प्राथमिकता देते हुए देखते हैं एसे में छात्रों को विपक्ष के वर्कपूर्ण निर्णयो को समझने और स्वयं सही निर्णय लेने की क्षमता होनी चाहिये। राजनीति युवाओं को उनके अधिकारों एव उनके अधिकारों के समुचित उपयोग के लिये उन्हें जागरूक करती हैं राजनीति से दूरी वर्तमान घटनाओं व देश में हो रही वारदातो से हमें उदासीन बना देती है। जिस प्रकार छात्रो को इंजीनियर डाक्टर बनने के लिए तैयार किया जाता है उसी प्रकार उन्हे एक अच्छा राजनीतिक भी बनाया जा सकता है। जो स्वंय को देश सेवा में समर्पित कर सकें युवा मतदाता वोट बैक का एक बड़ा हिस्सा हैं अगर उनमें राजनीतिक जागरूकता का संचार नहीं हुआ तो देश का समुचित विकास असंभव हो जायेगा। कॉलेज की बहस और मुक्त भाषण से कालेज में एक जीवन्तता पैदा होती है। विश्वविद्यालय भविष्य के रानेताओ के लिए एक नर्सरी है और मुख्यधारा की राजनीति पर पूर्ण प्रतिवबंध लगाना जो उत्तर प्रदेश में मायावती सरकार मे छात्रसंघ चुनावो को समाप्त कर लगा दिया था सर्वथा अनुचित है क्योकि ऐसा कार्य छात्रों को एक अच्छा नागरिक बनने के मूलभूत अवसर से वंचित करता है। किसी भी छात्र को राजनीतिक विषयों पर चर्चा करने, एक शांतिपूर्ण माहौल में रहकर अनुशासित व्यवहार के साथ अपनी बात रखने व बहस करने के अवसर प्रदान करने से इन्कार करना अलोकतान्त्रिक है जो एक स्वस्थ व नैतिक वातावरण के सृजन मे बाधक होता है। राजनिति एक सामाजिक विज्ञान है और संगठित आंदोलनो के माध्यम से व्यवस्था को परिष्कृत व परिमाजित किया जा सकता है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि किसी भी देश की जनता में राजनितिक अज्ञानता अत्याचार के बढ़ने, निरंकुशता तथा लोकतंत्र के पतन का मार्ग प्रशस्त करती हैं।

निष्कर्ष –

भारत सरकार को शिक्षा में हो रहे भ्रष्टाचारों को हल करने के उपाय खोजकर उसका सम्यक समाधान करना चाहिए। ताकि कोई भी जाति, धर्म, सम्प्रदाय तथा घुसखोरी के आधार पर शिक्षा को पतन की ओर न ले जा सके। शिक्षा के आगत शिक्षक है जो छात्रों को उच्च कौशल वालें नागरिक हैं उनमें नैतिकता, न्याय, सदाचार की भावना जागृत कर बनाते आने वाली पीढ़ी के लिए एक मॉडल तैयार करते है। ये शिक्षा का सकरात्मक पक्ष है। जिसके लिए

शिक्षक गुणवत्ता सबसे महम्वपूर्ण विषय है। डा0 अब्दुल कलाम आजाद के इन शब्दों को अगर ध्यान दें कि 'जब सीखना है तो उद्देश्यपूर्ण रचनात्मकता आवश्यक है। जब रचनात्मकता होती है तो सोंच निकलती है जब सोंच निकलती है तो ज्ञान पूरी तरह से जगाया जाता है, जब ज्ञान जगाया जाता है तो अर्थव्यवस्था फूलती–फलती हैं। तो हम ये पाते है कि देश और उसकी अर्थव्यवस्था के शत प्रतिशत निर्माण मे शिक्षित नागरिक व शिक्षकों की अहम भूमिका है। अगर सकारात्मक कदम लिये गये तो भारत भी समृद्धि ज्ञान का दावा करने मे सक्षम होगा। देश की संस्कृति उन्नति होगी और शिक्षा भी अन्य क्षेत्रों की तरह अपना वर्चस्व दिखाने मे सक्षम होगी।

संदर्भ ग्रन्थ सूचीः–

(1) ब्लैकवेल, फ्रिट्ज़ (2004), भारतः एक वैश्विक अध्ययन पुस्तिका ,संयुक्त राज्य अमेरिका अमेरिकाः ABC- CLIO, Inc., आईएसबीएन 1.57607.348.31

(2) भारत 2001 1: एक संदर्भ वार्षिक (53 वाँ संस्कण) , नई दिल्लीः अतिरिक्त महानिदेशक (ADG), प्रकाशन विभाग, सूचना मंत्रालय और प्रसारण, भारत सरकार, आईएसबीएन 978–81–230–1557–6।

(3) प्रभु,जोसेफ (2006),शैक्षिक संस्थान और दर्शन, पारंपरिक और पारंपरिक और आधुनिक, एनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ इंडिया (खंड । 2) स्टेनली वोल्पर द्वारा संपादित थॉमसन गैलः आईएसबीएन 0–684–31351–0।

(4) रमन, एसए (2006) । महिला शिक्षा , भारत का विश्वकोश (खंड 4),

(5) रमन, एसए (2006) । महिला शिक्षा , भारत का विश्वकाश (खंड 4), स्टेनली वोल 235–239, थॉमसन गेल द्वारा सपादितः आईएसबीएन 0–684–31353–7।

(6) सेट्टी, ईडी औरॉस, ईएल (1987), ए केस स्टडी इन एप्लाइड एजुकेशन इन ग्रामीण भारत, सामुदायिक विकास जर्नल, 22 (2): 120–129, ऑक्सफोर्ड विश्व – विविद्यालय का मुद्रणालय।

(7) श्रीपति, वी। और थिरूवेंगडम, एके (2004), संवैधानिक शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाने का संशोधन, संवैधानिक कानून के अंतर्राष्ट्रीय जर्नल, 2 (1): 148–158, ऑकसफोर्ड विश्वविद्यालय दवाएँ।

(8) मेहता, अरूण सी। भारत में शैक्षिक सूचना प्रणली और इसकी सीमाएँः सुधार के सुझावः राष्ट्रीय शैक्षिक योजना संस्थान और शासन प्रबंध। नई दिल्ली।

प्राचीन काल में तक्षशिला विश्वविद्यालय की महत्ता

डॉ० जय प्रकाश पाण्डेय

(एसो० प्रोफ़ेसर)
प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग
स्नातकोत्तर महाविद्यालय पट्टी, प्रतापगढ़।

प्राचीन काल से ही भारत में ज्ञान विज्ञान की शिक्षा प्रदान करने के लिए विभिन्न शिक्षा केंद्रों की स्थापना की गई थी। वैदिक युग में तो गुरुकुल ही शिक्षा प्रदान करने के प्रधान केंद्र थे। इस युग में वेद का ज्ञान स्मरण शक्ति पर ही आधृत था, और वेद के मंत्रों को कंठस्थ कर लिया जाता था। इसका अध्ययन और अध्यापन दोनों मौखिक था। वेद मंत्रों की व्याख्या और अर्थ का विकास संवाद पर ही आश्रित था। अरण्य जैसे एकांत स्थल ब्रह्मर्षियों की साधना–भूमि थी जहां विद्यार्थी गुरु की सेवा करते हुए अध्ययनरत रहता था किंतु बाद में विशाल और भव्य शिक्षा केंद्रों का विकास हुआ। ऐसे शिक्षा केंद्रों के विकास में सुधी और विद्वान राजाओं का सहयोग प्रमुख था, जिन्होंने आर्थिक सहायता प्रदान कर ऐसे शिक्षा केंद्रों के उन्नयन में महत्वपूर्ण कार्य किया। प्रमुख राजधानियों और बड़े बड़े नगरों के अतिरिक्त छोटे–छोटे गांव भी शिक्षा के केंद्र थे। ऐसे गांवों को "अग्रहार" कहा जाता था, जिसकी व्यवस्था के लिए राजा की ओर से कुछ गांव विद्वान शिक्षक, ब्राह्मण को प्रदान कर दिए जाते थे। बौद्ध विहारों की तरह हिंदू मंदिर भी शिक्षा के केंद्र के रूप में विकसित हुए। काशी, कांची, कर्नाटक, नासिक जैसे नगर अपने आप विद्या केंद्रों के रूप में विख्यात हुए। तक्षशिला, पाटलिपुत्र, कन्नौज, धारा एवं अनहिल पाटन नामक विभिन्न राजधानियां प्रधान शिक्षा केंद्रों के रूप में विख्यात हुई। रामायण एवं महाभारत जैसे प्रसिद्ध महाकाव्यों से शिक्षा के केंद्रों के विषय में जानकारी प्राप्त होती है, जहां उस युग के विद्यार्थी महान ऋषि यों के सानिध्य में जाकर विभिन्न विषयों की शिक्षा प्राप्त करते थे। प्रयाग में संगम के तट पर महर्षि भरद्वाज का आश्रम था, जिसके चारों ओर सुंदर वृक्ष और पुष्प के वृक्ष लगे हुए थे। आश्रम में छात्रों द्वारा वेद पाठ किया जाता था। ऋषि –मुनियों के साथ मृग एवं पक्षी भी आश्रम में विश्राम करते थे। अध्ययन –अध्यापन और आवास के लिए पर्णशालाओं का निर्माण किया गया था। विद्याश्रम में हवन– पूजन किया जाता था। इसीप्रकार का आश्रम चित्रकूट में बाल्मीकि का था, जो मंदाकिनी नदी के तट पर स्थित था, जहां अध्ययन के लिए छात्र निवास करते थे। वशिष्ठ के आश्रम में भी ज्ञान प्रदान किया जाता

था। महर्षि अगस्त्य का आश्रम दंडकारण्य मैं था, जहां उनके समस्त शिष्य यज्ञ और अध्ययन में लगे रहते थे। विद्या और ज्ञान के ऐसे ही मुनि और ऋषियों के आश्रमों का विवरण महाभारत में मिलता है। मालिनी नदी के तट पर स्थित ब्रह्मर्षि कण्व का आश्रम था, जो ज्ञान गरिमा से संपृक्त था। मनोरम प्राकृतिक स्थल में स्थित होने के कारण वह आश्रम तपस्वियो और अध्येताओ के आकर्षण का केंद्र बिंदु था। यहां अनेक अनेक विद्याओं तथा विभिन्न दार्शनिक विचारों पर विद्यार्थियों को व्याख्यान दिए जाते थे। इसी प्रकार का आश्रम महर्षि व्यास का था जो हिमालय पर्वत पर स्थित था। उनके निर्देशन में सुमंत, वैशंपायन, जैमिनी आदि वेद का अध्ययन करते थे। नैमिषारण्य में महर्षि शौनक का आश्रम था, जहां विद्यार्थियों का अध्ययन काल 12 वर्षों के सत्र का था। वहां विभिन्न दर्शनों एवं विद्या की शिक्षा दी जाती थी। गंगद्वार में ब्रह्मर्षि भरद्वाज का आश्रम था, जहां विभिन्न वेद–वेदांगो और शास्त्रों –शस्त्रों का ज्ञान छात्रों को प्रदान किया जाता था। इसी आश्रम में महाराज द्रुपद और द्रोणाचार्य ने साथ–साथ शिक्षा ग्रहण की थी। महेंद्र पर्वत पर परशुराम का आश्रम स्थित था जहां अन्य विद्यावों के अतिरिक्त युद्ध कौशल का भी ज्ञान प्रदान किया जाता था, इसी क्रम में अनेकानेक विश्वविद्यालयों की भी स्थापना हुई जिनमें तक्षशिला विश्वविद्यालय का नाम अग्रगण्य था।

प्राचीन काल में तक्षशिला ज्ञान योग विद्या के क्षेत्र में आता था। अद्यावधि यह पाकिस्तान में है। इसकी प्रसिद्धि सातवीं सदी ई०पू० में ही हो गई थी। रामायण में वर्णित है कि इसकी स्थापना भरत ने की थी, और इसके प्रशासन की जिम्मेदारी तक्ष को थी।[1] अतः तक्ष के नाम पर इस स्थान का नाम तक्षशिला हुआ । महाभारत से ज्ञात होता है कि जन्मेजय ने अपना नागयज्ञ यही संपन्न किया था।[2] इन प्रमाणों से ज्ञात होता है कि तक्षशिला उत्तर वैदिक काल में ही एक नगर के रूप में विकसित हो चुका था। जातकों में वर्णित है कि देश के विभिन्न स्थानों से छात्र वहां जाकर आचार्यों के सानिध्य में शिल्प का ज्ञान प्राप्त करते थे।[3] यहाँ वेद, हस्तिसूत्र, धनुर्वेद, आयुर्वेद योग 18 शिल्पों की शिक्षा छात्रों को प्रदान की जाती थी। यहां देश के कोने कोने से विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने के लिए आते थे। इनमें वाराणसी, पाटलिपुत्र, राजगृह, मिथिला, उज्जयिनी आदि नगरों के छात्रों का वर्णन प्राप्त होता है।[4] महात्मा बुद्ध का समकालीन पाटलिपुत्र निवासी जीवक ने तक्षशिला में जाकर अध्ययन किया था, जो आयुर्वेद का महान विद्वान बना ।

वह महात्मा बुद्ध का समकालीन था । यहाँ से शिक्षा प्राप्त बड़े–बड़े सम्राट और विख्यात विद्वान थे जिनमे कोशल–शासक प्रसेनजीत, मौर्य सम्राट चंद्रगुप्त, महान अर्थशास्त्री कौटिल्य, ख्यातिलब्ध वैद्य जीवक वैयाकरण पाणिनि और पतंजलि यहां से शिक्षा ग्रहण करके अपने अपने क्षेत्र में विख्यात हुए थे। महाभारत से विदित होता है कि आचार्य धौम्य के शिष्य उपमन्यु, आरुणि और वेद ने तक्षशिला में ही शिक्षा ग्रहण की थी। ख्यातिलब्ध इन व्यक्तियों के कार्यों से यह स्पष्ट है कि यहां विभिन्न विषयों की शिक्षा प्रदान की जाती थी। वेदत्रयी, अष्टादश शिल्प, व्याकरण, दर्शन आदि विभिन्न विषयों का अध्यापन कार्य होता था। आयुर्वेद, शल्यचिकित्सा, धनुर्विद्या तथा संबद्ध युद्ध कला, ज्योतिष, भविष्य–कथन, मुनीमी, व्यापार, कृषि, रथचालन, इंद्रजाल, नाग वशीकरण, गुप्तनिधि, अन्वेषण, संगीत, नृत्य और चित्रकला अष्टादश शिल्प के अंतर्गत थे।[5] ब्राह्मण के साथ क्षत्रिय भी वेदाध्ययन करते थे और क्षत्रिय के साथ ब्राह्मण भी धनुर्विद्या सीखता था। जातकों से विदित होता है कि एक ब्राह्मण राजपुरोहित ने अपने पुत्र को धनुर्विद्या की शिक्षा प्राप्त करने के लिए तक्षशिला भेजा था।[6] चौथी सदी ईसा पूर्व से छठी सदी तक तक्षशिला पर अनेकानेक आक्रमण हुए, इनमें यवन, यवन– बख्त्री, शक, पहल्व, कुषाण और हूणों के नाम अग्रगण्य है। अनेकानेक आक्रमणों के उपरांत भी तक्षशिला अपने को यथाशक्ति रक्षित करने का प्रयास किया था। इन आक्रमणों का परिणाम यह हुआ कि नवीन ज्ञान–विज्ञान का संपर्क भारत से हुआ तथा भारतीय जनमानस में उनका प्रवेश भी प्रारंभ हो गया। विदेशी खरोष्ठी लिपि का धीरे–धीरे प्रचार–प्रसार एवं यूनानी तक्षण कला, मुद्रा निर्माण कला तथा दर्शनशास्त्र का प्रसार भारत में होने लगा। इससे भारतीय विषयों में एक नया अध्याय जुड़ा। जातक युग में तक्षशिला में नैष्ठिक ब्रह्मचारियों की संख्या अधिक थी जो वेद और शिल्प में पारंगत होकर एकांतवास करते थे। ब्रह्मचारियों के साथ उनके शिष्य भी रहते थे, जातकों से ज्ञात होता है कि एक आचार्य के निर्देशन में पांच–पांच सौ छात्र शिक्षा प्राप्त करते थे।[7] ऐसे अनेकानेक आचार्य थे जो सैकड़ों विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान करते थे। पाठ्यक्रम निर्धारित था छात्रों को अपनी इच्छा अनुसार विषयों को पढ़ने का अधिकार था। शिक्षा का प्रधान उद्देश्य शिक्षित एवं ज्ञानशील होना था न कि उपाधि प्राप्ति । शिक्षा से मनुष्य का जीवन विशुद्ध, प्रज्ञा संपन्न, परिष्कृत, और समुन्नत ही नहीं होता बल्कि समाज भी सात्विक और नैतिक आदर्शों का पालन करता हुआ सन्मार्ग पर चलकर

वैदिक युग में तो गुरुकुल ही शिक्षा प्रदान करने के प्रधान केंद्र थे। इस युग में वेद का ज्ञान स्मरण शक्ति पर ही आधृत था, और वेद के मंत्रों को कंठस्थ कर लिया जाता था। इसका अध्ययन और अध्यापन दोनों मौखिक था। वेद मंत्रों की व्याख्या और अर्थ का विकास संवाद पर ही आश्रित था।

किंतु बाद में विशाल और भव्य शिक्षा केंद्रों का विकास हुआ। ऐसे शिक्षा केंद्रों के विकास में सुधी और विद्वान राजाओं का सहयोग प्रमुख था, जिन्होंने आर्थिक सहायता प्रदान कर ऐसे शिक्षा केंद्रों के उन्नयन में महत्वपूर्ण कार्य किया।

विकसित होता है। मनुष्य का जीवन शिक्षा और ज्ञान से ही धर्म प्रवण, नैतिक मूल्यों से युक्त, उच्च आदर्शों से संवलित और बहुमुखी व्यक्तित्व से युक्त होता है। विद्यार्जन से व्यक्ति आत्मनिर्भरता प्राप्त करता ही है साथ ही परिवार और समाज के निर्माण में योग प्रदान करता है। मनुष्य की धार्मिक वृत्तियों का उत्थान उसके चरित्र का उत्थान, उसके व्यक्तित्व का उत्थान, उसके सामाजिक उत्तरदायित्व का निष्पादन और उसके सांस्कृतिक जीवन का उत्थान शिक्षा के प्रधान उद्देश्य हैं। शिक्षा के माध्यम से मनुष्य अपने इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति में लगा रहता है। अथर्ववेद में विद्या अथवा शिक्षा के उद्देश्य और उसके परिणाम का वर्णन किया गया है। जिसमें श्रद्धा, मेधा, प्रज्ञा, धन, आयु और अमृतत्व को सन्निहित किया गया है। जातक में वर्णित है कि एक आचार्य से 103 विद्यार्थी धनुर्वेद की शिक्षा ग्रहण करते थे।[8] कृष्णा और बलराम ने संदीपन मुनि के आश्रम में शिक्षा ग्रहण की थी। महाकाव्यों से गुरुकुल ओं का संदर्भ मिलता है, 2 शिक्षा और विद्या के विख्यात केंद्र थे। भरद्वाज और वाल्मीकि के आश्रम उच्च कोटि के गुरुकुल थे। महाभारत में वर्णित है कि मारकंडे और कण्व ऋषिकेश आश्रम शिक्षा के प्रधान केंद्र स्थल थे। शिक्षा प्राप्त करने एवं शिक्षा देने में कोई भेदभाव नहीं था। ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य सभी समान रूप से शिक्षा ग्रहण करते थे। जातक में वर्णित है कि आचार्य के यहां ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के साथ–साथ दर्जी और मछली मारने वाले निम्न जाति के लोग भी शिक्षा ग्रहण करते थे।[9] इससे स्पष्ट है कि उस युग में जाति व्यवस्था में लचीलापन था। धनी और निर्धन दोनों प्रकार के छात्र समान रूप से गुरु के शिष्य होते थे।[10] आचार्य प्रायः शिष्यों को पूर्ण रूप से शिक्षित करने के बाद ही उससे दक्षिणा ग्रहण करता था। शिक्षा समाप्ति के बाद गुरु को दक्षिणा प्रदान करना शिष्य का परम कर्तव्य माना जाता था। जनक ने याज्ञवल्क्य से कहा था कि मेरे पिता का यह विचार है कि बिना पूरी तरह शिक्षा प्रदान किए शिष्य कुछ ग्रहण नहीं करना चाहिए गुरु को दक्षिणा प्रदान करने में यह भाव निहित था कि शिष्य अपने गुरु के प्रति अत्यंत आदर और सम्मान रखता था। वरना ज्ञान की दक्षिणा से कोई तुलना नहीं। यह माना गया है कि ब्राह्म विद्या सर्वाधिक बहुमूल्य है। उससे दक्षिणा की किसी प्रकार तुलना नहीं हो सकती लेकिन फिर भी गुरु को दक्षिणा प्रदान करने की प्रथा समाज में व्याप्त हो गई थी जो आचार्य के प्रति शिष्य की अनुपम श्रद्धा और सम्मान व्यक्त करती है। कात्यायन को उद्धृत करते हुए अपरार्क ने लिखा है कि गुरु को ब्राह्मण छात्र गाय दें, छत्रिय गांव दें, तथा वैश्य घोड़ा दें। ब्राम्हण आचार्यों के पास जो भी गांव अथवा भूमि आदि थी वह सब क्षत्रियों द्वारा प्रदान की गई थी। मनु, शंख और विष्णु जैसे शासकों का यह विचार था कि जो गुरु धन की लालच में शिक्षा प्रदान करते थे वह 'उपाध्याय' कहे जाते थे। कौरव और पांडव राजकुमारों को शिक्षा प्रदान करने के लिए नियुक्त द्रोणाचार्य को भीष्मपितामह ने निशुल्क सुसज्जित आवास सुलभ कराया था। कालिदास ने उल्लेख किया है कि आचार्य वरतंतु ने अपने शिष्य कौत्स से 14 करोड़ दक्षिणा की मांग की

थी, जिसके लिए उस शिष्य को कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। उसने अंततोगत्वा सम्राट रघु से अपेक्षित धन की प्राप्ति की और तदंतर गुरु दक्षिणा दी। उत्तंक से गुरु पत्नी राजमहिषी ने कर्णफूल दक्षिणा रूप में मांगी थी। मिलिंद पन्हो में वर्णित है कि उस युग में धनी छात्र धनराशि के साथ गुरु–दक्षिणा देता था और निर्धन छात्र श्रम करके गुरु–दक्षिणा प्रदान करता था।[11] जातक में वर्णित है कि धनी छात्रों द्वारा एक सहस्र कर्षापण गुरु को दक्षिणा के रूप में अर्पित किया जाता था।[12]

कभी–कभी आचार्य शिष्य द्वारा प्रदत्त दक्षिणा के प्रति उदास और निस्पृह रहते थे और उसे लौटा देते थे। मिलिंद ने आचार्य नाग सेन को दक्षिणा रूप में बहुमूल्य रत्न और वस्त्र प्रदान किए किंतु उन्होंने उसे यह कहकर वापस कर दिया कि मुझ जैसे साधु के लिए इसकी कोई आवश्यकता नहीं। योग्य एवं मेधावी छात्रों को राजकीय सहायता पर शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजा जाता था। वाराणसी और राजगृह के राजपुरोहित–पुत्र और युवराजों के साथ जाने वाले ऐसे छात्रों को देखा जा सकता था। स्पष्ट है कि इस युग में प्रतिभाशाली एवं योग्य निर्धन छात्रों को राज्य और समाज की ओर से हरसंभव सहयोग प्राप्त होता था। तक्षशिला के शिक्षा–केंद्र का महत्व चौथी सदी ईस्वी तक ही था क्योंकि पांचवी सदी में भारत की यात्रा करने वाले ने इस स्थान से संबंधित ऐसे कोई विवरण नहीं दिया है जिससे यह ज्ञात हो सके कि तक्षशिला उस समय शिक्षा और विद्या का प्रधान–स्थल था।

संदर्भ ग्रन्थ सूचीः–

1–रामायण 7'101, 10'16 ।

2–महाभारत 1'3'20 ।

3–जातक 3, पृ० 158 ।

4–वही 1, पृ० 272, 285', 2, पृ० 85, 87; 3, पृ० 238; 4, पृ० 50, 309; 312 ।

5–वही, 3, पृ० 115 ।

6–जातक सं० 522 ।

7–जातक 5, पृ० 405 ।

8–वही 5, पृ० 457 ।

9–वही, सं० 498 ।

10– वही, 3, पृ० 93 ।

11–मिलिंद पन्हो, 6'2 ।

12– जातक 1, पृ० 272, 285; 4, पृ० 50, 224 ।

वैदिक कालीन शिक्षा एवं आधुनिक कालीन शिक्षा के उद्देश्यों में अन्तर

सुजीत कुमार गुप्ता

असिस्टेंट प्रोफेसर
शिक्षक शिक्षा विभाग
नेहरु ग्राम भारती (मानित विश्वविद्यालय)
प्रयागराज

प्रस्तवना

जब से मानव सभ्यता का सूर्य उदय हुआ है तभी से भारत अपनी शिक्षा तथा दर्शन के लिए प्रसिद्ध रहा है। यह सब भारतीय शिक्षा के उद्देश्यो का ही चमत्कार है कि भारतीय संस्कृत नें संसार का सदैव पथ–प्रदर्शन किया और आज भी जीवित है। वर्तमान युग में भी महान दार्शनिक एवं शिक्षा शास्त्रियों इसी बात का प्रयास कर रहे हैं कि शिक्षा भारत में प्रत्येक युग की शिक्षा के उद्देश्य अलग–अलग रहे है इसलिए वर्तमान भारत जैसे जनतन्त्रीय देश के लिए उचित उद्देश्यो के निर्माण के सम्बन्ध में प्रकाश डालने से पूर्व हमें अतीत की ओर जाना होगा।

वैदिक कालीन शिक्षा का उद्देश्य–

वैदिक काल में शिक्षा को प्रकाश और शक्ति का स्त्रोत समझा जाता था। इसके द्वारा मनुष्य अपनी बृद्धि प्रखर कर जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में ठीक मार्ग का अनुसरण कर सकता था। शिक्षा के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपनी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक शक्तियों का विकास कर इस संसार में और परलोक में जीवन के वास्तविक सुख को प्राप्त कर सकता था।[1] शिक्षा का अंतिम ध्येय सांसारिक प्रलोभनों से मुक्त होकर वास्तविक सत्य की खोज करना था, जिससे मनुष्य मोक्ष की प्राप्ति कर सके। मनुष्य अन्य व्यक्तियों को शिक्षा देकर पुर्वजों से उत्करण हो सकता। था। तात्पर्य यह है कि शिक्षा प्राप्त करने का जीवन में बहुत महत्व था। ब्रहाचर्य आ्रम में चरित्र निर्माण करके और ज्ञान की प्राप्ति करके प्रत्येक विद्यार्थी अपने को समाज के लिए उपयोगी बनाता था और स्वयं आध्यात्मिक उन्नति करके अपने जीवन के लक्ष्य मोक्ष की ओर अग्रसर होता था। शिक्षा का आरंम्भ गायत्री मंत्र से होता था। इस मंत्र में विद्यार्थी प्रार्थना करता है कि ईश्वर उसकी बुद्धि सन्मार्ग की ओर प्रेरित करे। ब्रह्मचर्य आश्रम में तपस्वियों जैसा सादा, कठोर जौवन व्यतीत करके वह ऐसे चरित्र का निर्माण करता था कि संसार के प्रलोभन उसे सन्मार्ग से भ्रष्ट न कर सकें। इस काल में वह ऐसी नैतिक तथा

आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त करता था जिसके द्वारा वह समाज के प्रति अपने कर्तव्यों की पुर्ति सफलतापूर्वक कर सके। व्यक्तिगत रूप से धरम की मर्यादा के भीतर धन का अर्जन कर और संसार के सुखों का भी धर्म की मर्यादा् के भीतर ही उपभोग कर जीवन के वास्तविक लक्ष्य, मोक्ष को प्राप्त कर सके। भारतीयों की धारणा थी कि इस प्रकार शिक्षा प्राप्त करके ही व्यक्ति सांसारिक सुख–दुःख से छटकर स्थायी सुख और शांति को प्राप्त कर सकता था।

शैक्षणिक संस्कार और ब्रहाचर्य आश्रम –

ऋग्वेद में उपनयन संस्कार का स्पष्ट उल्लेख नहीं है। उपनयन का अर्थ है अध्यापक के निकट जाना। इस काल में पाठशालाएं न थीं। शिष्य गुरु के परिवार के सदस्य के रूप में उसके घर रहते थे। सब विद्यार्थी घर के कार्यों में गुरु की सहायता करते और विद्या प्राप्त करते थे। वैदिक आर्यों की धारणा थी कि वैदिक साहित्य के स्वाध्याय से किसी व्यक्ति का दूसरा जन्म होता है। इसलिए वे सभी नर–नारी जो वैदिक ग्रंथों का अध्ययन व अध्यापन करते थे। द्विज कहलाते थे। उपनयन के तुरंत बाद मेधाजनन नाम की धार्मिक क्रिया होती थी जिससे स्पष्ट है कि शिक्षा में बुद्धि के विकास पर बहुत जोर दिया जाता था। वैदिक ग्रंथों का अध्ययन करने वाले विद्यार्थी के लिए ऋग्वेद में ब्रह्मचारी शब्द प्रयुक्त हुआ है।[2]

तैत्तिरीय संहिता में लिखा है कि प्रत्येक व्यक्ति तीन वर्गों का ऋणी होता है। ये तोन वर्ग– देवता, ऋषि और पूर्वज थे। गुहस्थी यज्ञ करके देवताओं से, वैदिक साहित्य का अध्ययन करके ऋषियों से।[3] और संतान उत्पन्न करके और उसे अच्छी शिक्षा देकर पूर्वजों से उऋण हो सकता था। इससे यह स्पष्ट है कि शिक्षा प्राप्त करने का जीवन में बहुत महत्व था। ब्रहावर्य अ्रम में चरित्र–निर्माण करके और ज्ञान की प्राप्ति करके प्रत्येक विद्यार्थी अपने को समाज के लिए उपयोगी बनाता था और स्वयं आध्यात्मिक उन्नति करके अपने जीवन के लक्ष्य मोक्ष की ओर अग्रसर होता था। शिक्षा व्यवस्था प्रारम्भ में संम्भवतः पिता ही अपनी संतान को शिक्षा देता था। बाद में वैदिक ग्रन्थों के विद्वान गुरू भी शिक्षा देने लगे। बालक और बालिकाओं दोनों को शिक्षा दी जाती थी। यह इसे स्पष्ट है कि अनेक वैदिक सूक्त विश्ववारा, सिकता– निवावरी घोषा, लोपामुद्रा और अपाला आदि विदुषी स्त्रियों की रचनाएं हैं। अनेक स्त्रियां यज्ञों में मंत्रों का उच्चारण करती थीं। इससे स्पष्ट है कि माता– पिता उनकी शिक्षा का उचित प्रबंध करते थे।

पाठ्य विषय :–

गुरू बालकों को वैदिक सूक्त और वीरगाथाएं पढ़ाते थे। ऋग्वेद के सूक्त तत्कालीन कवियों की रचना थे। अतः उन्हें अपौरुषेय नहीं माना जाता था। वैदिक ऋषि सृष्टि के रहस्य को जानने को बहुत उत्सुक थे। वे ग्रहों और तारों में अंतर समझते थे। उन्होंने चन्द्रमा और सूर्य की गति को मिलाकर मासो पर आधारित पंचांग का आविष्कार कर लिया था। इससे स्पष्ट है कि उन्होंने ज्योतिष विज्ञान में भी कुछ प्रगति कर ली थी। पिता अपनी संतान को परिवार के

व्यवसाय की शिक्षा देता था। स्त्रियां कपड़ा रंगने, कसीदा काढ़ने और टोकरी बनाने का कार्य करती थीं। इन सभी शिल्पो की शिक्षा बालकों को अपने माता–पिता से मिलती होगी।

प्राचीन काल में शिक्षा का माध्यम केवल एकमात्र गुरू द्वारा दिया गया ज्ञान होता था लेकिन आधुनिक काल में शिक्षा का माध्यम विभिन्न प्रकार के तकनीक के द्वारा हो गया है। वैदिक काल में शिक्षा का उद्देश्य मोक्ष प्राप्त करना था आधुनिक समय में शिक्षा को बालक के शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक तथा सामाजिक दशा का भी ध्यान दिया जा रहा है।

शिक्षा प्रणाली :–

ऋग्वेद के एक सूक्त से यह स्पष्ट है कि विद्यार्थी पिता या गुरू से मौखिक शिक्षा प्राप्त करते थे और अपने पाठ को बार–बार दोहराकर कंठस्थ करते थे।[4] एक दूसरे सूक्त से ज्ञात होता है कि वाद–विवाद का शिक्षा पद्धति में महत्वपूर्ण स्थान था।[5] यह सम्भव है कि वैदिक आर्य लिखना जानते हों किन्तु यह निश्चित है कि इस काल में शिक्षा पद्धति में लेखन कला का कोई महत्व न था। शिक्षा में पाठ को कंठस्थ करने पर बहुत जोर था। किंतु जो विद्यार्थीं सूक्त कठंस्थ करते थे वे उसका अर्थ भी भली–भांति जानते थे। वाद–विवाद के द्वारा विद्यार्थी में भाषण देने का विकास भी होता था।

आधुनिक कालीन शिक्षा का उद्देश्य–

आधुनिक शिक्षा में शिक्षा का उद्देश्य बालक के विभिन्न विकास जैसें– सामाजिक विकास, मानसिक विकास, शारीरिक विकास आदि को बढ़ावा देना है। आधुनिक शिक्षा विद्यार्थी केन्द्रित शिक्षा बन गया है। बिना किसी विद्यार्थी को शिक्षा में उत्साहित न होने पर उसे शिक्षा नहीं दिया जा सकता। आधुनिक शिक्षा में शिक्षण के क्षेत्र में वृध्दि करने के लिये हो रहे बदलाव को ध्यान में रखकर शिक्षा प्रदान किया जा रहा है। आधुनिक शिक्षा में शिक्षा को सुलीा बनाने के लिये शिक्षण की रुपरेखा, उसके पाठ्यक्रम, उसका निर्धारित समय को पूर्णतः ध्यान दिया जा रहा है।

आधुनिक पाठ्यक्रम में बालक के हर एक रुचि को ध्यान में रखा जाता है अथवा उसके सर्वांगीण विकास पर विशेष बल दिया जाता है।

पंडित जवाहर लाल नेहरु ने अपनी आत्मकथा में एक स्थल पर स्पष्ट रुप से इस तथ्य का उल्लेख किया है कि ''भारतीय संस्कृति का उददश्य ज्ञान की खोज है इसी दृष्टि से यही प्राचीन भारतीयों ने शिक्षा प्रणाली का विकास किया था। भारतीयों के लिये ज्ञान शब्द का कोई सीमित अर्थ नहीं था। शिक्षा के द्वारा वे केवल सांसारिक ज्ञान की ही नहीं अपितु परलोक संबन्धित ज्ञान को भी प्राप्त करने का प्रयत्न करते थे।''

महात्मा गांधी :–

''शिक्षा से मेरा ताप्तर्य बालक और मनुष्य के शरीर, मन और आत्मा के सर्वांगीण एवं सर्वोत्कृष्ट विकास से है।''

आधुनिक शिक्षा में सुधार के लिये विभिन्न नीतियां अपनायी गयी–

1. प्राथमिक शिक्षा :–

प्राथमिक शिक्षा ऐसा आधार है जिस पर देश तथा इसके प्रत्येक नागरिक का विकास निर्भर करता है। हाल के वर्षों में भारत ने प्राथमिक शिक्षा में नामांकन, छात्रों की संख्या बरकरार रखने, उनकी नियमित उपस्थित दर और साक्षरता के प्रसार के सन्दर्भ में काफी प्रगति की है। जहां भारत की उन्नति शिक्षा पद्धति को भारत देश के आर्थिक विकास का मुख्य योगदानकर्ता तत्व माना जाता है, वहीं भारत में आधारभूत शिक्षा की गुणवत्ता फिलहाल एक चिंता का विषय है। भारत में 14 साल की उम्र तक के सभी बच्चों को निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा प्रदान करना संवैधानिक प्रतिबद्धता है। देश के संसद ने वर्ष 2009 में शिक्षा का अधिकार अधिनियम पारित किया था। जिसके द्वारा 6 से 14 वर्ष के सभी बच्चों के लिये शिक्षा एक मौलिक अधिकार हो गयी थी, हालांकि देश में अभी आधारभूत शिक्षा को सार्वभौम नहीं बनाया जा सकता है इसका अर्थ है बच्चों का स्कूलो में 100 फीसदी नामांकन और स्कूलिंग सुविधाओं से लैस हर घर में उनकी संख्या को बरकरार रखना। इसी कमी को पूरा करने हेतु सरकार ने वर्ष 2001 में सर्व शिक्षा अभियान योजना की शुरुआत की थी। जो अपनी तरह की दुनियां में सबसे बड़ी योजना था।

बाल अधिकार :–

बाल अधिकार आज के समय की सबसे बड़ी और उभरती हुयी जरुरत है जिसके बारे में लोगों में जानकारी का अभाव है। इस भाग में ऐसे कई अधिकारों पर विशेष रुप से ध्यान केन्द्र का उददेश्य बच्चों के बाल अधिकारों का हनन होने से रोकना और उनके अधिकार सुरक्षित करना है।

नीतियां और योजनायें :–

6 से 14 साल की उम्र के बीच के हर बच्चे को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार है । इस 86 वें संविधान संशोधन अधिनियम के अनुच्छेद 21(a) जोड़ा गया और इसे कार्यन्वित करने के लिये सरकार द्वारा किये जा रहें प्रयासों की जानकारी इस भाग में दी गयी है।

बाल जगत :–

मल्टीमीडिया सामाग्री के विभिन्न भाग विज्ञान खण्ड आदि रचनात्मक सोच और सीखने की प्रक्रिया में बच्चों मे सक्रिय भागीदारी को प्रोत्साहित करते है। इसी तरह के अन्य उदाहरणो को इस भाग में प्रस्तुत किया गया है।

कम्प्यूटर शिक्षा :–

इस भाग के विभिन्न विषय अपनी सूचना और प्रौद्योगिकी की जानकारी में इजाफा करतें हुए उसके माध्यम से क्षमता निर्माण में उसके द्वारा हाने वाले महत्वपूर्ण योगदान की जानकारी देते है।

चर्चा मंच :–

शिक्षा का चर्चा मंच शिक्षा से जुड़े विभिन्न विषयो पर आपको अपने विचारो को प्रस्तुत करने के साथ और सूचनाओं का आदान–प्रदान करने का अवसर भी देता है।

निष्कर्ष :–

प्राचीन काल में शिक्षा का माध्यम केवल एकमात्र गुरू द्वारा दिया गया ज्ञान होता था लेकिन आधुनिक काल में शिक्षा का माध्यम विभिन्न प्रकार के तकनीक के द्वारा हो गया है। वैदिक काल में शिक्षा का उद्देश्य मोक्ष प्राप्त करना था आधुनिक समय में शिक्षा को बालक के शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक तथा सामाजिक दशा का भी ध्यान दिया जा रहा है।

यदि हम वैदिक काल के पर्यावरणीय परिवेश को जो कि एक शान्त तथा शहर के शोरगुल एवं प्रकृति के गोद में शिक्षा प्राप्त करे तो हम आधुनिकरण के परिवेश के साथ हम वैदिक काल के उद्देश्यो को भी अपने जीवन में भी निरवहन कर सकेगे। शिक्षा तो निरन्तर चलती रहती है बस उसका उद्देश्य, उसका पाठ्य क्रम और उसकी समय सीमा बदलती है। आज भले ही शिक्षा का उद्देश्य एवं पाठ्यक्रम आदि में बदलाव हो रहा है लेकिन हमारा एकमात्र उद्देश्य इस मानव शरीर को प्राप्त करना है कि इस संसार मे रह कर हम अपने कर्तव्यो के प्रति सजग रहे और इस मानव शरीर का प्रयोग हम लोग देश समाज में लायें।

संदर्भ ग्रन्थ सूची:–

1. ऋग्वेद 10, 717.
2. ऋग्वेद 10, 109, 5.
3. ऋग्वेद 7, 103.
4. तैत्तिरीय संहिता 6,3,10,5.

VALUE ORIENTED EDUCATION : ROLE OF TEACHER EDUCATION IN PROMOTING VALUE EDUCATION

Dr. Kavita

Assistant Professor
Forte Institute of Technology
Dept. of Education, Meerut

Abstract

The function of true education is to build an integrated personality and values are the integral to the process of education. Value education in also an education in the sense that it is the education for 'becoming'. This paper is addressing the issue of teacher's training for value education. Defining value education as education itself. How teachers to be trained to promote value education? and their role in creating situations and be imaginative to reflect on the situation by making students aware of values and highlighting its need.

The Present Context

The subject value education has come to acquire increasing prominence in educational discussions at all levels during recent times in our country. The issue has been projected as one of national priority in the National Educational Policy (NPE), 1986. The Policy declares: "the growing concern over the erosion of essential values and an increasing cynicism in society has brought to focus the need for readjustments in the curriculum in order to make education a forceful tool for the cultivation of social and moral values". According to National Curriculum for Primary and Secondary Education (1985), the crisis of values our society is passing through "demands more explicit and deliberate educational efforts towards value development". The first term of reference for the National Commission on Teachers (1983) was "to lay down clear objectives for the teaching profession with reference to the search for excellence, breadth of vision and cultivation of values."

Jean Piaget, remarked that the principal goal of education in create persons who are capable of doing new things, now simply repeating what other generations have done-people who are creative, inventive and discoverers.

Now the basic question arises. Are we, as educators doing new things that Piaget asked? Are so busy with what we teach our students, that we forget what it is they need to learn? Are we teach our students to ask questions about themselves, their role

in society, their attitudes and respond the increasing violence and intolerance? Our curriculum has to be more than syllabus more subject knowledge moving towards a process of discovery and invention of new ways of living. To do so, we should know:

The Integrality of Education and Values

Values are integral to the process of education. They are not add-ons. All education is, in sense, value education. 'Value-less' or 'value neutral' education is a contradiction in terms, given the meaning of 'value' and 'education'. Education is a process of bringing about 'desirable' changes in the way one thinks feels and acts in accordance with one's concept of the good life. In this sense, education necessarily involves the transmission of values. Our aims of education-development of personality, pursuit of knowledge, preservation of culture, training of character-are no more than statements of our value preferences. Towards realising them we design a curriculum, a planned collection of 'desirable' knowledge, skills, attitudes and values that we wish to pass on to the younger generation. And this we do in ways that do not violate the freedom and autonomy of the learner. In other words, education, in its aims, curriculum and methods, is inseparably linked with values. The demand for value orientation of education (and teachers' education), therefore, needs to be considered visa-vis internal reform of the objectives, content and processes of school education and teachers' education.

What does it mean to 'Value Educate'?

Value education is a process of education. This means that it is a process of inducing learning. Learning is not a passive process of absorption. It involves thinking, reflecting, questioning, feeling, doing, caring, experiencing.

Value education is also education in the sense that it is education for 'becoming '. It is concerned with the development of the total personality of the individual-intellectual, social, emotional, aesthetic, moral and spiritual. It involves developing sensitivity to the good, the right and the beautiful, ability to choose the right values in accordance with the highest ideals of life and internalising and realising them in thought and action. As such the process calls into play all human faculties-knowing, feeling and doing. Not only should the learner be enabled to know the right and the good, but also to care, to feel the appropriate emotions, concern and commitment and exercise the will to do the right thing. In other words, to 'value educate' is to develop rational critical thinking, to educate the emotions, to cultivate the imagination, to strengthen will and to train character of the learner.

How Teachers to be Trained to Promote Value Education?

This question has to be considered in the light of the purpose of value education already discussed. The purpose is to kindle the moral and aesthetic sensibilities of learners, to raise their level of value consciousness, to stimulate them

to think freely and critically, to develop the ability to judge actions and events rationally, and to choose and act courageously and with conviction for the sake of the larger social good. Accordingly, the teacher has to be trained to function as an agent who stimulates, provokes, informs and sensitises the learners with reference to value situations in life. Through involving the learners actively in discussion, dialogue and practical activities, the teacher should make them think and reflect on human actions and events. The teacher should also expose students to works of art, beauty in nature, and in human relationships and actions of moral worth, and develop their moral sensibilities. The institutional processes in the training institution should help teachers acquire these capabilities by providing concrete situations and opportunities and actively involve them in appropriate learning experiences.

Education should aim for integrated development in the student physical mental, moral and spiritual, besides imparting knowledge in various disciplines. It should strive to make him/her ideal citizens capable of shouldering the responsibilities of national reconstruction. Thus, the core message of value education for teachers and teacher educators is not that they should do extra or additional things but that they should do whatever they are expected to do by their calling-teaching, testing, and relating to the community, parents and students-with a sense of commitment, sincerity and dedication. The professional ethics for teachers is in itself a complete programme of value education for teachers.

Value education is not a sphere of activity that is distinct from the teacher's other professional activities-teaching, guiding pupils and interacting with them, organising co-curricular activities and the like. The very nature of teaching imposes certain obligations and commitments on a teacher. Essentially, teaching is an act to bring about learning. The primary obligations of a teacher are to the learner and knowledge. These obligations of a teacher are nonnegotiable. They imply that the teacher has to understand the learner as a person as well as a learner. Regarding the former, the teacher has to love the students and be genuinely interested in their growth and development. To get them to learn, teachers have to understand the way children learn, and equip themselves with all necessary pedagogical skills to promote learning in them. They should possess the right qualities of mind and heart necessary for the pursuit of knowledge-love of knowledge, curiosity and desire to know, sincere desire to keep on learning and update knowledge, humility and honesty to admit ignorance. They should have a sound social philosophy, characterised by social sensitivity, concern for social justice and human rights. It is essential that they carry out their professional obligations in accordance with the highest standards and ethics of the teaching profession. Teachers' education should provide sample experiences for the trainees to understand the professional

code and its rationale, and ensure its honest observance by teachers and teacher educators in the training institution.

CONCLUSION

In last we must say that education should aim for integrated development in the student physical mental, moral and spiritual, besides imparting knowledge in various disciplines. It should strive to make him/her ideal citizens capable of shouldering the responsibilities of national reconstruction. Thus, the core message of value education for teachers and teacher educators is not that they should do extra or additional things but that they should do whatever they are expected to do by their calling-teaching, testing, and relating to the community, parents and students-with a sense of commitment, sincerity and dedication. The professional ethics for teachers is in itself a complete programme of value education for teachers.

REFERENCES

1. Beyer, B.K. and Penna, AX (1971)- Concepts in Social Studies, Washington, D.C., National Council for the Social Studies.
2. Buddanda Swami (1983) How to Build Character A Primer: Ramakrishna Mission, New Delhi.
3. Core Group, Govt. of India (1992) – Value Orientation Education, New Delhi.
4. Downey, M. and Kelly, A.V. (1978)- Moral Education : Theory and Practice, Harper and Row, London.
5. Kaul, G.N. – Values and Education in Independent India.
6. Piaget, J. (1948)- The Moral Judgment of the Child, Free press, Illinosis.
7. Cooper, Jeremy and Louise G. (1997)- Educating for Justice, Social Values and Legal Education.
8. Heslep, Robert D. (1995)- Moral Education for Americans, Westport CT Praeger.
9. Gandhi K.K. (1993)- Value Education "A Study of Public Opinion, Gyan Publishing House, New Delhi.
10. Hopkins, E.W. (1824)- "Ethics of India", London.
11. Mukerji R.K. (1964)- "The Dimension of Values", An Unifield Theory, George Allen and Unwin Ltd. London.

Tibble J.W. (1971)- "Future of Teacher Education", London, Roubledge and Kagon Poul.

VEDIC SYSTEM OF EDUCATION

Dr. Rudra Kinker Verma

Assistant Professor (Guest Faculty)
Department of Commerce
B.N.M.V. College, Sahugarh, Madhepura (Bihar)

Abstract

The Vedic system of education may be ancient, but it can still be relevant in today's world. Unlike modern day education, it focuses on all-round development physical, mental, and emotional. You may decide that a gurukul isn't an option for your child, but can still instil these principles in them by supplementing their education with Vedic traditions. While India might not return to Vedic education as the only form of education, it does represent a desirable option for some Indians. Introducing these philosophies as part of broader curriculum, or at home, or in extra-curriculars are viable alternatives. Enough has been discussed about the problems ailing the Indian Education system. Maybe a healthy balance of traditional Vedic system and modern education is a panacea that the Indian education system needs?

Vedic Education is not the same as religious education. Before the British arrival and decline of Vedic Education, India was ruled by the Mughals (Muslims by religion). The system existed and flourished even under their rule over 3 centuries. It points to the religious neutrality of the system. The aspect of peer learning was even praised by the British Governor of Bengal (comprised of modern day Bangladesh, West Bengal, Orissa, Bihar, and North East India). According to historian and author, Mr. A.S. Altekar, the aims of Vedic education are as under:

INTRODUCTION

The education system which was evolved first in ancient India is known as the Vedic system of education. In other words, the ancient system of education were based on the Vedas and therefore it was given the name of Vedic Educational System. Vedas occupy a very important place in the Indian life. The basis of Indian culture lies in the Vedas which are four in number – Rigveda, Samveda, Yajurveda, and Atharavaveda. Some scholars have sub divided Vedic Educational period into RigVeda period, Brahmani period, Upanishada period, Sutra (Hymn) period, Smriti period etc but all these period, due to predominance of the Vedas, there was no

change in the aims and ideals of educations. That is why, the education of these periods, is studied under Vedic period.

"Swadesh Pujyate Raja, Vidwan Sarvatra Pujyate"

This verse widely quoted in India illustrates the significance of education in India. The education system of Vedic period has unique characteristics and qualities which were not found in the ancient education system of any other country of the world.

According to Dr. F. E. Key, "To achieve their aim not only did Brahmans develop a system of education which, survived even in the events of the crumbling of empires and the changes of society, but they, also through all those thousands of years, kept a glow of torch of higher learning."

In the words of Dr. P. N. Prabhu, "Education in ancient India was free from any external control like that of the state and government or any party politics. It was the kings duties to see that learned Pundits, pursued their studies and performed their duty of imparting knowledge without interference from any source what so ever."

The education system that prevailed during the Vedic times had some unique characteristics. Education was confined to the upper castes, and to those who were BRAHMACHARIS. In Indian tradition, a person's life cycle is divided into four stages of which BRAHMACHARI is the second phase. This is the time set aside for learning and acquiring skills. During Vedic period, most of the upper castes, which were either Brahmins or Kshatriyas had their education in a unique system called GURUKULAM. Students had their education by living with their preceptors in forests far removed from cities, towns or villages. The life of students who were called SHISYAS was very rigorous and demanding. Those who failed to live up to these high standards would simply fall by the wayside. There were legendary acharyas like Sanandeepani and Dronacharya who taught epic heroes like Krishna and Arjuna martial skills, but what makes the Vedic period unique is the existence of sages like Gautama and Jaimini who were founder of different schools of Indian philosophy like *Nyaya* and *Purva Mimamsa.* This was a period of intense intellectual activity and speculation, which we hardly find even now. While *Nyaya* and *Vaisheshika* were theistic philosophies, *Sankhya* was atheistic. There were of two types of BRAHMACHARIS who attended such GURUKULAMS, they were: UPAKURVANA BRAHMACHARI who remains a student for a limited time period after which he marries and becomes a householder and NAISHTHIKA BRAHMACHARI who remains a student and celibate throughout life dedicated to the pursuit of learning.

SALIENT FEATURES OF VEDIC EDUCATION IN ANCIENT INDIA

1. Infusion of Spiritual & Religious Values:

The primary aim of ancient education was instilling into the minds, of pupils a spirit of being pious and religious for glory of God and good of man. The pursuit of knowledge was a pursuit of religious values. Education without religions instructions was not education at all. It was believed that a keener appreciation of spiritual values could be fostered only through a strict observance if religious rites.

2. Character Formation and Personality Development

In no period of the History of India, was so much stress laid on character building as in the Vedic period. Wisdom consisted in the practice of moral values. Control of senses and practice of virtues made one a man of character. Moral excellence could come only through practising moral values. The teacher and the taught were ideals of morality, for both practiced it all through their lives. The Guru in the ancient times realized that the development of personality is the sole aim of education. The qualities of self-esteem, self confidence, self restraint and self respect were the personality traits that the educator tried to inoculate in his pupils through example.

3. Development of Civic Responsibilities and Social Values

The inculcation of civic virtues and social values was an equally important objective of education in India. The Brahmachari after his education in the Gurukulas went back to the society to serve the rich and the poor, to relieve the diseased and the distressed. He was required to be hospitable to the guests and charitable to the needy. After a certain period of studies he was required to become a householder and to perpetuate his race and transmit his culture to his own off springs.

4. Knowledge:

Education is knowledge. It is mans third eye. This aphorism means that knowledge opens mans inner eye, flooding him with spiritual and divine light, which forms the provision for man‘s journey through life.

5. Aims of Education:

The ultimate aim of education in ancient Indian was not knowledge as preparation for life in this world or for life beyond, but for complete realization of self for liberation of the soul from the chains of life both present and future.

6. Methods of Instruction

It was a pupil centered education. No single method of instruction was adopted, though recitation by the pupil followed by explanation by the teacher, was generally followed. Besides question – Answer, Debate and Discussion, Story telling was also adopted according to need. There was no classroom teaching. However

monitorial system was prevalent and senior pupils were appointed to teach Juniors. Travel was regarded as necessary to give finishing touch to education so the methods of teaching generally practiced during vedic period were mainly Maukhik (oral and other method was based on Chintan (thinking or reflection) In the oral method the students were to memorize the mantras (Vedic Hyms) and Richayas (Verses of Rigveda) in order that there might not be changed wrongly and they might remain preserved in their original forms.

In Vedic era education had the prominent place in society. It was considered as pious and important for society. Education was must for everybody for becoming cultured. Relationship between Guru and pupils were very cordial during vedic and post-vedic period. By means of education efforts were being made to infuse ―Satyam Shivam and Sundaram‖ inside the students. A great importance was attached to veda in education system, self study Swadhyaya was considered more important during that period.

7. Medium of Instruction

As these educational institutions were managed and organized by Brahmans and all the books written in Sanskrit, therefore the medium of instruction was Sanskrit.

8. The 'Upnayana' Ritual

The word _upnayana _means to take close to, or to being in touch with. A ceremony called the upnayana ceremony was performed before the child was taken to his teacher. This ceremony was performed at the ages of 8,11 and 12 for the Brahmins, Kshatriyas and Vaishyas, respectively. The ceremony signaled the childs transition from infancy to childhood and his initiation into educational life. In this context, the term _upanayana' means putting the students in touch with his teacher.

9. Celibacy or Brahamacharya

Every student was required to observe celibacy in his specific path of life. Purity of conduct was regarded as of supreme importance. Only the unmarried could become students in a Gurukul. On entering student life, the student was made to wear a special girdle called a _makhla'. Its quality depended on the caste of the student. The students were not allowed to make use of fragrant, cosmetic or intoxicating things.

10. Alms System

The student had to bear the responsibility of feeding both himself and his teacher, this was done through begging for alms, which was not considered bad. Since every domestic knew that his own son must be begging for alms in the same way at some other place. The reason behind the introduction of such a practice was that accepting alms induces humility. The student realized that both education and

subsequent earning of livelihood were made possible for him only through society's service and its sympathy. For the poor students, Begging for alms was compulsory and unavoidable, but even among the prosperous, it was generally accepted practice.

11. Practicability

Apart from intellectual aspect of education its practical side was not lost sight of and along with art, literature and philosophy, students got a working knowledge of animal husbandry, agriculture and other professions of life. In addition education in medicine was also imported.

12. Duration of Education

In the house of the teacher, the student was required to obtain education up to the age of 24, after which he was expected to enter domestic life students were divided into three categories:

a) These obtaining education up to the age of 24 – Vasu

b) These obtaining education up to the age of 36 – Rudra

c) These obtaining education up to the age of 48.- Auditya.

13. Curriculum

Although the education of this period was dominated by the study of Vedic Literature, historical study, stories of heroic lives and discourses on the puranas also formed a part of the syllabus. Students had necessarily to obtain knowledge of metrics. Arithmetic was supplemented by the knowledge of geometry. Students were given knowledge of four Vedas – Rigveda, Yajurveda, Samaveda and Atharvaveda. The syllabus took with in its compass such subjects as spiritual as well as materialistic knowledge, Vedas, Vedic grammar, arithmetic knowledge of gods, knowledge of the absolute, knowledge of ghosts, astronomy, logic philosophy ethics, conduct etc. The richness of the syllabus was responsible of the creation of Brahman literature in this period.

14. Plain Living and High Thinking

The education institutions were residential in the form of Gurukulas situated in forest, where teachers and pupils lived together. Education imparted was in the pure, colm and charming atmosphere of the Gurukulas and Ashramas and emphasis was laid on the development of character through _Plain Living and High Thinking'.

15. Academic Freedom

Due to academic freedom students remained busy in thinking and meditation. It enhanced originality among them

16. High place to Indian culture

Indian culture was full of religious feelings and it was assigned a very high place in the field of education. Vedic culture was kept intact and transmitted through

word of mouth to succeeding generations. The ancient Indian education system was also successful in Preserving and spreading its culture and literature even without the help of art of writing, it was only because of the destruction of temples and monasteries by invaders that literature was lost. The cultural unity that exists even today in the vast- sub continent in due to the successful preservation and spread of culture and the credit goes to Ancient Education System.

17. Commercial Education and Mathematics Education

Commercial education and Mathematics education is also one of the chief features of vedic period. The ideas of the scope and nature of commercial education can be held from manu. Knowledge of Commercial geography, needs of the people of various localities, exchange value and quality of articles and language spoken at different trade centre were considered necessary. Theory of banking was also included in the course. Though there were no organized educational institutional training was usually imparted in the family. As far as Mathematics education is concerned, ancient Indian quite early evolved simple system of geometry. Shulva sutra are the oldest mathematical works probably compased between 400 BC and 200 A. D. Aryabhata (476.52 BC) is the first great name in Indian Mathematics. The concept of Zero also belonged to this period.

18. Female Education

During the Vedic age women were given full status with men. For girls also the Upanayan (initiation ceremony) was performed and after that their education began. They were also required to lead a life of celibacy during education. They used to study the Vedas and other religious and philosophy books, they were free to participate in religious and philosophical discourses. Many 'Sanhitas' of Rigveda were composed by women. In Gurukulas the gurus treated male and female pupils alike and made no distinction what-so-ever.

FORMS OF EDUCATIONAL INSTITUTIONS IN VEDIC PERIOD

- **Gurukulas**

Gurukulas were the dwelling houses of gurus situated in natural surroundings away from noise and bustle of cities. Parents sent their wards at the age of five years to nine years according to their castes after celebrating their Upanayan Sanskar. Pupils lived under the roof of their guru called 'antevasin' under the direct supervision of their Guru. Gurukula as the name indicates was the family of the teacher and his residence where the students used to stay during the period of study. Gradually, the Gurukula were extended to include a number of buildings. However the institution was built up around the family of teacher. The primary duty of the student was to serve the teacher

and his family. The students were like sons of the teacher and the whole institution lived like family.

- **Parishads**

Parishads were bigger educational institutions where several teachers used to teach different subjects. This may be compared to a college parishad in Upanishads, has been used for a conference of learned men, assembled for deliberations upon philosophical problems. Later on the 'Parishads' were set up at the places where learned men lived in good number and gradually these institutions became permanent centres of imparting knowledge. In the words of Dr. R. K. Mukherjee Parishad correspondences to University of students belonging to different colleges.

- **Sammelan**

Sammelan literally means getting together for a particular purpose. In this type of educational institutions scholars gathered at one place for learned discussions and competitions generally on the invitation of the king. Scholars were appropriately rewarded.

ROLE OF TEACHER AND STUDENTS

In Bhartiya Darshan 'Guru'has significant place. It consists of two words, Gu-ru. The word 'Gu' indicated darkness and 'ru' means controller. It means to avoid darkness or ignorance. In Vedas the term achariya is used for guru. Guru is considered greatest treasure of knowledge. In educative process teacher and students are the two components; a teacher provides physical, materialistic and spiritual knowledge to his students. The educative process is teacher centred. Guru satisfies the curiosity and needs of his students. Guru was the spiritual father of his pupils. Gurus were taking care of their pupil in same manner as a father takes care of his son. When a student was to become a pupil of any Guru, the recognized way of making application to him was to approach him with fuel in his hands as a sign that he wished to serve him and help to maintain his sacred fire. With 'Upanayan' ceremony the disciple (shishya) gained the generous shelter and patronage of his gurus. The term 'shishya' indicates the following qualities.

a) He is to be administered guru

b) He is able to obey his guru

c) He may be punished by his guru

d) He is be wished by his guru

e) He is to be Preached by his guru

f) He is to be treated equality

g) He is devoted committed to acquired wisdom

In the Dharam Sutra, there are rules laid down for the conduct of both teachers and pupils. The pupil was subjected to a rigid discipline and was under certain obligations towards his teacher. He should remain with his teacher as long as his course lasted and not live with anybody else.

CONCLUSION

In Vedic era education had the prominent place in society. It was considered as pious and important for society. Education was must for everybody for becoming cultured. Relationship between Guru and pupils were very cordial during vedic and post- vedic period. By means of education efforts were being made to infuse ―Satyam Shivam and Sundaram‖ inside the students. A great importance was attached to veda in education system, self study Swadhyaya was considered more important during that period. The vedic period favored women education. The ancient Indian education system was successful in preserving end spreading its culture and literature even without the help of art of writing. It was only because of the destruction of temples and monasteries by invaders that the literature was lost. The cultural unity that exists even today in the vast sub-continent is due to successful preservation & spread of culture. The education system infused a sense of responsibilities and social values. The ancient education system achieved its aims to the fullest extent.

References

1. Katha Upanishad, 1.2.20.
2. Rig Veda, 10.71.7.
3. Taittriya Upanishad,1.11.1.
4. Taittriya Aranyaka, 8.1.1.
5. Atharva Veda, 19.27.8.
6. Yajur Veda, 30.17.
7. Atharva Veda, 8.1.4.
8. Rig Veda, 9.67.31.
9. Taittriya Upanishad, 1.11.2.
10. Atharva Veda, 14.1.1.
11. Yajur Veda, 7.45.
12. Dash M. (2000), Education in India: Problems and Perspectives, Eastern Book Corporation
13. Ghosh S. C. (2007), History of Education in India, Eastern Book Corporation.

IMPLICATION OF INFORMATION TECHNOLOGY IN ACADEMIC LIBRARY

Vinod Kumar Singh

Librarian
United Institute of Pharmacy
Naini, Prayagraj, Uttar Pradesh

Alka Rani Khare

Librarian
United University Library
Jhalwa, Prayagraj, Uttar Pradesh

ABSTRACT

Our research project investigated how academic users search for information on their real-life research tasks. This article presents the findings of the first of two studies.This paper demonstrate that effective news of information technology (IT) will enhance the current operation of academic library and assets the library use of the carry out their various activities in the library. In the real world in library service librarians have to keep up change by answering specific question the need training because the technology, the corrector of population and local economics or are changing.Today libraries equipped to accomplish the newly information technology based services. Information technology enabled services fulfill the information needs of the users at the right time in the right place in the right person.

Keywords: Information Technology, Academic library, Trained IT Manpower

INTRODUCTION

The users are predict more from the information centre in the vying world as quick as services from unseen data to known information. The Information and intelligence technology has been changed many activities of the academic libraries from the digital contents providers than hard copies. Naturally, technology helped the material professionals changed contents in the digital mode and made it available through networked environment. In this web cloud computing are more helpful for the

easy storage and access in the global. So more advanced education institutions are started developing the digital library in the locally or globally.

- The stream ICT climate required the libraries to focus on the technological changes, new innovations, technical expertise, social and legal issues, cost, risk and also skills of the staff and technology.
- Libraries are covering the transition of technology every movement.
- Library and information expert have to support the changes taking place in their service to users.
- Experts working in the libraries are acquired new technologies and skills to improve the services of the information centre.

Library expert in the present generation have to act as specialist in the information managing and organizing the library in the digital environment. The concept of librarianship has extremely changed for its practices especially in the services to the end users. The advanced information processing, storage and retrieval are made simple using the cloud computing technology.

Academic libraries are facing a stimulating situation and unplanned challenges in this age of information technology. They are feeling under pressure to manage their responsibility of meeting the diverse information needs of their team member. The early operationalization of information technology in all areas of life, including libraries, has directed to discuss about how information technology change the nature and status of work. What is the footprint of information cybernetics on simplifying the service functions? Library and industrial computerization research have shown that the footprint of robotics depends on how and why it is used, rather than on the technology itself. Library organization systems are regularly used in all educational related institutes. Many commercial products are available hear, many institutions but not be able to manage the cost of using mercantile products or may not get contentment in modify facilities available. Alternatively, the institution itself can take a decision to develop its library organization system software using its own ability. Library organization system is a modern change that is look for to help in the circulation registration of processed books and register users.Information seeking is an essential part of a scholar's work. Scholars need to find proper information, assess the quality of the information, and use information in the research process.

Information is the important consideration of any kind of analysis and progress. An academic library is a library that is connecting to a tertiary school and university provide to concerned intention to support the modules and to support the research of the faculty and student. Modern academic library also contribute approach to voltaic assets. For students they serve as educational support providing study areas text book supplemental reading and research material for papers etc, for faculty the library major support for research. The library spends enormous resources to maintain journals and monograph for literature reviews and research projects. Libraries subscribe to datasets for researchers and librarians provide support to trained researchers in use of these datasets. The mission of academic librarians is to provide equal access to a curetted collection of high-quality information and a safe environment in which people learn to effectively access and assess that information. The academic library is essential because it provides access to high quality information which becomes a form of personal capital and because it does so for everyone regardless of means and class.

On Academic Library Functions the 21st century is the age of information science and technology. Many academic and research institutions and leading universities in the world edit their own homepages to demonstrate their educational goals, academic activities, excellent training programmers and the innovative and important research results. Therefore the functioning of academic libraries changes from time to time to be suitable to the ever-changing information environment.

Information technology and the virtual revolt have changed the way people fit and use information both for superior and for inferior. We got information from newspapers, television, books, teachers, and other sources. We got it in tiny individual segment and not surely when we wanted scheme which is important for presence in today's competitive and excited world. In line with to kemp" Information is appraised as the fifth need of man arrange after air, water, food and shelter".Now, in the 21st century, with the emergence of ICT & Web 2.0 technologies libraries have a new more dynamic role in knowledge society and as the individual is affected by ICT in the same way the discrete can also impact the automation (Bradley, 2010). Libraries began to allow the attending of the web adventure and make use of such a favors towards to create a new environment for libraries users where cooperation take part in

a basic role. Exchange means that technology communicate with popular with gains and trust.

DEFINITION OF INFORMATION TECHNOLOGY (IT)

Information Technology has been variously researched by many scholars. Thus Information Technology is observed in the library to be worried with accessing, administering, repository and dissemination of information-word based numeral graphic and choral. It is considered as a broad-based term comprising the gathering, organization and storage and retrieval ofinformation. According to Marshall, "IT is the coming together of computing and telecommunications for the motive of control information; the application of technologies to information handling; including generation, storage, processing, retrieval and dissemination. The use of computer and telecommunications devices in information conduct consisting of essentially three basic components which are: Electronic processing using the computer Transmission of information using telecommunication equipment; and Dissemination of information multimedia. From the above information it becomes explicit that IT in libraries comprises all the electronic infrastructure and facilities employed by libraries to improve and provide efficient services. Such aptitude in broad term consist of hardware, software and communication links between the service outlets of different libraries to facilitate the sharing of common resources; especially the library networks. In that day library should not mostly store documents and preserve them it must also devise means by which the contents of such documents can be rapidly and effectively transmitted for use. Emails, telephonic, television, radio, ebooks, newspapers and periodicals are the traditional ways users send and receive information. Anyhow data communications system computer system also transfers data over communication lines such as telephonic lines since the mid year 1960. Internet use has today revolutionized access to information for the business world, libraries, education and individuals. All these computerized devices are assessing as central to the idea of liberalization. The virtual and its automation continued to have profound effects on the promotion of information sharing; especially in the academic world, making possible rapid transactions among businesses and supporting global collaboration among individuals and organizations. These technologies have the potentials to develop "digital campuses" and "digital libraries" thus, increasing students' approach and particle. Naturally as libraries in which computer and

information technologies make approach to all around of information resources possible. Today the concept is mention to popularly as "digital library", "electronic library", "community network", or simply "library without walls",

OBJECTIVES OF THE STUDY

- To explore how librarians and library users connect with digital material, electronic resources, online services and review their attention towards their benefits and challenges in academic libraries.
- To explore the use and impact of information technology in Academic Libraries services and operations in India.
- Conservation and preservation knowledge
- Inflation of ideas and diffusion of knowledge with the help of interpretation, research and publication and dissemination of knowledge through teaching and extension services.

ACADEMIC LIBRARIES ROLE IN RESEARCH

A survey of the expert in literature on the role of digital libraries in research reveals three often interconnected themes:

• The information needs and information-seeking behavior of researchers often reports of surveys of researchers use of libraries.

• Summary of library roles and services in the support of research some accompanied by surveys of users of these services.

AVAILABILITY OF INFORMATION TECHNOLOGY IN ACADEMIC LIBRARIES

Academic libraries have different times planned to robotize their activities but had to drop the plans halfway due to certain inadequacies which Madu (2002) enumerated to including: Economical Manpower problem Political volatility Capital Geographical solitude Social cultural and Exposure. Therefore libraries especially those of triennial institutions have had crisis in their attempts at achieving full application of IT in the conduct of their operations thereby failing to benefit maximally from such adoption. The confirmation of this study thus lies in the central and cavallies role that IT plays in education generally and library operations in particular as attested to by (Nwizu, 2008). The need of audiovisual and electronic resources has collapsed the barriers of time, distance, and locates which slow growth of formal education just as (Adeyemi, 2004) emphasizes that students use these

resources to complete major assignments. He added stressed that Audiovisual and electronic resources have the conceivable for enhancing student learning. The role of these effects in teaching and learning is one of the most important and widely discussed issues in contemporary education policy". Some institutions have an indusial website but the library has no presence there. A library homepage should be a factor of an institutions website. Librarians must upload their bibliographic records to become part of global resources and should also be able to download information. As such of the institution's libraries have a web presence; they do not lie in the virtual environment. (Etebu, 2010) declare that without vast form of Internet facilities librarians will not be helpful to their clientele. It is unique when they are adept in the use of the Internet that they can teach other library users to navigate the World Wide Web.

CHANGES IN ACADEMIC LIBRARIES

BUDGET CHALLENGES

Libraries are covering in the reduction of control and elements budgets every year that leads to the prudential pressure for allotting the cost for the new challenges.

CHANGES IN HIGHER EDUCATION

Due to the scientific upgrading in the information handling the library professionals are affected to get training in the advancement technological changes in the profession so additional refresher courses and workshops must be present by the library professionals to acquire technology.

DIGITIZATION OF UNIQUE LIBRARY RESOURCES

Digitization of printed and unpublished documents made available to the researchers as well as worldwide through digital library projects "erratic collections are a link where cybernation content the meeting to boost learning in amazing new ways". Therefore, the virtual is the challenging task for the library professionals.

GROWTH OF MOBILE DEVICES AND APPLICATIONS

Information Technology brings everything in the mobile phone. The mobile function are increasing day by day in all the fields so the library is using them also by way of giving information in text messaging through SMS to the user mobile phone as in the services of OPAC, communication modernize such as extend documents etc.

LIBRARY WILL EXPAND THE ROLE TO INSTITUTIONS

Information literacy direction is to be integrated with the modules in the main stream of the education. Librarians do provide services to the scholars on virtual research environment and digital repositories-learning must be spread for convenient attachment to the local digital collections. Using open access software- cluster is to be evolved and according through web with general public.

TO DEVELOP SCHOLARLY COMMUNICATION AND INTELLECTUAL PROPERTY SERVICES

Every institute must develop their thought contents locally as Institutional collections so that it basis others to gain importance to publishing academic communications. Institutional collections are predict the institute fame to others. The possible of academic are highly think highly through IRs.

REVOLUTION TAKE PURSUE TO CHANGE UTILITY AND ESSENTIAL ABILITY

The academic libraries are fronting many mechanization changes to impart informatics. The new automation tools such as facebook, twitter, release, airframe, amazon, anything as-a-service are few of them for providing library services to the end users. Usually the library Proficient do not know how to perform and how many tools use for these motive, the same information has to be served in a different tools and mode with standard format. So all these modern tools must be combined for as long as services to users.

LIBRARY WILL CHANGE AS TANGIBLE AREA IS REMODEL AND ESSENTIAL SPACE STRECH TO PROVIDE

These days, the academic libraries are extended information resources to users than every day. The number of hard copies is decreasing naturally. The initials of expression of journals are withdrawn in many libraries and go for online journals. To approach these, the libraries are as long as computer facilities to the users rather of hard copies.

Changes in Libraries: A Paradigm Shift

To become information professionals ever before and to provide information services through online, must be acquired new skills such as advanced technological training for accessing, storing, retrieving information from networked environment. So the vision of the future academic library professional must be to create a World Class Networked Global Library and Information Centre to impart suitable technology

persuade quality information processing to the user in time in the digital age . The 21st century changed the traditional library professionals into modern and technological library professionals by way of using information technology in the library. Library experts mustgo through lot of changes in the venture for information processing and control them. The technological improvement forced to change and enhance their knowledge and achieve new competencies skills. Transitions of activities of library from traditional way to ICT way are given below:
(Dhanavandan and Tamizhchelvan, 2014)

Sl. No.	Libraries	Networks
1	Custodian of Books	Service oriented Information Providers
2	Print	Digital
3	Ownership	Access
4	Order in Libraries	chaos on the web
5	One Medium	Multimedia
6	Media	Hypermedia
7	Copyright	copy left
8	Own Collection	Library without walls
9	Homogeneity	Diversity (heterogeneity)
10	In Good time	Just in Time
11	Top Down System	Bottom down system
12	Real	Virtual
13	Tangible	Intangible
14	Monopoly	Equity
15	Library	Web Library
16	Intra-action	Inter-action
17	Teaching	Learning
18	Local reach	Global each
19	We go to the Library	Library comes to you
20	Book preservation	Bit preservation

CHANGES IN ELECTRONIC LIBRARIES

Information technology realized the importance of electronic libraries, some of the factors is to be considered and listed below:

- Provide interactive access to the collections
- Instant access to multimedia based information
- Fully automated indexing & intelligent retrieval
- Users are more hungry to do R&D remotely
- Storage of large volume of data
- Access @anytime @anyplace by anyone
- Faster addition & gap reduction
- Effective tool for bridging the information gap
- Distributed learning environment
- Promote paperless office environment;
- Promotes e-learning.

THE SKILL OF LIBRARY STAFF

In the system to manage the developing library environment, the library employee will need to be trained in the application of basic tools in their work environment. The modernized storage media like, CD-ROM, micro-text, microfilms, optical laser disc, floppy discs, magnetic tapes and discs etc. play a vital role in the ever-growing information world-daily routines and functions of the library have been impacted and influenced very much by the modern communication medias like satellite communication ,e-mail, telex, e-journal, fax, telecommunications, online network communication etc. So it is very necessary to provide almost training to the library personnel.

In earlier mount the librarian as a protector and caretaker of books. But today's librarians are having new technologies handling skills like physical form of books and journals is replaced by Electronic media such as CD-ROMs, DVD, and Floppy Disc etc. So, the librarians and library professionals are automatically undergoing a change due to the necessity of information literacy.

PERSONAL COMPUTING TO CLOUD COMPUTING

At the end of the 20th century the computer technology established its legs into all the fields in the world. The new advanced technology is used the internet and remote servers to maintain data and functions. Cloud computing is a virtualized pool of computing resources. Cloud computing allows consumers like library, businesses, consumers to use data and applications without installation and access their personal files at any computer with internet access. In cloud computing services provide

common business applications online that can be accessed using a web browser while storing software and data on the servers. IOSR Journal of Computer Engineering (IOSRJCE) ISSN: 2278-0661 Volume 1, Issue 1 (May-June 2012), PP 38-45

Network Computing Technology	**Cloud Computing Technology**
Client Server and other paradigms	Service Paradigms (e.g. Platform as a Service)
Remote Procedure Call	Processor Virtualization
Overview on Java RMI, CORBA and other infrastructures	Virtual Network Interfaces and Virtual Networks
Emerging Web Technologies	Virtualized and Network Storage
Web Services and Service-oriented	Web Service Interface
Computing	Authorization and Security

Figure 1: *Evolution of Cloud Storage*

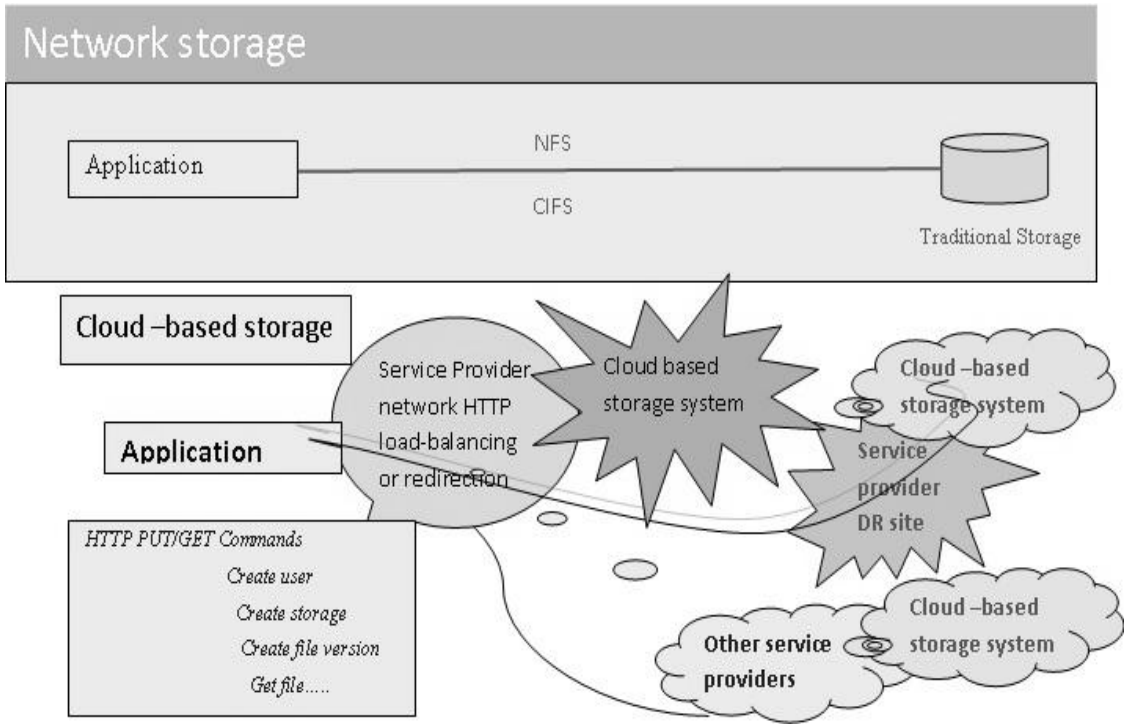

ADVANTAGES OF IT IN LIBRARY SERVICES

The Introduction of Information Technology in library science has enormous advantages. According to (Igbeka, 2008), and (Adeleke, 2015), they enumerated the benefits of IT to library services as follows:

- Help researchers for effective literature analysis search needs.
- To introduce and produce new services revitalize the actual services by providing faster access to the resources by overcoming the space and time barriers.
- Online Public Access Catalogue is the computer form of subsidiary library users to catalogue library materials.
- To have large scale number of databases in CDs.
- Utilize staff for providing better information services.
- Retrieve & disseminate the information in user-defined format.
- Upgrade the abilities of professionals
- Information is preserved conserved over a long period of time without image or quality degradation.
- Encourage networking & resource sharing at local level.
- The documents for preservation & for space saving.
- Capture, store, manipulate, & distribute information.
- Improve the efficiency of library functions.
- Helps in the process of the serial control, preparing union list of serials and circulating via e-mail to the branch libraries at different locations.
- Improve the cost effectiveness of library operations.
- Global integration of library services.
- Change in the viewpoint of the library from being a physical structure housing books to a database for universal access of information.
- Information technology has decreased the services/organization of the library by storing, retrieving and discrimination of information in real time.

There are also three modern networks, DELNET, CALIBNET, and BONET optimally utilizing and preserving knowledge.They are instrumental in changing an unequal society into an equalitarian, reformist knowledge-based society. The impression of Information technology in the collection of development is very prominent in library. There is serious lack of cooperation among the libraries of

different organizations and which cause the lack of union catalogues at national level. The national library failed even to do this prodigious task. One of the major problems faced by Library and Information Services sector in India is lack of bibliographic control at national level which causes duplication in research.A library is a vacuum number of data resources of data formatting & similar resources selected by experts & made accessible to a defined community for reference or borrowing, often in a quiet environment conducive to study. To summarize, the most constraints faced by the libraries which militate against effective dispersal and use of information are:

♦ A considerable amount percentage of the population is illiterate or functionally literate making libraries of minimal use to them.

♦ Poor resource parceling for infrastructure improvement and collection development for public libraries.

♦ A critical department of national policy that is put under pressure by maturation is harmony and welfare. Can social safety nets remain parliamentary determined at the national level under the pressure of global competition

♦ Lack of adequate trained manpower in the use of information technology.

♦ Lack of funds for getting necessary hardware and software facilities.

♦ Resistance on the part of library staff to change from their traditional practices to the use of information technology.

Library and Information Services sector in India has got remarkable achievements. Efforts had been made to set up networks at local, regional and national level to propagate information and communication technologies and to build electronic information sources. Academic library is organized for use and maintained by a public body, a corporation, an institution, or a private individual. Special & institutional collections and services may be intended for use by people who choose not or cannot afford to purchase an extensive collection themselves, who need material no beard canmoderately be expected to have or who require professional encouragement with their research. A number of educational institutions are members of such networks in academic library. Indonet,Necnet,Inflibnet and Delnet these are networks especially haunted in compiling union catalogs, providing training to library staff, online facilities, reference service, assistance in retrospective conversion etc. To overcome the problem of financial compaction and the rising costs of journals, librarians have formed consortia to subscribe all the required journals and databases.

Some special libraries and research organizations have established consortia known as Forum for Resource Sharing in Astronomy to share electronic access to journal literature. The quality of library and information services through the organized acquisition, organization and dissemination of knowledge various library associations have been set up at national and state level. They annually organized conferences, seminars and training programs to trained and update library professionals with latest development in Library and Information Services. Recently libraries and research organizations understand the importance of digital libraries and they started the work of digitization of important documents.

The Indian Institute of Science was the first in the country to startup and interoperable institutional archive. The archive now has more than seven thousand records, with over ninety percent having full text. Presently there are twenty fine institutional archives in India which are registered in the registry of open access repositories. An open access reservation is likely to be ready by this year. The National Knowledge Commission has submitted its report to the government on how to define the information services sector. The report of Knowledge Commission on library sector proposes that every state should launch a registry and archives of knowledge based digital resources which should be made accessible to all.(Sen & Chakerborty, 2014)

IMPACT OF INFORMATION TECHNOLOGY (IT)

On Academic Library Functions the 21st century is the age of information science and technology. Many academic and research institutions and leading universities in the world edit their own homepages to demonstrate their educational goals, academic activities, excellent training programmers and the innovative and important research results. Therefore the functioning of academic libraries changes from time to time to be suitable to the ever-changing information environment. The change is at slow pace in school and college libraries, however, university libraries, with the support of INFLIBNET, an Inter University Centre of University Grants Commission have made steady development in the application of IT in their housekeeping and information retrieval activities. University libraries now days are planning great efforts to build up their information infrastructure in order to provide a fast and efficient information highway to help their users in sharing and utilizing the information all over the world because providing a fast efficient and easy way to

access and search for the information through the web pages and the resources linking with other websites, users can easily access new information fresh knowledge & solutions to their problems. This innovation has changed the activity of university libraries in India. The new activity includes Providing Internet facility to all users to access global information in their specific discipline. Creating and maintaining library website. Manage OPAC of their library to give access to its selection not only to its users through campus networks but also to users' world over. In case that access to wide variety of information resources including reference sources, indexes, full text articles and complete journals.

CONCLUSIONS

This study noticed eleven academic users information searching behavior within research-task searching scenarios in the online environment. The results provide new ability of academic users perceptions about research based tasks and raise our understanding of real-life information searching and user behavior in a research environment. But the study reduces its findings to user's interactions with IR systems.

REFERENCES:

- Adeleke, I. T., Lawal, A. H., Adio, R. A., & Adebisi, A. A. 2015, "Information technology skills and training needs of health information management professionals in Nigeria: a nationwide study," Health Inf Manag. 44(1):30-8.
- Adeyemi, 2004, "Educational administration An Introduction. Lagos," Atlantic Associated Publishers., pp. 71-86
- Brindley, L.J., 2009, "Challenges for great libraries in the age of the digital native," Inf. Serv. Use., 29(1), pp. 3-12
- Dhanavandan, S., and Tamizhchelvan M., 2014, "Academic Research Journal of Academic Library," IJALIS, 2(1), pp. 62-71.
- Etebu, A. T. 2010, "ICT availability in Niger Delta university libraries," Library Philosophy and Practice (e-journal). 342. Avialable at: https://digitalcommons.unl.edu/libphilprac/342
- Igbeka (2008), Adebisi (2009) and Uwaifor (2010) Enumerated the Impact of Information and Communication Technology (ICT) in Library Operations and Services thus: from pp. 2-8

- Madu, E.C., 2002, "Computerized Reference Source and Traditional Printed Reference Source: A Comparison of the Old and the New in Library Services. Information Science and Technology for Library Schools in Africa. (ed) Ibadan: Evi-Coleman Publications. Available from: https://www.researchgate.net/publication/334361683.
- Nwizu, S.C., 2008, "Analysis of ICT usage in information generation and dissemination by distance education (DE) participants: Implications for the attainment of the Millennium Development Goals in Nigeria.
- R. Arokia Paul Rajan , S. Shanmugapriyaa, 2012, "Evolution of Cloud Storage as Cloud Computing Infrastructure Service" IOSR Journal of Computer Engineering. 1(1), pp. 38-45
- Saikat, Sen and Raja, Chakraborty, "Tradional knowledge digital library: a distinctive approach to protect and promote Indian indigenous medicinal treasure," current Science., 106(10), pp. 1340-43

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक का नाम– शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार

लेखक– डॉ0 के0 के0 तिवारी
प्रकाशन – विजय प्रकाशन मंदिर प्रा लिमिटेड वाराणसी
संस्करण– द्वितीय (2016)
पुस्तक में कुल पृष्ठों की संख्या– 595 पृष्ठ
मूल्य–600/–

वर्तमान शिक्षा को नई दिशा देने में हमारे शिक्षा शास्त्रियों की महती भूमिका रही है। जो शिक्षा के साथ समाज को गतिशील बनाने में अपनी भूमिका अदा करते है। आज शिक्षा का वास्तविक अर्थ मात्र डिग्री पा लेने तक ही सीमित हो जा रहा है ।जो एक विचारणीय बिंदु है। शिक्षा के वास्तविक उद्देश्य क्या है हम इस ओर से बहुत उदासीन हो रहे हैं शिक्षा हमारे जीवन या जीवन मूल्यों से अलग नहीं हैं उसे हमें अपने जीवन से जोड़कर चलने की आवश्यकता है। हमारा जीवन दार्शनिक एवं समाज की आधारशिला पर खड़ा है। जिससे हमें अपने समाजिक जीवन के विभिन्न प्रश्नों का हल मिल पाता है। अतएव दर्शन, समाज एवं शिक्षा एक दूसरे के सहजता के भाव में जुड़े हुए हैं। शिक्षा दर्शन, शिक्षा की समस्याओं पर तर्क पूर्ण चिंतन करता है और उसका तर्क सम्मत समाधान ढूंढता है।

''शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार'' नामक पुस्तक विजय प्रकाशन मंदिर प्रा0 लिमिटेड वाराणसी'' द्वारा प्रकाशित है। यह पुस्तक एक ऐसे शिक्षाशास्त्री द्वारा लिखी गई जो विभिन्न महाविद्यालय में प्राध्यापक कार्यों के साथ– साथ प्राचार्य जैसे दायित्व का निर्वहन भी किया है। वास्तव में एक शिक्षक ही छात्र की समस्याओं को जान सकता है। जिसका एक मात्र उदाहरण यह पुस्तक है। डॉ0 के0 के0 तिवारी विभिन्न महाविद्यालयों के दायित्व के साथ ही साथ क्षेत्रीय उच्च शिक्षा अधिकारी वाराणसी जैसे अधिकारी पद पर भी रहकर शिक्षा को एक नई दिशा एवं दशा प्रदान की है।

उच्च शिक्षा के परिवेश में चाहे महाविद्यालय के छात्र हो या विश्वविद्यालय के सभी के लिए शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार वास्तव में मूल आधार हैं। आज शिक्षा क्षेत्र में बहुत से शिक्षाविदों द्वारा अनेक पुस्तकों का लेखन कार्य किया जा चुका है। किंतु इस पुस्तक के द्वारा छात्रों, लेखकों ,शोधार्थियों, प्राध्यापकों के साथ–साथ सामान्य पाठकों को भी अपनी भाषा हिंदी में शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार के विविध पक्षों का अध्ययन बड़ी

गंभीरता से प्राप्त हो जाता है। एक सफल अध्यापक छात्रों के पाठ्य–वस्तु सीखने की क्रिया को अभिप्रेरित नहीं करता है, बल्कि छात्रों का इस तरह मार्गदर्शन करता है कि उनका जीवन नैसर्गिक विकास के सिद्धांतों के अनुरूप चलता है।

शिक्षा के परिपेक्ष में अंतरराष्ट्रीय सम्बन्धों का भी अब बहुत बड़ा महत्व हो गया है। इसके बिना अब किसी राष्ट्र का कोई अस्तित्व ही नहीं है। विश्व संबंध विश्व बंधुत्व और विश्व शांति हेतु शिक्षा में अंतरराष्ट्रीयता को विशिष्ट स्थान देना जरूरी हो गया है। तभी शिक्षा का उत्थान संभव है।

डॉक्टर तिवारी शिक्षक के रूप में विषय वस्तु की स्थापना करते हैं। क्योंकि शिक्षक का व्यक्तित्व बालकों को प्रभावित करता है। अध्यापक अच्छे और प्रभावशाली व्यक्तित्व से प्रभावित बालक अनजाने में ही बहुत से गुण सीख लेते हैं, और अपने व्यक्तित्व के निर्माण में अग्रसर होते हैं। इसलिए शिक्षक को उत्पादनशील शिक्षा के उद्देश्यों को ध्यान में रखकर असली योग्यता को अर्जित करना चाहिए जो उन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आवश्यक है।

डॉ0 के0 के0 तिवारी ने अपनी पुस्तक में शिक्षा के अर्थ, परिभाषाएं, क्षेत्र ,कार्य, उपयोगिता आदि की विस्तृत व्याख्या करते हुए अनेक विद्वानों के मतों का उद्घाटन करते हुए तथ्यों का स्पष्टीकरण किया है। लेखक ने शिक्षा के व्यापक एवं संकुचित दोनों अर्थो का बड़े ही तथ्यात्मक एवं प्रमाण के साथ प्रस्तुत करते हुए कहा कि प्रो0 डमविल कहते हैं कि

''Education in its wider sense included all the in fluences which act upon an individual during his passage from the cradle to the grave."

इस प्रकार ''जीवन शिक्षा है तथा शिक्षा जीवन है'' इस तथ्य को स्पष्ट कर देती है।

शिक्षा दर्शन के विभिन्न दृष्टिकोण जैसे शिक्षा के स्वरूप, शिक्षा की आवश्यकता, शिक्षा के उद्देश्य और शिक्षा में पाठ्यचर्चा आदि का विधिवत् निरूपण करना लेखक की प्राथमिकता रही है। वास्तव में शिक्षण प्रक्रिया का इतिहास उतना ही पुराना है जितना कि मनुष्य का।

लेखक ने शिक्षा दर्शन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को दर्शाया किंतु प्राचीन आचार्यों की शैक्षिक एवं दार्शनिक महत्व पर कुछ अनसुना सा कर मध्यवर्ती विद्वानों के साथ–साथ पाश्चात्य विद्वानों पर ज्यादा जोर देते हुए अपने विचारों का प्रतिस्थापन किया है। इन तथ्यों के स्पष्टीकरण में दर्शन कि जो भी शिक्षण विधियाँ हैं जैसे सुकराती विधि, किण्डरगार्डेन पद्धति, मांटेशरी पद्धति एंव ह्यूरिस्टिक पद्धति सब का सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों पक्षों का एक सफल उद्घाटन किया गया है। इस सफल समीक्षा से छात्र इन पद्धतियों के वास्तविक स्वरूप एवं उद्देश्य को जान सकते हैं।

यदि हम दर्शन के पश्चात्य संप्रदायों की बात करें तो सबसे प्राचीन दार्शनिक विचार धारा आदर्शवाद है। पश्चात्य देशों में सुकरात एवं उसके शिष्य प्लेटो, वर्कले ,डेकार्ट, काण्ट,

फिक्टे, हीगल आदि पश्चात्य दार्शनिकों ने अपने दर्शन की स्थापना की। आदर्शवाद को मानने वाले भारतीय दार्शनिकों या विचारकों में स्वामी दयानंद सरस्वती, स्वामी सहजानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानंद, बाल गंगाधर तिलक, अरविंद घोष, डॉक्टर सर्वपल्ली राधाकृष्णन, रवीन्द्र नाथ टैगोर, आचार्य विनोवा भावे जैसे अनेक लोगों के मतों की प्रतिष्ठापना लेखक ने प्रस्तुत पुस्तक में सम्यक् रूप से दी है। लेखक ने प्रकृतिवाद, प्रयोजनवाद, यथार्थवाद ,मानवतावाद, जैसे सभी दार्शनिक सिद्धांतों का निरूपण किया है। साथ ही साथ भारतीय षड्दर्शनों का भी सम्यक् प्रतिपादन कर पुस्तक को उच्च कोटि के रूप में बनाने का प्रयास किया गया है ।

शिक्षा दर्शन के साथ–साथ लेखक ने समाजशास्त्र और शिक्षा के संबंधों का उद्घाटन कर पुस्तक को पूर्णता प्रदान करने की कोशिश की गई है। शिक्षा का अर्थशास्त्र से क्या संबंध है? हम शिक्षा को उत्पादकता से कैसे जोड़ सकते हैं? और उसकी क्या आवश्यकता है? आर्थिक विकास में शिक्षा का क्या योगदान है? शिक्षा का व्यवसायीकरण कैसे किया जाए ? जैसे अनेक प्रश्नों पर लेखक द्वारा सम्यक् तथ्यों का निरूपण किया गया है।

लेखक द्वारा शैक्षिक मूल्यों, पाठ्य चर्चा, मानवाधिकार, स्त्री शिक्षा, विकलांगों की शिक्षा, राष्ट्रीय शैक्षिक कार्यक्रमों के साथ–साथ आधुनिक समय में हो रहे शैक्षिक बदलाव की भी चर्चा की गई है। वह निःसंदेह छात्र छात्रों को लाभान्वित करेगा। 595 पृष्ठों की यह वृहद पुस्तक छात्र–छात्राओं के साथ समस्त बौद्धिक वर्ग के लिए उपयोगी है। शिक्षा के दार्शनिक सामाजिक आधार के समस्त आवश्यक तत्वों पर वृहद प्रकाशन करना लेखक का ध्येय है।

प्रस्तुत पुस्तक वास्तव में उपयोगी पुस्तक है। जिसमें समस्त शिक्षा सम्बन्धी तथ्यों का निरूपण एवं उसका तथ्यात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। वास्तव में यह पुस्तक अपने में एक मील का पत्थर सिद्ध होगी शिक्षा जगत में किसी भी पुस्तक का द्वितीय संस्करण का प्रकाशन उस पुस्तक की उपादेयता, गुणवत्ता, प्रासंगिकता के साथ–साथ उच्च कोटि का होने का प्रमाण माना जाता है। ''शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार'' पुस्तक का सर्वप्रथम प्रकाशन 2007 में तथा उसके 7 साल बाद 2014 में इसका दूसरा संस्करण शिक्षा जगत में नक्षत्र की भाँति तिरोहित हुआ है। जिसमें एक अलग ही आभा एवं क्रांति है। जो इस शिक्षा मंडल को प्रकाशित करेगी।

डॉ तिवारी एक सच्चे अध्यापक के रूप में लेखन का कार्य किया। क्योंकि एक दीपक दूसरे दीपक को कभी भी प्रज्जलित नहीं कर सकता जब तक कि उसकी अपनी ज्योति जलती ना रहे। अंत में मैं डॉक्टर सर्वपल्ली राधाकृष्णन् के उस कथन को शैक्षिक वर्ग के समक्ष रखूगां जो समाज को अध्यापक या लेखक के महत्त्व को स्पष्ट करता है।

''समाज में अध्यापक का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। वह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को बौद्धिक परंपराएं और तकनीकी कौशल पहुंचाने का केंद्र है और सभ्यता के प्रकाश को प्रज्वलित रखने में सहायता देता है।''

एतद्देश प्रसूतस्त सकाशादग्र जन्मनः।
स्वं स्वं चरितं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवाः।। (मनुस्मृति)

समीक्षक
डॉ0 विनय कुमार त्रिपाठी

सम्पादक
शोधमार्तण्ड
प्राचार्य
श्री गौरीशंकर संस्कृत महाविद्यालय
सुजानगंज, जौनपुर (उ0प्र0)